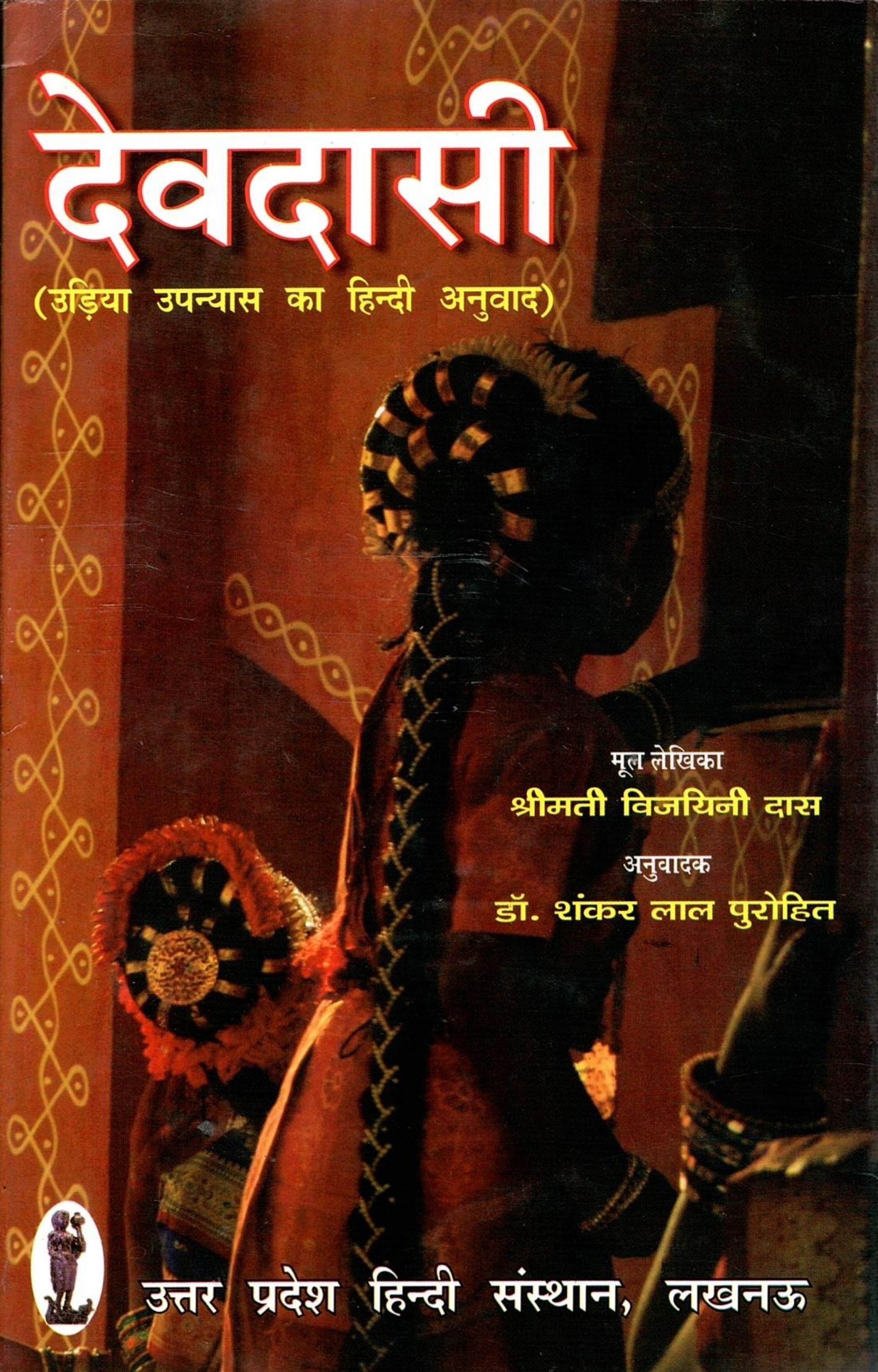

देवदासी

(उड़िया उपन्यास का हिन्दी अनुवाद)

मूल लेखिका

श्रीमती विजयिनी दास

अनुवादक

डॉ. शंकर लाल पुरोहित

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

देवदासी प्रथा देश के अनेक दक्षिण भारतीय मंदिरों में सदियों से प्रचलित पवित्र परंपरा रही है, परंतु अब यह समाप्त हो चुकी है और विवाद के घेरे में आ गई है। एक बार विश्वप्रसिद्ध नृत्यांगना संयुक्ता पाणिग्राही ने भी श्री जगन्नाथजी के आगे देवदासी के रूप में नृत्य प्रस्तुत करने की अनुमति मांगी थी, परंतु नहीं मिली। क्यों?

इसके संभावित उत्तरों से साक्षात्कार करता यह मर्मस्पर्शी उपन्यास एक ओर देवदासी की अंतर्कथा को रूपायित करता है, दूसरी ओर इस प्रथा में उपजी अनेक कमजोरियों का बेबाक विश्लेषण भी करता है यह कथानक। नारी के प्रति अन्याय, अत्याचार और संकीर्ण सोच का संयुक्त आख्यान है 'देवदासी'। एक पवित्र परंपरा के ह्रासमान चित्र का ही नहीं, उसके उज्जवल पक्ष का भी निष्पक्ष रूप में रेखांकन हुआ है इस सांस्कृतिक उपन्यास में।

देवदासी

ओड़िशा साहित्य अकादमी द्वारा वर्ष १६६१ में पुरस्कृत

ग्रन्थमाला संख्या-१४

देवदासी

(सुप्रसिद्ध उड़िया उपन्यास का हिन्दी अनुवाद)

मूल लेखिका
श्रीमती विजयिनी दास

अनुवादक
डॉ० शंकर लाल पुरोहित

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
६, महात्मा गांधी मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ

प्रकाशक
डॉ० सुधाकर अदीब
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
लखनऊ

भारतीय भाषाओं की साहित्यिक कृतियों की अनुवाद योजना के अन्तर्गत प्रकाशित।

© उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

ISBN - 978-81-89989-53-8

प्रथम संस्करण - २०१०

प्रतियाँ - ५००

मूल्य - रु० १३२=००

मुद्रक
प्रकाश पैकेजर्स
गोलागंज, लखनऊ

प्रकाशकीय

परम्परा ने जहाँ हमें बहुत कुछ दिया है, वहीं ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं है, जब समय के अंतराल में वह अपनी आभा खोती गयी या उनका दुरूपयोग होने लगा। देवदासी प्रथा को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है, जो सैकड़ों वर्षों तक दक्षिण भारत के विभिन्न मंदिरों में प्रचलित रही। इस प्रथा के अन्तर्गत कन्याएं छोटी उम्र में ही मंदिर-विशेष को समर्पित कर दी जाती थीं और वे नृत्य-संगीत के माध्यम से सारा जीवन अपने आराध्य देव की सेवा करती रहती थीं। कालांतर में इस प्रथा का व्यापक दुरूपयोग भी हुआ और मंदिर प्रबंधन से लेकर समाज के प्रभावी वर्ग द्वारा देवदासियों का शारीरिक शोषण एक कडुवी सच्चाई बन गया। इसके चलते इस प्रथा के समर्थक घटने लगे, आराध्य के लिए जीवन समर्पित करने वाली नृत्यांगनाओं की संख्या कम होने लगी और स्वातन्त्रायोत्तर युग में यह प्रथा लगभग तिरोहित ही हो चुकी है।

सुप्रसिद्ध उड़िया लेखिका श्रीमती विजयिनी दास का चर्चित उपन्यास 'देवदासी' इसी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परम्परा के उत्थान-पतन को अत्यंत प्रभावी ढ़ंग से शब्द देता है। १९९१ में उड़िया साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत यह उपन्यास पुरी के जगन्नाथ मंदिर में आजीवन देवदासी रही मुक्ता माहारी की आत्मकथा के माध्यम से इस परम्परा के अनेक ज्ञात-अज्ञात पहलुओं और परम्पराओं को अभिव्यक्ति देता है। मुक्ता माहारी जीवन के तमाम खट्टे-मीठे अनुभवों के बीच इसके शास्त्रीय नृत्य और गायन-वादन सम्बन्धी पहलुओं को संजोने के लिए जीवन-संध्या में एक स्कूल खोलना चाहती है। अपनी पालिता बेटी को जब वह देवदासी बनाता चाहती थी, तब उसके साथ जो कुछ हुआ, वह प्रसंग अत्यंत मार्मिक है। पालिता बेटी बाद में वकील बन कर दोषियों को सजा दिलाती है और मुक्त माहारी को उचित सम्मान भी। मुक्ता माहारी एक समर्पिता देवदासी होने के साथ-साथ स्वतंत्रता संग्राम में भी अपना योगदान देती है और अनेक तरह की लांछनाओं के बीच भी अपने मार्ग से नहीं डिगती।

उपन्यास में जिस तरह से एक समूचे युग और उसकी अनेक आत्मीय परम्पराओं व रीतिरिवाजों को शब्दायित किया गया है, वह देखते-पढ़ते ही बनता है।

भगवान जगन्नाथ जी तो मानो इस उपन्यास में अपनी समूची दिनचर्या, वैभव और अनन्त विस्तार के साथ साकार उपस्थित हैं। ऐसे सारगर्भित उपन्यास 'देवदासी' के प्रणयन के लिए श्रीमती विजयिनी दास के प्रति जितना भी आभार व्यक्त किया जाय, कम होगा। चर्चित साहित्यकार और उड़िया- हिन्दी के अनन्यतम हस्ताक्षर - डॉ० शंकर लाल पुरोहित - ने उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के लिए इसका विशेष रूप से अनुवाद कर हमें कृतार्थ किया है। इसके लिए हम उनके प्रति भी सम्मान व्यक्त करते हैं। भारतीय भाषाओं की साहित्यिक कृतियों की अनुवाद योजना के अन्तर्गत इस कालजयी उपन्यास को राजभाषा हिन्दी में प्रस्तुत करते हुए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान गौरवान्वित है। आशा है, भारतीय भाषाओं के सद्साहित्य और परम्परा के महत्वपूर्ण पड़ावों को नजदीक से देखने-समझने की ललक से जुड़े जिज्ञासु हिन्दी पाठकों के बीच यह प्रशंसित उपन्यास आत्मीयता पायेगा एवं सराहा जायेगा।

डॉ० (सुधाकर अदीब)

निदेशक

अनुवादकीय

भारतीय समाज अपनी परंपरा को लेकर सबसे अधिक गर्व करता है। इसी में उसका धर्म, उसकी संस्कृति और सभ्यता निखर कर आते हैं। ऐसी अनेक परंपराएं हैं, जो काल प्रवाह में तिरोहित हो गई अथवा तीव्र थपेड़े खाकर मलिन या अनावश्यक हो गईं। स्वतंत्रता के बाद हमने एक - एक कर इन पर विचार करना शुरू किया। ऐसी ही एक परंपरा मंदिरों में 'देवदासी' सेवा को लेकर रही है। पूरे दक्षिण भारत में इसको व्यापक समर्थन मिला हुआ था। श्रीजगन्नाथ मंदिर में भी यह पवित्र परंपरा सदियों तक चलती रही, परंतु तांत्रिकों के बीच जिस प्रकार प्रथा की अधोगति हुई, वैष्णवों में भी ऐसी कुछ प्रथाओं में विकार आता गया। अंत में दक्षिण भारत में इसका विरोध हुआ और फिर प्रायः यह प्रथा विलोप हो गयी। इसी क्रम में श्रीमंदिर (पुरी) में कुछ समय बाद फिर इसकी नियुक्ति की चर्चा चली। कुछ दिन पहले 'देवदासी' नियुक्ति के लिए विज्ञापन भी निकला तो पक्ष - विपक्ष दोनों ने तूल पकड़ा। खैर, भावुकता से हट कर आज के यथार्थ को देखते हुए किसी देवदासी को श्रीमंदिर में नियुक्ति का प्रसंग दबा दिया गया है।

परंतु इसके ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पक्ष के कई क्षितिज हैं, उन्हें अनदेखा कर दिया गया। कलाकारों, साहित्यकारों ने उन पर प्रकाश डाला और बहुत सारे अनछुए प्रसंग सामने आए। ऐसा ही प्रयास ओड़िशा की प्रसिद्ध कथाकार श्रीमती विजयिनी दास ने इस उपन्यास 'देवदासी' में किया है।

मुक्ता माहारी देवदासी के रूप में श्री जगन्नाथजी की पत्नी स्वरूप सारा जीवन पूरी निष्ठा एवं विश्वास के साथ बिताती है। वह एक पवित्र प्रथा को बचाने के प्रयास में गजपति महाराज से अनुमति लेकर नृत्य - संगीत का संस्थान खोलती है। इसी में ओड़िशी नृत्य परंपरा का उत्थान संभव लगता है। यह स्वतंत्रता संग्राम का दौर है। मुक्ता ने परोक्ष समर्थन दिया क्रांतिकारी नरोत्तम भुईंमल के कार्यों को, परंतु उसे अंग्रेजों ने देशद्रोह का नाम दिया। यद्यपि मूलतः नरोत्तम मुक्ता का सगा भाई है, पर परिस्थितियों में यह तथ्य प्रकट नहीं हो पाता। मुक्ता को इस समर्थन के कारण महाप्रभु की सेवा से हटा दिया जाता है। उसकी पालिता कन्या यद्यपि सारे षडयंत्रों के बावजूद देवदासी घोषित होती है, परंतु गजपति महाराज के पार्षदों व रिश्तेदारों के पापों को खोलने के लिए वह सेवा से स्वयं हट कर वकील बनती है। अंत में सब स्पष्ट

हो जाता है। मुक्ता को मरणोपरांत राष्ट्रीय सम्मान मिलता है, परंतु पालिता बेटी का क्रोध कम नहीं होता और वह इस सबको 'हिपोक्रेसी' कह कर ही पटाक्षेप करती है।

ओड़िशा की धर्म धारणा, सांस्कृतिक परंपरा और श्री जगन्नाथजी से सम्बन्धित व्यवस्था का जीवंत-चित्रण विस्तार से हुआ है इस उपन्यास में। साथ ही स्वाधीनता के बलिदानियों की स्तुत्य धारा को शामिल कर इसे और महानता प्रदान की गयी है। वर्तमान दृष्टिकोण और व्यवहार को ध्यान में रख कर विजयिनी ने यह उपन्यास समकालीनता से भी संपृक्त कर दिया। इस प्रकार एक धरातल पर अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों पर समदृष्टि रखते हुए 'देवदासी' एक महत्त्वपूर्ण कृति बन जाती है। इसके अनुवाद में पग - पग पर जगन्नाथ के आशीर्वाद और वर्तमान जीवन के यथार्थ दोनों को समेटने वाली भाषा की जरूरत पड़ी।

हिन्दी अनुवाद की आधारभूमि कभी डॉ. श्रीमती नलिनी पाढ़ी ने प्रस्तुत की थी। आज प्रकाशन के अवसर पर उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त कर रहा हूँ। ऐसी सांस्कृतिक कृति को हिन्दी पाठकों तक पहुँचाने के लिए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का भी ऋणी रहूँगा।

'देवदासी' उपन्यास ओड़िशा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी हुआ है।

शंकरलाल पुरोहित

आभार

इस किताब की रचना करते समय जिन लोगों की सहायता मिली है, वे हैं- नृत्यगुरु केलू चरण महापात्र, देवप्रसाद दास, देवदासी श्रीमती हरिप्रिया देवी, श्रीमती कोकिला माहारी, मां कुमुदनी पट्टनायक, चाची बसंत कुमारी पट्टनायक, मौसी श्रीमती शांति महान्ति, बंधु गणेश प्रसाद पारिजा और पुरी पंडा श्री लक्ष्मीण पढ़ियारी। इसके साथ - साथ स्वयं श्री जगन्नाथजी, जिनकी करुणा बिना यह प्रस्तुति कभी संभव नहीं हो सकती थी।

इसके अतिरिक्त डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र के निरंतर आग्रह तथा डॉ. नलिनी पाढ़ी के योगदान ने 'देवदासी' को वृहत्तर पाठक समुदाय तक पहुँचाने में महती भूमिका निभाई है। अनुवादक डॉ. पुरोहित ने जिस श्रद्धा से यह कार्य किया है, उसके प्रति श्री जगन्नाथजी से यही अनुरोध करने का मन होता है - वे ऐसी साहित्य सेवा में और अधिक व्रती बनें।

उत्कल की सांस्कृतिक भावभूमि पर आधारित इस कृति को हिन्दी पाठकों के सामने प्रस्तुत करने के लिए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान आगे आया है, इसके लिए मैं उसकी भी आभारी हूँ।

विजयिनी दास

आद्य पर्व

दर्पण सच ही बोलता है। बदलती जाती हैं जिन्दगी की छोटी-मोटी बातें। अम्लान गुदगुलाते यौवन की बातें।

देवदासी मुक्ता हाथी दांत के बने दर्पण के सामने केश-विन्यास करते-करते सोच रही थी। किन्हीं मुग्ध क्षणों की तरह बीत गये इतने साल, इतने उदयास्त! पता ही नहीं चला उसे! आज कानों के पास झांकते कुछ सफेद बाल याद दिला रहे हैं उसे--देवदासी मुक्ता, तुम्हारे शरीर के यौवन का सूर्य मध्यान्ह में पहुँच गया है। अस्त हो जायेगा कुछ समय बाद। चारों तरफ अंधेरा छा जायेगा। उसके बाद क्या करोगी? क्या करोगी?

सवाल पूछ रहा है प्रतिबिंब। वही आदिम प्रश्न, जिसे टाल जाने का प्रयास करता आया है आदमी युग-युग से। मुक्ता चौंक उठी। दर्पण में प्रतिबिंब अस्पष्ट और धुंधला दिखाई दे रहा है। पहने हुए पीले रंग के पाट से पोंछ डाला धीरे से।

नहीं, धुंधला ही दिख रहा है। दर्पण पर जमी धूल बिलकुल साफ नहीं की जा सकती।

दासी देवदत्ता आकर खड़ी है। वह चौंक उठी, आज यह क्या अनहोनी देख रही है! जो सदा हंसमुख रही, आज वह चिंतित क्यों लग रही है? देवदत्ता ने मुक्ता को हिला कर कहा- "दीदी, क्या हुआ है तुम्हें? ऐसे क्यों खड़ी हो?

वह सतर्क हो गई। सहज होकर कहने लगी - "नहीं दत्ता, कुछ नहीं। इस दर्पण पर धूल जम गई थी। प्रतिबिंब धुंधला दिख रहा है।"

देवदत्ता जरा सी मुस्करा दी। आँचल से मुक्ता की गीली आँखें पोंछ डाली - 'देखो तो, अब धूल है दीदी?'

सच! दर्पण में मुक्ता का दुग्धधवल लावण्य प्रतिबिंबित हो रहा था! काले घुंघराले बाल, पद्म-सी आँखें, इंद्रधनुष-सी भ्रू लता, तिलपुष्प की तरह नाक! ताजा गुलाब-से रक्तिम गंडस्थल, जरा-सी मुस्कान अधखिले फूल-सी अधरों पर। गोरी बछिया! आज भी यौवन की जैसे पताका उड़ाती सुगंध भरी देह का पद्मवन। तो क्या आँखों में जमे आँसुओं के कारण सब कुछ अस्पष्ट दिख रहा था? आईने की कोई गलती नहीं। गलती थी सिर्फ अपनी। मुक्ता जरा-सी लजा गई। वह इतनी लज्जित हुई कि दत्ता भी समझ गई। छिपाने से फायदा ही क्या?

देवदत्ता की आँखों में आँखें डाल कर कहा - 'दत्ता, पता है, मैं बूढ़ी हो गई!' देवदत्ता ने ठहाका लगा कर कहा - 'क्या कह रही हो, फिर से कहना जरा! क्या बूढ़ी.... दीदी...?'

बुढ़ापा क्या आषाढ़ वर्षा की वन्या या भाद्र मास की फुहार या सावन की ज्योत्सना है? यौवन का फिर अर्थ ही क्या होगा? बताना जरा?

मुक्ता ने रोक दिया। 'रहने दो, कविता बहुत हो गई। तुम्हें विश्वास नहीं होता! तो यह देख' - कान की ओर अंगूठा कर दिया।

मानो आषाढ़ की घटाटोप रात में एक तार झांक रहा है। मुक्ता के पके केश निकालने के लिए वह झुक गई। इतनी-सी बात के लिए इतनी छटपटाहट! इतनी-सी बात के लिए रूठ गई। तुम्हें देख कर कोई कह सकता है कि अट्ठारह-उन्नीस से ज्यादा की हो? ऋषि - मुनि भी तुम्हें देख लें तो...

दो पग पीछे हट गई मुक्ता। पके केशों को निकालने को उद्यत हाथ हटा दिया। सुप्त देवदासी के अंदर मुक्ता माहारी जाग उठी। कान बंद कर आँखें गीली कर कहने लगी - "बस दत्ता, बस! मैं जगन्नाथ जी की सेवादासी, उन्हें समर्पित हूँ। मेरा शैशव, कैशोर, यौवन और बुढ़ापा सब कुछ उनके लिए अर्पित है। मेरी सारी जिन्दगी उनके लिए समर्पित है। उन पुरुषोत्तम के अलावा और किसी पुरुष के साथ मेरा नाम जोड़, हँसी-ठिठोली, उसे सुनना भी पाप है। मेरा रूप - यौवन चर्चा की चीज नहीं। मेरा सब कुछ उन्हें समर्पण कर देना ही मेरा कर्तव्य है। यह मेरा जीवन है और जीविका भी। इन पके केशों को यहीं रहने दो। प्रभु जगन्नाथ जी को स्वीकार किया है। उनकी सेवा में, उनके प्रेम-प्रणय में धन्य हूँ। जीवन उनके साथ बिता दिया है। कितने साल! निविड़ प्रेम में बीते समय की सूचना दे रहे हैं ये पके केश! एकाकार ही होते जायेंगे अब वे। सुबह के आलोक से एकाकार होते जायेंगे। दत्ता, तू मेरे सौंदर्य की चर्चा और कभी मत करना।"

मुक्ता वहाँ से हट कर दूसरी ओर पूजाकक्ष में चली गई। आज श्रीमंदिर में बड़सिंहार (बड़ा शृंगार) है। शयनकालीन अर्चना के लिए जाने की उसकी पारी नहीं है। पारी बंट गयी हैं सब माहारियों में। सब सम भाव से समर्पिता हैं, जगन्नाथजी के पास। ३६५ दिन बंट चुके हैं उनकी सेवा में अर्पित होने के लिए।

जिस दिन पारी नहीं होती, उस दिन मुक्ता का समय कटता ही नहीं। उसे लगता है जगन्नाथजी उसे बुला रहे हैं। उनकी विशाल आँखें उसे बुला रही हैं। वे लंबे

हाथ उसकी ओर बढ़ रहे हैं, उसे आलिंगन में भरने के लिए। मुक्ता के शरीर में अजीब सिहरन पैदा हो रही है। रात और भी लंबी हो जाती है। उनींदी आँखें देर तक ताकती रहती हैं। दीप के प्रकाश में जगन्नाथजी का चित्र प्रेम से बुलाता है। प्रेम में भीगे स्वर कहता है - 'आओ, मुक्ता। मुक्ता माहारी!'

उठ कर चली जाती है पूजाघर की ओर। वह घुंघरू पहन आलता से पांव रंजित करती है। हाथ में चूड़ियाँ, बटफूल, खजूर कड़ा। बांहों में बाजुबंध, कटकी बाजू और ताइत बांधती है। कमर में करघनी, गले में चंद्रहार और कमर में पट्टिका बांधती है। गले में सोने की लड़-माला, हरड़फल, डंकिमाल, धानु माला, चाप सरी गजबंध आदि पहनती है। कानों में झुमके, उसके ऊपर कर्णमाला, आँखों में काजल, सिंदूर का टीका माथे पर लगाती है। द्वादश तिलक का श्रीमंदिर का टीका, उसके नीचे नथ, नाकचणा, नाटमयूरगुणा और हीरा खचित नोलक पहती है। पिपली की पेचवर्क (कारीगरी) कांचली के साथ बरहमपुरी पाट (ब्रहमपुरी सिल्क) की साड़ी पहनती है। ऊपर सम्बलपुरी 'खंडुआ' ओढ़ती है। नववधू के रूप में सजधज कर विह्वल हो जगन्नाथजी के पास गीतगोविन्द गाया करती है। कभी उसकी ताल पर अस्थिर पदों से नाचती है। प्रभु जगन्नाथजी के लिए मुक्ता माहारी कभी अभिसारिका चंद्रावली बन जाती है, तो कभी प्रेम पगली राधिका। कभी यशोदा बन कर माखनचोर बालगोपाल को दंड देती है। कभी बंदीशाला में मातृवत्सा देवकी बन कर सौंप देती है श्रीकृष्ण को बसुदेव के हाथों, गोप में छुपाने के लिए। कृष्ण होकर, कभी गोपी बन कर अक्रूर का रथ रोक लेती है। उसके नृत्याभिनय में खिल उठती है 'चउक', मीनादांडी, वर्तुल, घेर और द्विमुखी मुद्राएँ। दर्शक हैं सिर्फ जगन्नाथजी। उसके पति, मुक्तिदाता। उनके मनोरंजन के लिए वह आज इस शरीर को लिए खड़ी है। उनके लिए समर्पित उंगुलियों में हैं मुद्राएं। चाल में नृत्य। तरह-तरह की चलने की मुद्राएँ। अंग में त्रिभंगी निखर जाती है। उस समय मुक्ता समझ नहीं पाती कि वह सचेत है। अवचेतन अवस्था में उसका क्लांत शरीर लोट जाता है, प्रभु के चरणों में।

आज उसकी पारी नहीं है। ठाकुरजी का 'बड़सिंहार'। धूप छिपने में काफी देर है। अभी तो शाम हुई है। पश्चिम दिशा में सूर्य के पदचिन्ह गये नहीं हैं। पास के मठ से मंद शंखध्वनि अमृत भर देती है।

प्रभु की संध्या आरती का समय। अभी गरुड़स्तंभ के निकट 'बाहारगाउणी' विनोदनी माहारी आरती गा रही होगी। घंट - घंटा, काहाली, मृदंग और वंशी की ध्वनि में निनादित हो रहा होगा जगमोहन कक्ष!

लगा निस्तेज शरीर में किसी ने नवजीवन, नई शक्ति भर दी हो। प्रभु जगन्नाथजी की विग्रह को देख लिया थोड़ी देर के लिए। तिरछे अधरों पर मृदुल हँसी! उसकी छोटी-सी कोठरी को मधुमय कर असीस व्याप्ति की महक बिखेर रही है।

दीप जलाया मुक्ता ने। आरती के पात्र में कपूर और धूप जला कर उदास स्वर में गाने लगी -

दीपं ज्योति परंब्रह्म, दीपं ज्योति जनार्दनं

दीपं ज्योति हरते पापं, संध्या दीपं नमोऽस्तुते।

देवदत्ता शंखध्वनि करने लगी। मुक्ता के सारे शरीर में नैसर्गिक रोमांच। सजल नयनों से पुरुषोत्तम जगन्नाथजी से वह मन ही मन आकुल निवेदन कर रही थी - "प्रभु, आप का विरह मैं सह नहीं पाती। रत्नवेदी के नीचे बुलाने की दया कब होगी? यह आप ही जानें। मैं तो एक मामूली दासी हूँ। विशाल जीवजगत का एक तुच्छ - सा प्राणी।" फिर प्रणाम कर ठाकुर घर से बाहर बरामदे की ओर चली आयी। हाथ में श्रीमद्भगवत्गीता थी।

दयणा दासी ने आकर पूछा - "आज तो मंदिर से आई 'खेई' (मंदिर की ओर से दत्त प्रसाद) वैसे ही रखा है। रात के लिए कुछ बनाऊँ?"

मुक्ता ने मना कर दिया। दयणा, आज रात में कुछ खाऊँगी नहीं। तुम दोनों अपने लिए जो कुछ करना है, कर लो। हाँ, आज गुरुजी आने को कह रहे थे। अगर आयें तो उनके लिए भी सरपुली बना कर रख दो।

"मैं पंचामृत सेवन करके रह जाऊँगी।" दयणा आश्चर्य से देखती रही मुक्ता की ओर। बहुत अद्भुत हैं ये। इन को भूख - प्यास कुछ नहीं लगती। अगर सारे दिन का खाना सिर्फ 'नवातपणा' (मिश्री का शर्बत) एक गिलास और एक अमरुद, जो ठाकुरजी को समर्पित हुआ था, मिल जाय तो बहुत होगा।

डर कर पूछा - "आज मंदिर में पारी नहीं है। पारी वाले दिन उपवास रहने की विधि है। आज क्यों? तबियत अच्छी नहीं है क्या? बार्ली या साबूदान कुछ बना दूं"

मुक्ता हंसी। दयणा की चिबुक छू कर प्यार से कहा - "नहीं पगली, मैं बिलकुल ठीक हूँ।" उसके बाद दीर्घ सांस छोड़ते हुए कहा - "कौन जानता है कब प्रभु से बुलावा आ जाय?" कहते - कहते मुक्ता अन्यमनस्क हो गई। उसकी दृष्टि

नीले आकाश की ओर निबद्ध हो गई, जहाँ अगणित तारों का मेला है। सचमुच जीवन की सारी जिज्ञासा वहीं इकट्ठी हो गई है।

दत्ता ने आ कर हिला दिया - "दीदी, मीना नायक आये हैं।" स्वप्न से उठने की तरह पूछा - "मीना नायक? आज फिर बेवक्त क्यों?"

माथे पर आँचल डालते हुए स्तंभ के पीछे खड़ी हुई मुक्ता। दीवार के उस पार मीना नायक।

देवदत्ता ने मीना नायक से प्रश्न किया - "नायक जी, दीदी पूछ रही हैं, आप अचानाक कैसे पधारे?"

मीना नायक लक्ष्मण मुदली ने मृदु स्वर में कहा - "मुक्ता माहारी से बता देना कि श्री जी का आदेश हुआ है कि आज बड़सिंहार का नृत्य वह करेगी।"

फिर दत्ता ने प्रश्न किया - "आज तो मुक्ता माहारी की पारी नहीं है।"

मुस्कराते हुए लक्ष्मण मुदली ने जवाब दिया - 'कालिया की इच्छा है मुक्ता माहारी को देखने की। वृंदा माहारी की तबियत अचानक खराब हो गई, इसलिए राजगुरु ने मुक्ता माहारी को निमंत्रण के लिए निर्देश दिया है। मैं तो आज्ञाकारी हूँ। पारी के दिन देवदासियों को लेकर श्रीमंदिर में पहुँचा देना और सेवा के अंत में उनको सुरक्षित अपने - अपने घर वापस पहुँचा देना मीना का काम है। मैं क्या जानूं लीलामय ठाकुर की लीला। ठीक है, तू मुक्ता माहारी को खबर दे - बड़सिंहार पूजा के समय तैयार रहेगी। मैं शिविका लेकर पहुँच जाऊँगा।'

मीना नायक चले गये।

थोड़ी देर पहले मुक्ता के मन में जो अवश भाव था, मीना नायक के आगमन और प्रत्यागमन ने उसको पोंछ दिया। सचमुच किसी अनदेखे हाथ ने निर्देश दिया। नियंत्रित कर दिया उसके शरीर और मन को, मंथर गति से द्रुत लय की ओर, अवरोहण से आरोहण की ओर।

अजीब चंचलता के साथ मुक्ता माहारी ने स्नान किया। हाथी दांत की कंघी लेकर इंतजार कर रही थी देवदत्ता, मुक्ता माहारी के केश विन्यास के लिए। स्नानागार से निकलते ही उनके केश विन्यास में लग गई।

मन की चंचलता में मुक्ता हर घड़ी प्रश्न कर रही थी - 'अब खत्म हो गया दत्ता।'

दत्ता ने मुक्ता के लंबे केशों में कंघी करते हुए झूठे क्रोध में कहा - 'ऐसे अगर जल्दबाजी करोगी तो दत्ता फिर कभी केश विन्यास करने नहीं आयेगी। मंदिर जाने में तो देर है। अभी से इतनी उतावली क्यों?'

मुक्ता सोच रही थी। सोचते - सोचते रोमांचित हो रही थी। प्रेमाश्रु से चक्षु सजल हो गये। ओह, इस मामूली - सी दासी पर प्रभु की कितनी कृपा है! कितनी करुणा है! इतनी दासियाँ रहते हुए भी वह उसको ही ढूँढ रहे हैं! आज मगर वह कुछ खा लेती तो प्रभु के निमंत्रण का क्या उत्तर देती? आज उस कालिया ने ही तो उसे बचाया है।

सबसे दगाबाज तो यह रसनेंद्रिय हैं। उसके मोह में सचमुच प्राणी कितना कष्ट भोगता है! विषय - विष में छटपटा जाता है। रोग - शोक और दुःख से तिल - तिल जल रहा है।

देवदत्ता सुवासित तेल लगा कर केश विन्यास कर रही है। हाथ में कटकी चांदी के हत्थे वाला तारकसी का दर्पण लेकर बैठी है मुक्ता। दर्पण देखने की उसकी इच्छा नहीं है। उसका मन सिर्फ रत्नसिंहासन के पास कलाहाट द्वार पर है। नाक चंदन, कपूर और तुलसी की महक को तरस रही है।

दत्ता ने मुक्ता के जूड़े को एक साथ बांध कर बीच में रेशमी डोर से कस कर बांध दिया है। उस गुच्छे को तीन भागों में बांट कर तीन बेणियाँ बनायी हैं। धागे में बंधे केशों में सोने के पात लगा कर हाथी दांत की कंघी खोंस दी। सोने की कंघी को केन्द्र कर दोनों ओर दोनों बेणियों को लेकर छतीबेणी या चकाबेणी बांध दी। बीच की बेणी झूल रही थी। उसमें सोने - चांदी, मुक्ता और प्रवाल वाले कांटे भी खोंस दिये। मोगरा और सेवती फूल लटका दिये। पुष्परेणु का प्रलेप चेहरे पर लगा कर काजल और सिंदूर लगा दिया। नासिका पर वैष्णवी तिलक में परम वैष्णवी दिख रही थी मुक्ता माहारी।

मुग्ध दृष्टि से उस भुवनमोहिनी मुखपद्म को देखते हुए दत्ता ने कहा - "अब मेरा काम हो गया, आप अलंकार पहन लीजिए!"

पीतल के कामदार शीशम की संदूक। मुक्त ने अलंकार मंजूषा निकाली। रक्तवर्ण लाल के ऊपर हरिताल का लेप। सर्वांग कलाकारी दिख रही है। कांचि विजय के दृश्य, दशावतार, राधाकृष्ण की युगलमूर्ति और राम अभिषेक का मनोरम दृश्य! बीच-बीच में भिन्न आकृति के कांच के टुकड़े शोभा बढ़ा रहे हैं। ओड़िशा के

व्यवसायी जावा, सुमात्रा और सिंहल द्वीप में इस पुरी निर्मित लाख की पेटियों या 'जउपेड़ी' का व्यवसाय कर लाखों स्वर्णमुद्रा लेकर लौटते थे। पुरी के चित्रकारों ने कौलिक वृत्ति के जरिये उड़िया इतिहास, कला और संस्कृति को जीवित रखा है।

परंतु और कितने दिन? समय का कठोर हाथ उस अतीत को पोंछ रहा है। तन्मयता में नृत्य की ताल पर श्रृंगार रस खिला रही है देवदासी मुक्ता माहारी।

एक दीर्घ सांस ली मुक्ता ने। देवदासियों की नृत्य सेवा कौलिक वृत्ति नहीं है। यह एक गौरवदीप्त परंपरा है। युगों से चली आ रही यह मंदिर परंपरा युगों तक रहेगी!

- ज्यादा पुरानी बातें न कहें तो अच्छा है। मुक्ता देखती आ रही है कि उसकी दादी के समय में जितनी देवदासियाँ सेवाकार्य में नियुक्त थीं, उसकी मां के समय में उनकी संख्या घट गई थी। उसके अपने समय में तो मां की तुलना में और भी कम हो गई हैं। उनकी संख्या घट गई है। यही नहीं, बल्कि कलात्मक, सामाजिक, आर्थिक और नैतिक अवस्था भी गिर गई है। उसके परिवर्तियों का भविष्य क्या होगा? नीलोत्पल नयनयुगल क्या देवदासियों के नृत्य देखे बिना विनिद्र रह जायेंगे?

नहीं - नहीं, मुक्ता ऐसा होने नहीं देगी। उसके शरीर में जब तक सांस है, तब तक ठाकुर जी के सामने सोलह कला युक्त नृत्य प्रस्तुत करती रहेगी।

लक्ष्मी की मानसिक स्थिति अनुभव कर नारायण के सामने श्रृंगार रस की मुद्रा प्रस्फुटित करेगी। देवताओं को नृत्य की सहायता से सुख प्रदान कर उनकी सखी बन कर रहेगी। उसके बाद तो वह अपनी जीवनी शक्ति की एक बूंद भी नहीं छोड़ेगी इस धरती पर, जो उसका रिक्तस्थान भर सके।

थोड़ी देर के लिए देवदासी मुक्ता के अंदर नारी देवदासी का रूप हाहाकार कर जाग उठा। कोई जैसे अंतर से आर्तनाद कर रहा है - मुक्ता-मुक्ता! मां..... मां.....!

मुक्ता को समझने में तनिक भी देर न लगी कि यह उसका 'मातृत्व' है, देवदासी नारी हो सकती है। मातृत्व पा जाने पर तो वह प्रभु की सेवा से वंचित रह जाती है।

अपनी चिंता में खुद ही खो गई मुक्ता। आज सुबह से उसका मन अशांत और भ्रांत हो रहा है बार-बार। ये सारी असंगत चिंता देवदासी के लिए पाप और अन्याय है।

मुक्ता ने शारीरिक और मानसिक शुद्धता के लिए पद्मासन में ध्यानमग्न हो गंगामंत्र का मन ही मन स्मरण किया। नयनों से आँसू झर रहे हैं। सचमुच पतितपावनी गंगा बहती हुई शुद्ध करती है, मुक्ता का तन और मन। प्रसाधन कक्ष से जाते - जाते स्तब्ध हो कर रह गई देवदत्ता।

तब से मुक्ता वैसे ही बैठी हुई है। सामने खुली पड़ी है अलंकार से भरी पेटिका। मुक्ता माहारी ध्यान में खोयी है।

क्या हुआ आज? सुबह से कुछ सोचते हुए दूसरे ही जगत में खोयी है।

क्या पता, रात - दिन पुराणों में खोयी रहती है। कोई देवी - देवता उसकी काया में प्रवेश कर गया होगा। 'दीदी - दीदी' योगमुद्रा से जगा कर दत्ता ने कहा - "दीदी, मीना नायक आ गये, तुम तब से वैसे ही बैठी हो, अलंकार कब पहनोगी?"

कुछ सोचते हुए मुक्ता ने कहा - "ये तो ज्यादा हो गये दत्ता, मेरा मन करता है नासाग्र पर हरिमंदिर का टीका, कपोल में तिलक की बिन्दी और कंठ में तुलसी की माला में अलावा और कुछ न पहनूँ। वृंदावन में 'वृंदा' गोपियों की तरह मैं प्रभु का नाम ही कंठ में, हृदय में, कटि और कर में भूषण बना लूँ, किन्तु जगन्नाथ तो चाहते हैं कि मैं इन अलंकारों को पहन कर ही उनकी सेवा में जाऊँ।"

फिर वही पागलपन! दत्ता को सचमुच गुस्सा आ रहा था। मीना नायक की आवाज सुनाई दे रही है - 'मुक्ता माहारी, देर क्यों?'

दत्ता ने कहा - 'दीदी, यहाँ आओ - मैं तुम्हें अलंकार पहना देती हूँ।' कहते हुए पेटिका से अलंकार निकाल कर रख दिये।

सजा कर गूँथते हुए जूड़े में सोने की चऊरी भुण्डि और चांदी की झराकंठी पहना दी। कानों में मल्लिका, चंद्रावली और कर्णपेण्डी, नाक में नथ, नोलक, मयूरगुणा, गले में तुलसी माला उसके नीचे महुड़ और जगबंध हार पहना कर बाहु में ताइत बाजुबंध, हाथों में चाहिचूड़ी, पंइच खड़, बटफूल और उसके आगे गजरा पहना दिया। मुक्ता की पद्मकलिका - सी हथेली में हाथपद्म पहनाने के बाद दसों अंगुलियों में नवरत्न की मुद्रिका पहना दी। पैरों में झुटिया, पायल, बांकि पाहुड़ और बेंग पटिका बहुत सलीके से पहना दी। सारे गहने पहनाने के बाद हल्दी रंग की ब्रहमपुरी पाट की साड़ी भी। फिर कहा - 'दीदी अब तुम कांचली पहन लो।'

मुक्ता ने सूक्ष्म कारीगरी वाली रेशमी कांचली पहनी। दत्ता ने मुस्कराते हुए कांचली की कसनी बांध दी। जल्दी से पाट की ओढ़नी को सिर पर रख कर मुक्ता

मीना नायक के पीछे-पीछे आकर शिविका में बैठ गयी। शिविका आकर बड़दाण्ड के अरुण स्तंभ के पास रुकी। उस समय जगन्नाथजी के दर्शन को आने वाले दर्शकों की संख्या कम हो गई थी। श्रीमंदिर को केन्द्र बना कर आने वाले भक्त, जिज्ञासु, अतिथि और ज्ञानियों की हलचल कम हो गयी है। अब जगन्नाथजी के बड़सिंहार का समय हो गया है। सारे दिन जगत के दुःख-सुख और दर्द सुनते हुए थक गये हैं। कुछ देर विश्राम करेंगे। मंदिर के अंदर 'प्रतिहारी' भण्डार मेकाप, खटशेजमेकाप और आरती मेकाप आदि सब बड़सिंहार के लिए व्यस्त हैं। राजगुरु स्वर्ण दण्ड लिये हुए आ चुके हैं।

मुक्ता माहारी ने गरुड़ स्तंभ के पास भूमि तक झुक कर प्रणाम किया। जय - विजय द्वार तक चली गई। प्रभु का बड़सिंहार वेश देख कर मुक्ता का तन - मन अपूर्व रोमांच में भर गया। जगन्नाथजी के विस्तारित नेत्रों के भीतर दृष्टि खो गई। बार-बार मुक्ता माहारी गुनगुना रही थी।

"प्रभु! इस दासी के प्रति कितनी दया है, तुम्हारी! तुम्हारी असीम दया, अनंत प्रेम मुझ जैसी मामूली स्त्री संभाल नहीं पा रही है।" कीर्तन शुरु हो गया था।

उधर जय-विजय द्वार के पंडे और पढ़ियारी अपने काम में लगे हैं। प्रतिहारी ने बड़सिंहार का नैवेद्य रखा। पूजा पंडा तुलसी जल से अभिसिंचित करने में व्यस्त है। घंटी बज रही है। काहाली से गुरु गंभीर ध्वनि निकल कर नीलचक्र को छूते हुए नीले आकाश से एकाकार हो रही है।

भंडार मेकाप (सेवक) ने भंडार खोल दिया। खटशेज मेकाप ने भंडार से प्रभु जगन्नाथजी, बलभद्रजी और सुभद्राजी ने रत्नपगलंग ला कर रख दिये। अर्द्धनारीश्वर की शयन मूर्ति उनके पास हैं। डाब, पान और पिठऊ की आरती का अभिनव दृश्य देख कर भक्त आनंद विभोर हो 'जय जगदीश' की जय जयकार कर रहे हैं।

उस भक्तिभरी ध्वनि से मुक्ता सजग हो उठी। उस समय ठाकुरजी आकर विशाल डमरु के ऊपर विराज चुके हैं। मुक्ता अपने सहज सुललित स्वर में गा उठी भक्त कवि जयदेव की अमृतमय पदावली...

'आश्रित कमला कुच मण्डन हे'... ठाकुरजी का पर्दा पड़ गया। गीत की सुमधुर ध्वनि के साथ देवदासी मुक्ता माहारी के चंचल चरण युगलों से बज उठे नूपुर, पायल, रिमझिम। सचमुच मालती लता कुंज में प्रियतम श्रीकृष्ण को ढूंढते हुए अभिसारिका राधिका विलंबित चांद की छाया में घूम रही है।

प्रभु के उन श्याम नेत्रों में जैसे तंद्रा का घना आवरण छाता जा रहा है। तन्मय होकर शृंगार रस में डूबी मुक्ता माहारी उस कलाहाट द्वार पर। पढ़ियारी बाहर पुकार रहे हैं 'मणिका - मणिका!' भीतर आरती मेकाप जोर से...।

ठाकुरजी आराम कर रहे हैं। मुक्ता माहारी के चरण युगल धीरे-धीरे शिथिल होते गए। अंत में निर्वाक बन गया सारा वातावरण।

क्लांत पदों से जगमोहन के सात पावछ से हो कर वह उतरती आ रही है। अचानक शंख ध्वनि की तरह एक आवाज ने आकर उसके पैरों को जकड़ लिया। पीछे की ओर न देख कर वहीं खड़ी रही। आँखें उठा कर देखने लगी। बड़ देवल की सारी बत्तियाँ बंद कर दी गई हैं।

आकाश के आंचल से आयी हुई चांदनी मंदिर प्रांगण में हल्की आभा पैदा कर रही है। उस अंधेरे में उसे पता चला कि उसके सामने एक दीर्घकाय पुरुष आ कर खड़ा है। गंभीर स्वर में छाया मूर्ति कहने लगी - "प्रभु जगन्नाथजी के लिए उत्सर्गीकृत यह नृत्य सचमुच चमत्कार है, मुक्ता माहारी! इसीलिए हृदय से अभिनंदन करता हूँ!"

मुक्ता जरा सरक गई। माथे का आंचल धीरे से सामने लाकर मृदु स्वर में उत्तर दिया - "आप के अभिनंदन के लिए धन्यवाद।"

"सिर्फ बातों से ही नहीं चलेगा, आपको कुछ ग्रहण करना होगा।" युवक मुक्ता की ओर अपनी अजंलि बढ़ा कर खड़ा रहा।

उस प्रसारित अंजलि की ओर मुक्ता निहार रही थी। अंधकार हटता जा रहा है, उसकी उज्जवलता में। प्रसारित अंजलि में शायद स्वर्णालंकार हैं। युवक कहने लगा - "मेरा यह छोटा-सा उपहार लेने में हिचकिचाइये नहीं, देवदासी!"

आरती के समय गरुड़ स्तंभ के पास, धूप के समय जगमोहन के पास और बड़सिंहार के समय जय-विजय द्वार के पास नृत्य करते समय, गीतगोविन्द गाते समय भेंट में धन, रत्न, गहने आदि मिलते हैं। कोई-कोई भक्त तन्मय होकर हाथ से सोने का बाला, गले से रत्नमाला भी निकाल कर देवदासी के नृत्यरत पैरों के पास समर्पण कर देते हैं। परंतु नृत्य के अंत में बेढ़ा के भीतर इस तरह उपहार लेने में मुक्ता का मन संकुचित हो गया। उस द्विविधाग्रस्त मन को अंधकार में ठीक से न देखने पर भी आगंतुक ने विनय के साथ कहा - 'देवदासी, इसे 'ना' मत कहना! देवता के चरणों में अर्पित पुष्प और चंदन क्या ठुकरा देते हैं? मैं तुम्हारी नृत्य कला का पुजारी हूँ, एक तन्मय भक्त हूँ। भक्त का थोड़ा - सा तण्डुल भी भगवान आदर से लेते हैं।

तुम तो भगवान की परिणीता लक्ष्मी की साक्षात प्रतिमा और कला की देवी हो। मेरा नैवेद्य ग्रहण कर धन्य बनाओ, देवदासी!

उस कण्ठ में आत्मसमर्पण का भाव इतन भरा था कि मुक्ता 'ना' न कर सकी। अंजलि फैला दी, एक वजनी रत्नहार से वह भर गयी।

मीनानायक ने आकर बुलाया। मुक्ता माहारी देर क्यों, चलें। मुदुली जय विजय द्वार बंद कर मुहर दे चुके हैं, और देर न करें।

मीनानायक के पीछे-पीछे चल रही है मुक्ता माहारी। बाईस पावछ से उतरते समय मुक्ता ने प्रश्न किया- 'नायकजी, आप इन सज्जन को जानते हैं?'

मीना नायक ने जवाब दिया - "उनको कौन नहीं पहचानता, मंदिर में! रोज संध्या आरती के समय भजन गाते हैं। शायद कोई कवि हैं। 'जेगाघर' में अपना आसन जमा लेते हैं। पिछले साल दोल यात्रा के समय बड़दाण्ड में कांचिविजय यात्रा इन्होंने खुद लिख कर जेगाघर के बच्चों को सिखायी थी। सारा खर्चा उनका था। नाम याद नहीं आ रहा है, मगर वे परिचित आदमी हैं। बहुत दिलदार भी। जेगाघर (अखाड़े) में दंड बैठक करने वालों में भी जो कला की चेतना भर देता है, वास्तव में वह सच्चा कलाकार है!"

मुक्ता जगन्नाथजी के प्रति मन ही मन कह रही थी -'प्रभु, अपरिचित इस कलाकार को सुख - चैन दें, उसकी कला को बनाये रखें। शिविका के पास दोनों पहुँच गये थे। मीनानायक आगे जा रहा है और उसके पीछे मुक्ता। शिविका चली चुड़ंग बस्ती की ओर।

घर पहुँच कर अपने अलंकार खोल दिये और खोल दिया सुंदर सजा जूड़ा। मुक्त कुंतल बिखर गये उसकी पीठ पर। सचमुच बादल का उत्तरीय छूट गया, आकाश की चांदनी छिटक गयी अंग-अंग पर। अपने गहनों के साथ - साथ आज के उपहार में मिला हार भी उसने रखा उस पेटिका में। मां के गहनों में मिला देने से दो डिब्बे भर जाते थे, परंतु आज एक पेटी में सिर्फ एक चौथाई ही बचा रह गया है।

गहरी सांस छोड़ी मुक्ता ने। सब उसी कालिया की इच्छा है। दयणा ने आकर कहा - "खाना लगा दूँ दीदी?"

"हाँ", कह कर मुक्ता हाथ - पांव धोकर ठाकुर जी को प्रणाम कर आयी। केले के पत्ते में परोसा गया, अदरक और हींग में बनी खिचड़ी, दही - नारियल का रायता और दाल। मुक्ता के मंदिर जाने के बाद ये सब बना है।

यही तो मुक्ता का अमृत भोजन है। मुक्ता ने पूछा - ''दयणा! संगीत गुरु आये थे?''

दयणा कुछ उत्तर दे, इससे पहले ही दत्ता ने कहा - ''आज तो नहीं आये, कल जाकर खबर दे आऊँगी।''

- 'हाँ, दीदी, तुम्हारे मंदिर जाने के बाद वृंदा माहारी की दासी तुलसी आयी थी। वृंदा माहारी की तबियत ठीक नहीं है। वह बिस्तर से उठ नहीं पाती।'

मुक्ता कहने लगी - ''आज तो इतनी रात हो गई। कल पूजा के बाद जाऊँगी। आठ दिन पहले उसके साथ भेंट हुई थी, तब वह ठीक थी। अचानक ऐसा क्या हो गया! भगवान उसे स्वस्थ कर दें। उसके अलावा माहारी जाति का और कोई सहारा नहीं।''

नीलाचल के नीले आकाश में द्वादशी का चांद मलिन होकर शायद सो गया है। सारा शहर सोया है। बड़सिंहार धूप और देवदासी नृत्य के बाद जगन्नाथजी की पौढ़ तक जगने वाले महाराज भी सो गए होंगे।

आकाश में कोई पक्षी उड़ता जा रहा है। शायद भूल गया है अपना ठिकाना। मुक्ता की निद्राहीन आँखें पूरी खुली हैं। मां की बात आज बार-बार याद आ रही है। किसी की तबियत के बारे में जानने पर अपनी अस्वस्थ मां की छवि सामने आ जाती है।

कितनी उम्र हुई थी मां की? जिन्दगी की दोपहर, फिर भी उनकी चाल - ढाल, रूप, यौवन और तेजोदीप्त आँखें सुन्दर थीं। प्रभु जगन्नाथ के चरणों में उनकी अटल भक्ति और आस्था - विश्वास। इसके साथ - साथ वह एक अच्छी गृहणी भी थी। सच है कि मां संसारी नहीं थी, घर नहीं बसाया था, पर घर बसाने वाली औरतों से कोई कम नहीं थी। वह उनसे बढ़ कर कुशल थी।

मुक्ता क्या वैसी हो सकी? अंग सज्जा या घर की सजावट या रसोई किसी में भी उसकी रुचि नहीं। कोई स्पृहा ही नहीं! नृत्य - संगीत चर्चा और उसका अभ्यास, जगन्नाथजी की सेवा, उसी में जीवन के सारे प्राप्य से उसकी अंजलि भर गई है। संसार नहीं बसा सकी, यह तुच्छ मनोवृत्ति उसके मन को कभी नहीं छू पायी। वह कभी - कभी सोचती है - माहारी बन कर उसका जीवन धन्य हो गया! उसका नारी जीवन सार्थक बन गया है। जगन्नाथजी की सेवा में जो अपने को लीन कर सकता है, उसका जीवन धन्य हो जाता है। जगन्नाथजी की सेवा में जो अपनी सुध - बुध

खो बैठा है, उससे भाग्यशाली और कौन हो सकता है? बचपन में मां यही सिखाती रही। जगन्नाथजी में अटूट भक्ति, अकूत विश्वास, अनंत प्रेम देकर गढ़ा है मां ने इस भंगुर शरीर को। पर वह तो कालक्रम में चारों ओर फैल गया है, मन से आत्मा तक छू गया है। दुःख और जिज्ञासा का अवसान हो गया है। वह बहुत दिनों तक आमाशय रोग भोग कर जब दुर्बल हो गई, तब मुक्ता चौदह साल की थी। राजवैद्य कह गये कि अब बचने की कोई उम्मीद नहीं है। मां की मां (नानी) अस्सी साल की वृद्धा बेटी की यह हालत देख 'जगन्नाथ... जगन्नाथ' कह कर बार - बार मूर्छित हो जाती थी।

किशोरी मुक्ता की आँखों के आगे रंगीन पृथ्वी धूमिल हो गई। विस्तृत रेगिस्तान में वह अकेली यात्री है। ऊपर से प्रखर सूर्य की किरणें और नीचे तपती बालुका! दिगंत तक मरुद्यान! बहुत दूर तक कहीं एक खजूर का पेड़ भी नहीं दिखता। मुक्ता की निश्चल मूर्ति देख कर मां इंदु माहारी चुपचाप अश्रु तर्पण कर रही थी। इसके अलावा इंदु माहारी का रोगाक्रांत शरीर क्या कर सकता था?

अचानक शंख और भेरी का स्वर सुनाई दिया। प्रहरी ने आकर खबर दी, इंदु माहारी से भेंट करने महाराज पधार रहे हैं! मां का मुख चमक गया। किशोरी मुक्ता देख रही थी विस्मय में उसे, शंख - नाद भेरी की आवाज आ रही थी 'जय जगन्नाथ की जय', 'वीर श्री गजपति गौडेश्वर नवकोटि कर्णाट कलवर्गेश्वर श्री श्री मुकुंददेव की जय!'

आगे - आगे पीत वस्त्रों से ढ़ंकी बड़ी-बड़ी पीतल की थालियों में बहुमूल्य वस्त्र और अलंकारों का उपहार लेकर आ रहे थे परिचारक। पीछे - पीछे हाथी के ऊपर से उतरे स्वयं जगपति महाराज। चारों तरफ घेरे हैं पात्र, मंत्री और अमात्यगण!

वृद्धा कमला के कंपित हाथ जुड़ गये नमस्कार करने की मुद्रा में। महाराज ने उन नाजुक हाथों को पकड़ लिया अपने अपने हाथों में। आप मेरी वयोज्येष्ठ मातृतुल्या हैं। मेरे आदर के योग्य। मुझे लज्जित न करें।

वृद्धा का श्लथ चर्म से आवृत मुखमंडल आँसुओं से धुल गया है। कांपते स्वर में महाराज के दोनों हाथों को चूम लिया श्रद्धा से, माथे पर लगा लिया भक्ति से। अश्रु और भक्ति में गद्‌गद स्वर में कहा - "आप तो स्वयं जगन्नाथजी की चल प्रतिमा हैं। इस जाति के मुकुटमणि महाराज हैं। प्रजा होकर राजा को प्रणाम करना कोई नीति विरुद्ध नहीं। आप इस भग्न कुटिया में पधारे हैं। इससे बढ़ कर मेरा सौभाग्य और क्या हो सकता है? आज कोटि जन्म के पाप कट गये!"

आनंद विह्वल होकर वृद्धा कह रही थी - बेटी, इंदु, बेटी इंदु... यह देख तुझे देखने महाराज स्वयं पधारे हैं! कितना सौभाग्य है हमारा!' इंदु माहारी के दुबले हाथ जोड़ते समय निस्तेज हो गये। आँखों से निकल आये आनंद के, कृतज्ञता के आँसू। होंठ थरथरा रहे थे, पर कंठ निर्वाक और हाथ बिलकुल निश्चल!

महाराज ने प्रश्न किया - "इंदु माहारी, आप को कुछ कहना है?"

इंदु माहारी की आँखें महाराज पर निबद्ध थीं। धीरे - धीरे निबद्ध हो गई मुक्ता के मुख पर। सचमुच सुबह की ओस से भीगी पद्मकलिका हो!

महाराज की प्रश्निल आँखें भी स्थिर हो गयी मुक्ता की निष्पाप सुन्दर आँखों पर। वृद्धा कमला माहारी कहने लगी - महामहिम! यह मेरी पोती मुक्ता - इन्दु की पालिता बेटी! स्वप्न से जागने की तरह विवश कंठ से महाराज ने प्रश्न किया - "इस बालिका ने नृत्य - संगीत सीखा है?"

वृद्धा कमला ने प्रफुल्लित स्वर में काह - "हाँ महाराज, नृत्य और संगीत में प्रवीण है। पांच साल पहले जब यह नौ साल की थी, तब से वह जगन्नाथजी की सेवा कर रही है। आप मां - बाप सब कुछ हैं! इंदु का जीवनदीप तो जल्दी ही बुझने वाला है। मैं भी ठूंठ का सूखा पत्ता हूँ। कभी भी झर जाने की संभावना है। बेचारी मुक्ता के जगन्नाथ और आप के सिवा यहाँ कौन है!" कहते - कहते वह सिसक उठी। उन अश्रु और विलाप में एक असहाय किशोरी के भविष्य के बारे में चिंता थी, एक असहाय वृद्धा की।

महाराज ने आँखें मूंद ली। फिर हाथ जोड़ आकाश की ओर हाथ फैला कहने लगे - "हे इच्छामय! सब आप की इच्छा, आपकी लीला है!"

स्तब्ध खड़ी मुक्ता। वह अतीत, वर्तमान और भविष्य पर सोचने की स्थिति में नहीं थी। महाराज गंभीर हो कहने लगे - "कमला माहारी, आज से तुम्हारी पोती को राजनर्तकी के रूप में स्वीकार करता हूँ। इसमें आप को कोई आपत्ति है?"

शायद इस तरह के प्रश्न के लिए तैयार न थी। वृद्धा की आँखें चमक गई - आशा से या आशंका से, कोई समझ नहीं पाया।

रोगग्रस्त इंदु माहारी भी थोड़ी सिहर गई। फिर भी मुक्ता निर्विकार, मौन और निडर थी। प्रागैतिहासिक काल में आविष्कृत स्थापत्य की तरह!

महामंत्री प्रश्न को दुहरा रहे थे - "बोलो कमला माहारी - महाराज के प्रस्ताव पर कोई आपत्ति है?" नम्र, मधुर स्पष्ट स्वर झंकृत हो उठा।

"महाराज, इस अज्ञान की धृष्टता क्षमा करें - "मुझे ऐतराज है इसमें।" सारे परिषद वर्गों के साथ मुकुंददेव महाराज की दृष्टि आकर्षित हो गई उस दिशा में, जिधर से नम्र कोमल आवाज आ रही थी। उसमें परोक्ष विश्वास की वज्रवाणी थी।

स्थिर और अविचलित खड़ी है चौदह साल की किशोरी - नव पल्लवित कोमल लता के शीर्ष की तरह स्पर्द्धित भंगिमा में।

मंत्री का कठोर स्वर सुनाई दिया - "तुम क्या कह रही हो? किससे कह रही हो? किसके विरुद्ध कह रही हो - यह तुम्हें पता है?"

वही स्थिर और अविचलित स्वर - "हाँ, महामंत्री, वीर श्री गजपति गौड़ेश्वर नवकोटि कर्णाट कलवर्गेश्वर श्री श्रीमहाराज मुकुंददेव के आदेश के खिलाफ। उसके लिए दण्ड पाने के लिए प्रस्तुत हूँ! पर उसके पहले मेरी बात एक बार सुनने के लिए मैं महाराज से निवेदन करती हूँ।"

महामंत्री कुछ कहें, इससे पहले महाराज ने उनको रुकने का संकेत दिया। कोमल और स्निग्ध स्वर में कहने लगे - "बोलो, प्रभु जगन्नाथ के नीलचक्र के नीचे सब को कहने का समान अधिकार है।"

दोनों हाथ जोड़ अश्रुपूर्ण नयनों से मुक्ता कहने लगी - "मणिमा, अच्छा - बुरा, पाप - पुण्य का लेखा होने से पहले मैं जानती हूँ कि मैं देवदासी हूँ! जगत के कर्ता जगन्नाथजी की सेवादासी हूँ। मेरी नानी और मां ने मुझे सिखाया है - मैं जगन्नाथजी की विवाहिता पत्नी हूँ। आप सिर्फ उत्कल प्रदेश के राजा हैं, जगन्नाथजी सारे जगत के राजाधिराज सम्राट हैं! आप क्या चाहते हैं कि उनकी पत्नी आपके राज दरबार में नर्तकी बने, नृत्य करे?"

आश्चर्य! अद्‌भुत! इस लड़की की निर्भीक अभिव्यक्ति! महाराज मुकुंद देव का ज्ञान, गरिमा, दंभ और अहंकार जैसे इस ज्योतिर्मयी किशोरी बालिका की सरल भक्ति के सामने मलिन हो गया है। हृदय उद्वेलित हो रहा है वात्सल्य और भक्ति रस में! सच! यह तो सोचा ही न था!

होठों पर स्नेह, स्निग्ध मुस्कान खिल गयी। प्रबल पराक्रमी मुकुंददेव झुक गये क्षमा मांगने के लिए। कोमल स्वर में कहने लगे - 'अपराध स्वीकार कर रहा हूँ! जगत पिता जगन्नाथजी की तुम पत्नी हो, इसलिए मेरी मां हो। हे मेरी बालिका - जननी, पुत्र की गलती माफ कर दो।

महाराज के स्वर से स्नेह - ममता और लघु परिहास भाव छलछला रहा था। मुक्ता ने थोड़ी-सी मुस्कान भर दोनों हाथों में मुँह ढाँप लिया। महाराज ने अपना उत्तरीय निकाल कर मुक्ता के माथे पर बांध कर घोषणा की - 'मेरी बालिका - माता, आज से तुम प्रभु जगन्नाथजी की श्रेष्ठ देवदासी के रूप में अधिष्ठित हुई!'

यह अपूर्व दृश्य देख कर परिषद वर्ग विस्मय में भर गया। वृद्धा कमला माहारी - "हे प्रभु, चका डोला! हे बलियार भुज" कहते हुए बार - बार आँखें पोंछ रही थी। रोग शय्या में पड़ी इंदु माहारी आनंदाश्रु में भीग गयी थी। अस्पष्ट स्वर से........ 'जग'..... 'जग'..... कहते हुए शब्दों को पूर्ण नहीं कर पायी। उस ओर देख कर महाराज चिल्ला उठे - "राजवैद्य... देखिये, इंदु माहारी की पलक बंद क्यों नहीं हो रहीं!"

वृद्ध कमला माहारी कंपित स्वर में आवृत्ति कर रही थी -

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि... नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयंत्यापो, न शोषयति मारुतः।।

राजवैद्य ने घोषणा कर दी - 'इंदु माहारी पंचतत्व प्राप्त कर चुकी हैं!'

'मां'... 'मां'... कह किशोरी मुक्ता लोट गई इंदु माहारी के शव पर। मुक्ता को होश आने तक चुड़ंग साही की सारी देवदासियाँ आ गई थीं। मां के शव को हल्दी लगा कर, नहला कर नये वस्त्र पहना कर गहनों में ढांप दिया। पैरों में आलता, माथे पर सिंदूर और नाक में हरिमंदिर का तिलक लगाया, लाल चूड़ियाँ पहना दीं। यत्न से ओढ़ा दिया, देवदासित्व अपनाने के दिन वाला पाट का दुपट्टा! उसके ऊपर जगन्नाथजी की अर्पित माला पहना दी। मां के केश बिछे थे। मां जैसे नींद में सो गई है। उनके मुख पर झलक रहा था - समाधिस्थ तापसी का गंभीर प्रशांत भाव।

श्रीमंदिर से 'वैष्णवाग्नि' आ गयी। शववाहक आ गये थे। हरिबोल, हुलहुलि और सुहाग वाद्य की गंभीर ध्वनियों के बीच सधवा के रूप में मां की शव-यात्रा चल पड़ी थी, स्वर्गद्वार की ओर!

रोने के लिए मुक्ता की आँखों में आँसू नहीं थे। दुःख और अकेलापन उसे झकझोर रहे थे। शव - यात्रा शुरू होने तक महाराज सारी चीजों की देखरेख स्वयं करते रहे। प्रासाद जाते समय मुक्ता को स्नेह से दुलार कर आश्वासन देते हुए कहा - "धैर्य रखो बेटी, नीलाद्रि बिहारी में विश्वास रखो। वे ही सभी दुःख से परित्राण करने वाले हैं।"

महाराज चले गये। पिता का स्नेह अलग बात है, कभी उनका दर्शन करना भी मुक्ता के जीवन में नहीं आया। देवदासियों के जीवन में नहीं आता, परन्तु महाराज के अमृत - कर स्पर्श में पुलकित हो गये मुक्ता के किशोरी प्राण! अनोखी अनुभूति में वह सिहर उठी। वह सोच रही थी हर पिता का वात्सल्य, ममता का स्पर्श ऐसा ही होता होगा!

इस उम्र में आज भी उस वात्सल्य - ममता से वह भीग जाती है। आज महाराज नहीं हैं, पर उनकी वात्सल्य - ममता सबसे श्रेष्ठ संपदा है। जीवन की अनेक घटनाएँ स्मृति बन जाती हैं, इतिहास हो जाती हैं।

प्रौढ़ा देवदासी का कैशोर्य आज इतिहास है, कैशोर्य की स्मृतियाँ अब प्रस्तर बन गई। आज इतिहास है, एक पुरानी मूर्ति सरीखी। मुर्गे की बांग से प्रातः उसकी नींद टूट गयी।

सारी रात सिर्फ सोचती रही। घर से निकल बाहर आकर खड़ी हुई मुक्ता। आकाश ताकती रही। शांत तपसी की तरह ऊषा का आकाश निर्विकार और निरासक्त लग रहा था। उसके क्लांत अवयवों को छूकर स्पर्धित भंगिमा में उड़ रही है पतितपावन की पताका मंदिर के नीलचक्र के ऊपर।

सचमुच वह पृथ्वी निवासियों को आश्वासन देती है - "डर की कोई बात नहीं, भय नहीं"। उस पताका की ओर देख कर मुक्ता ने प्रणाम करते हुए कहा - "प्रभु, सारे काम आपकी इच्छा से नियंत्रित हों।"

समुद्र का धू - धू गर्जन ऋषियों के वेदोच्चार की तरह लगता है। इसके साथ - साथ बाल सूर्य की किरणें लहरों के ऊपर माया जाल बुन रही हैं। धीरे - धीरे यही आलोक समुद्र से आकाश, आकाश से पृथ्वी तक व्याप जायेगा।

वही 'जवाकुसुम संकाशं काश्यपेयं महाद्युति' देता जायेगा पृथ्वी पर कर्मयोग का संदेश। श्रीमंदिर से घंट - घंटा, कहाली और तूरी की आवाज! प्रभु की मंगल आरती का समय है।

अभी तो 'भीरतच्छु महापात्र' सिंहद्वार के पास शंख में लाये पानी से चरण धो रहे होंगे, सिंहद्वार खोलने का आदेश दे रहे होंगे। भीतरच्छु महापात्र, उनके साथ प्रतिहारी मुदुली, अखण्ड मेकाप और पालिया मेकाप आदि किवाड़ों की जांच कर रहे होंगे। मुदुली 'सिंहदुआर' (मुख्यद्वार), 'छामुदुआर' और 'कलाहाट दुआर' आदि खोल रहे होंगे। सुनाई दे रहा है प्रतिहारी का 'मणिमा - मणिमा' पुकारना, भितरच्छु महापात्र

का मंद स्वर में मंत्रध्वनि उच्चार -

"उत्तिष्ठो तिष्ठ गोविन्द, उतिष्ट गरुड़ ध्वजः

उत्तिष्ठ कमलाकांत, त्रैलोक्यं मंगलं कुरु!"

मुक्ता के सामने पातक नाश करने वाला नयनाभिराम दृश्य, कपूर, दीप और मंगल आरती। अखंड मेकाप और पालिया मेकाप दीप ले जा रहे हैं - महाबाहु के श्रीमुख के आगे। सेवा करने वाले महाप्रभु, महाबाहु, मणिमा आदि कह कर विमोहित हो रहे हैं। उस विमोहित नाद से घंट, शंख, महुरी, वीणाभाट, ताल, शिंगा, मर्दल आदि सोलह ध्वनियाँ एकाकार होकर निकल रही हैं। "रामकृष्ण दामोदर प्रभु माधव मधुसूदन, जय गोविन्दम् जय गोपाल" सामूहिक स्वरों से निकल रही है आदि वंदना।

मुक्ता छत से उतर कर नहाने चली गई। सुबह होने में देर है, फिर भी पुरी शहर का रास्ता मुखर हो उठा है। कोई समुद्र किनारे सूर्योदय देखने के लिए, तो कोई मंदिर में मंगल आरती देखने के लिए, कोई भगवान के चरणों में फूल अर्पित करने के लिए निकल रहा है तो कोई तुलसी सहित। देवदत्ता ने फूल और तुलसी तोड़ी ली है। रोज सुबह उसका यही काम है। दयणा ने उठ कर देखा तो दीदी कब से नहाने चली गई है। झटपट अपन काम निपटा रही है। घर की झाड़ू - बुहारी करने लगी। नहाने के बाद फूलों की माला बनानी होगी। नहा कर दीदी ठाकुरघर की ओर जायेगी।

जल्दी से दयणा नहाने चली गई। गीले वस्त्र पहन कर चंदन घिसेगी, माला बना कर रखेगी और ठाकुरजी की सारी चीज मांज - धो कर रखेगी। तब बाल भोग होगा।

बाहर ही बैठकखाना है। बैठकखाने के पास ही बरामदा है। बरामदे के नीचे उतरने के रास्ते में तुलसी चौरा। तुलसी चौरे के सामने ठाकुरघर।

बैठकघर से स्पष्ट दिखता है संगमरमर से बना सिंहासन। सिंहासन के ऊपर राधाकृष्ण की युगल मूर्ति। उसके पास जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा जो सृष्टि, जीवन और लय के देवता हैं। सिंहासन के नीचे लक्ष्मीनारायण की मूर्ति और शेषनाग पर सोये हुए अनंत शयन की अवस्था में एक चित्र है। उसके पास ही कुछ शालिग्राम हैं। शालिग्राम व जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा तीनों विग्रहों को मुक्ता देखती आई है अपनी नानी के जमाने से। राधाकृष्ण की युगल मूर्ति मां अपने साथ वृन्दावन से लायी थी। वहाँ के एक संन्यासी ने मां को दी थी। मां कह रही थी कि रात हो जाने पर युगल मूर्ति रुपांतरित हो जाती है मानव रूप में और उनसे बातचीत करती है।

आँखों में चंचलता, होठों पर मृदुहास। बायाँ घुटना नीचे और दाहिना ऊपर। दाहिने हाथ में लड्डू लेकर सिंहासन से ताक रहे हैं, बाल गोपाल मुक्ता की ओर! श्याम मेघों की तरह काले पत्थर के विग्रह!

मुक्ता ने चंदन घिस कर गोपाल जी को पीतल की थाली में रख दिया। शीतल जल से नहला कर चंदन चर्चित कर दिया। फूल और तुलसी लगाते समय तुलसी के कुछ फूल गिर गये। मुक्ता झूठा गुस्सा दिखा कर कहने लगी - "देखिए गोपाल, मुझे जल्दी काम निपटाने नहीं देंगे तो सजा दूँगी।"

बाल गोपाल के अधरों पर वही मुस्कान। तुलसी की पंखुड़ी रखी तो केतकी गिर पड़ी! फिर मुक्ता हँस दी। दुष्ट कहीं के। तुझसे हम नहीं जीत सकते। जिससे यशोदा माता हार गयी, वहाँ यह माहारी क्या चीज है? मेरी असामर्थ्य पर हँस रहे हो? हँसो! यह कह कर गोपालजी के गालों को छू दिया।

एक अपार्थिव सिहरन शरीर में भर गई, आत्मा को छू गई। चंदन यात्रा के समय दो वर्ष पहले इस मूर्ति को खरीदने की बात याद आ रही है।

जगन्नाथजी के नौका विहार के समय नरेंद्र पुष्करिणी में नृत्य समाप्त कर लौट रही थी। शिविका में बैठने जा रही थी, उसने देखा एक बूढ़ी झुकी - झुकी उसकी ओर ताक रही है। सचमुच उम्र का भार न सह कर वह झुक गई है। अपनी टोकरी से बूढ़ी ने निकाली राधाकृष्ण की युगल मूर्ति, राम अभिषेक और जगन्नाथजी, बलभद्र और सुभद्रा की मूर्ति। मूर्तियों को दोनों हाथों में उठा का उसे दिखा कर अनुनय से कहने लगी - 'लो बेटी, सौभाग्यवती, ठाकुरजी की मूर्ति को ना मत करना। सुबह से यहाँ हूँ मूर्तियों को लेकर, मगर एक भी नहीं बिकी।'

वृद्धा का मुखमंडल करुणा में भर गया। मुक्ता थोड़ी देर खड़ी रह गई। कौन - सी मूर्ति ले, चुन रही थी। उसने देखा कि पुआल से ढंकी बाल-गोपाल की मूर्ति सबसे अलग होने की घोषणा कर रही है। मानो नन्हा गोपाल घुटना नीचा कर ऊपर हाथ उठा रहा है - "मां मुझे गोद में ले लो, मां गोद में ले लो!"

मुक्ता उस आह्वान की पुलक में भर गई। वृद्धा को उत्सुकता में कह रही थी - "मुझे वह बाल गोपाल की मूर्ति दो, मौसी। दाम कितना है?" 'अधेली दो बेटी' - वृद्धा बोली। ठाकुर जी की मूर्ति में मोल - भाव कैसा? मूर्ति को आदर से ले लिया मुक्ता ने। कमर में झूलते पिपिली बटुवे से एक मुद्रा निकाल कर वृद्धा के हाथों में दे दी। टिमटिमाती ढिबरी के पास लेकर देखने लगी कि यह तो अठन्नी नहीं बल्कि

पंचम जार्ज की छाप वाला चांदी का रुपया है!

भोइयों ने शिविका उठा ली थी। मीना नायक रास्ता दिखा रहा था। वृद्धा की आँखों से आँख मिला कर हँसते हुए मुक्ता कहने लगी - "ठाकुर जी की मूर्ति का मोल - भाव कैसा? रुपया रख लो, मौसी!"

यह वही मूर्ति है। उस मूर्ति को छूने मात्र से मुक्ता के नारी हृदय में मातृत्व का स्पर्श आ जाता है। प्रेम पगली राधा की सत्ता रूपांतरित हो जाती है संतान वत्सला यशोदा माता में।

मुक्ता अनुभव कर रही थी कि मातृत्व अगर नारी जीवन में पूर्णता लाता है, तो भादों में नदी की हिलोरों की तरह दोनों किनारे छूकर नारी जीवन उफन उठता है। स्वयं श्रीकृष्ण उसकी संतान हैं। उसकी मानस संतान! ज्ञान और मन के बंधन से शरीर का बंधन कितना कम है!

इसलिए युग-युग में देह से मन और ज्ञान को ज्यादा महत्व दिया जाता है इस पृथ्वी पर। युगों से अमरता पाता है!

विशालाक्ष के गोल नेत्रों पर दृष्टि निबद्ध करते समय मुक्ता एक नैसर्गिक लोक में पहुँच जाती है। वह सोचती है कि जिन्दगी में दुःख और कामना कुछ नहीं है। हर प्राप्ति अप्राप्ति को, पाप और पुण्य को, मूल्यबोध को वे विस्तारित नेत्र ग्रहण कर लेते हैं। जैसे भौंरा मधु चूसता है, सूर्य पृथ्वी के तम को चूस लेता है।

पूजा समाप्त कर मुक्ता भागवत लेकर बरामदे में बैठ गई। ताड़पत्र के पन्ने हैं, परंतु कितनी गहन अनुभूति है इसकी हर पंक्ति और पृष्ठ पर। जब वह कोई किताब लेकर बैठती है, तो खो जाती है उसके चरित्रों में और बातचीत भी करती है उनके साथ।

कोलाहल के बीच स्वयं को खो देती है। पोथी हो या पुस्तक, धर्मग्रंथ अध्ययन करने का अभ्यास उसका बचपन से है। जिन्दगी के सारे सवालों के जवाब मिल जाते हैं उन ग्रन्थों से। ग्रंथ के अलावा इस दुनिया में दुख को जानने वाला कोई और बंधु भी हो सकता है? पोथी पढ़ते उसे लगा कि विश्व के प्रवाहमान स्रोत में वह एक पारंपरिक रूप में छोटा - सा पत्थर है। देवदासी जीवन बिताने के अलावा और क्या किया? परन्तु जीवन का संबंध उससे अधिक है, उसे तो पता नहीं।

पन्ने से आँखें उठा कर देखा मूर्ति की ओर। अधरों पर वही मीठी मुस्कान! हँसने का मतलब उसे लगा - सारे कर्मों को मुझे सौंपने के बाद रहा ही क्या है तेरे

पास, जिसमें इतनी झिझक और अफवाहें पैदा होती हैं? मुक्ता ने उस पृष्ठ को फिर से पलटाया। उसकी दृष्टि स्थिर रह गई दोनों पंक्तियों पर -

सकल तीर्थ तेरे चरण (सकल तीर्थ तो चरणे)

बद्रिका जाऊँ किस कारण (बद्रिका जिबु कि कारणे)

मुक्ता के होठों पर स्मित मुस्कान पैदा हो गई। उठते-उठते स्वगतोक्ति करने लगी - ''मेरे इहलोक - परलोक, सुख - दुःख, हँसना और रोना सब कुछ तुझे समर्पित है। तेरे नीलाचल धाम के सारे पुष्प मेरे लिए पारिजात हैं और सारा जल गंगोत्री। तेरे बड़दांड की धूल मेरे लिए कोटि तीर्थ का तिलक है। तेरी यह लीलाभूमि छोड़ कर स्वर्ग या बैकुण्ठ कहीं न जाना। तेरी पतितपावन पताका देखते हुए मेरा जीवन दीप बुझ जाने दो। यही मेरी अंतिम और सम्पूर्ण अभिलाषा है।''

दासी देवदत्ता ने आकर प्रश्न किया - ''पूजा खत्म करके भी यहीं बैठी हो दीदी! कुछ खाओगी नहीं? नृत्यशाला खोल दी है। तुम अभ्यास करती रहो। मैं जाकर गुरुदेव को बुला लाती हूँ।''

मुक्ता ने रोका - ''रहने दे दत्ता, हम सब तो आज वृंदा को देखने जायेंगी। तुम जल्दी काम पूरा कर लो। मैं इन फूल और तुलसी में जल दे देती हूँ। इधर देखो, कृष्ण तमाल लता कैसी सूख गई है!'' कीड़ों ने खाया है क्या? पेड़ों की ओर देखते ही दत्ता कहने लगी - ''दीदी, देखती हो न - तुलसी के पत्ते कैसे कुम्हला गये हैं!''

झुंझलाती हुई मुक्ता तुलसी वन गई। सच, कीड़े लग गये हैं! दत्ता और दयणा तुलसी तोड़ रही है, फिर भी देख नहीं पाती कि क्या हुआ है। कीड़े लगने से सब को नारायण प्राप्ति हो जायेगी।

दत्ता ने कहा - ''दीदी, तुलसी में जो कीड़े हैं, सांस के मरीजों के लिए महोषधि हैं। जब दो पत्ते आपस में जुड़ जाते हैं और उनके भीतर जो कीड़े रहते हैं, उनको गाय के घी में औटा कर खाने से यह बीमारी चली जाती है, ठीक हो जाती है।''

- ''यह दवाई क्या श्रीमती देवदत्ता वैद्यरानी ने आविष्कृत की है?'' मुस्कराते हुए दत्ता कहने लगी - ''दीदी, मैं क्यों इसे आविष्कृत करुंगी? वैद्यराज से सुना था। अगर उसमें कीड़े होंगे तो मैं जरूर इसे वैद्यराज को ले जाकर दूँगी।'' कहते हुए दत्ता ने पत्ते के जोड़ों को खोल दिया। उसमें कीड़े न थे।

दासी दयणा आकर कहने लगी - ''दीदी उधर भोजन लगा दिया है, लौटते - लौटते देर हो जायेगी तो!''

मुक्ता ने कहा - "तुम दोनो खा लो, मैं सिर्फ पणा ली लूंगी। लौटने के बाद पूजा करके खाऊँगी।"

दत्ता बरामदे से आ रही है, उसके पीछे - पीछे एक बालक है। मुक्ता उस लड़के को स्नेह से देख कहने लगी - "तुम कौन हो? किसलिए आये हो?"

बालक ने उत्तर दिया - "मैं गोपाल हूँ। देवलकरण श्रीवत्स महान्ति का बेटा हूँ। आपको चिट्ठी देने लिए पिताजी ने मुझे भेजा है।" उसने चिट्ठी निकाल कर दे दी।

मुक्ता चिट्ठी पढ़ कर कहने लगी - "पिताजी से कह देना कि मैं आ रही हूँ।" बालक को पीछे से बुला कर कहने लगी - "बेटा, जरा रुको! घर से कोई खाली हाथ नहीं लौटता।"

ठाकुरजी के लिए रखे दो अमरुद और कुछ बेर लाकर उसे दे दिये। कुंठित और लजाते हुए गोपाल ने कहा - "नहीं, मैं यह सब कुछ नहीं लूँगा। मां नाराज हो जायेगी।"

मुक्ता का सुन्दर मुखड़ा मुरझा गया। वह स्वयं को संभाल कर कहने लगी - "नहीं बेटा, इन फल-फूल में छुआछूत नहीं है।"

गोपाल के चले जाने के बाद चिट्ठी खोल कर मुक्ता ने फिर पढ़ी - "श्री जगन्नाथ के चरणों में शरण। देवदासी मुक्ता माहारी को देवल करण श्री श्रीवत्स महांति का लिखने का कारण यह है कि अद्य शुक्ल चतुर्थी सन् १६३६ दिवा दस बजे मेरी बेटी के जन्मोत्सव समारोह पर कुंढेईबेंट साही के मेरे वासभवन में एक कुमारी पूजा का आयोजन करने का विचार है। इसलिए निवेदन करता हूँ कि आप अपनी देवदासी भगिनियों के साथ मेरे वासभवन में उपस्थित रह कर उत्सव को सफल करें।"

चिट्ठी बंद कर मुक्ता फिर कुछ सोचने लगी। एक तरफ देवलकरण का श्रद्धा निमंत्रण, दूसरी तरफ उनकी पत्नी की देवदासियों के प्रति घृणा जो कि गोपाल के संकेत से पता चल जाती है। वह किसको अपनाये? जगत के नाथ जगन्नाथजी ने जिसको पत्नी के रूप में अपना लिया है, समाज उसको नहीं अपना सकता, क्यों?

उत्कल की यह पारंपरिक देवदासी प्रथा पता नहीं कब से चली आ रही है। उसके बारे में जो कुछ भी पढ़ा है, क्या उसके किसी तथ्य पर विश्वास कर सकती है? किसको अपनाये और किसको त्यागे? वह दुविधा में पड़ जाती है। आत्मा, बुद्धि

और मन की स्वीकृति से वह इतना जान सकी कि जब से उत्कल के कुलदेवता, ओड़िया जाति के अंतरंग और आत्मीय प्रभु जगन्नाथजी की प्रतिष्ठा हुई, देवदासी उस दिन से उनकी सेवा करती आ रही है, पत्नी के रूप में प्रेम अर्पित करती रही है।

देवदासी का जीवन महिमामय था, वह गौरव और सम्मान की अधिकारिणी थी। प्रभु श्रीजगन्नाथजी के दर्शन के बाद देवदासी के दर्शन के लिए लोग आते थे, राजा से प्रजा तक सब। आशीर्वाद पाने के लिए। प्रभु जगन्नाथजी की पत्नीत्व अपना कर सारा जीवन काम - क्रोध, लोभ - मोह से दूर रह कर संन्यासिनी की तरह जीवन गुजारना कोई आसान बात नहीं।

"दुर्गम पथ ए भजन
भये भाजिले योगिजन।"

(अर्थात् इस पथ को दुर्गम समझ कर योगिजनों ने छोड़ दिया। संसार के भीतर रह कर भी संसार की माया से दूर, जल के भीतर पद्म जैसी!)

श्रीजगन्नाथजी की करुणा बिना यह कभी संभव हो सकता है? वह दुर्लभ प्राप्ति क्या सबके मन में आती है? देवदासी का जीवन कितना भी स्वर्गिक, पवित्र और निर्मल होने पर भी समाज के लोग उनको अपना नहीं पाते। राजनर्तकी, देवदासी और बाई जी सब को एक ही तराजू में तौलते हैं।

देवल करण की पत्नी अगर माहारी की दी हुई चीज अपवित्र मानती है तो उसमें दोष ही कहाँ?

ईर्ष्या का दूसरा नाम नारी है। दूसरी नारी के रूप, गुण और कला की प्रशंसा पुरुषों के मन में प्रेम या भक्ति पैदा कर सकती है, परन्तु एक नारी के सामने दूसरी नारी की प्रशंसा सिर्फ ईर्ष्या ही पैदा करती है।

महांति की घरवाली इससे अलग नहीं है। मुक्ता खुद को उसके सामने स्वयं को छोटा नहीं बना देना चाहती। वह तो मानव फूल नहीं, स्वयं भगवान को अर्पित फूल है, जिसको संजोये रखा जा सकता है।

देवदत्ता से कहा - "दत्ता, वृंदा से मिलने बाद में जाएँगे। अभी तुम जाकर चुड़ंग साही की सारी माहारियों से कहो कि आज दस बजे देवलकरण के यहाँ कुमारी पूजा में शामिल होना है। हाँ, वृंदा अगर स्वस्थ है तो उसके भी निमंत्रण कर आना। यह चिट्ठी भी अपने साथ लेती जाना।"

दत्ता के चले जाने के बाद मुक्ता फिर अपनी भावना में खो गई। नीलचक्र के ऊपर जो पताका स्पर्धित भंगिमा में लहराती है, मानो वह संकेत दे रही है, "सांसारिक लोगों की छोटी-छोटी बातों बात से तुम अपनी गौरवपूर्ण परम्परा और सम्मान क्यों भूल जाती हो, माहारी?"

हाँ, परम्परा और सम्मान! देवदासियों की गौरवोज्ज्वल परम्परा को भुला नहीं पाती मुक्ता। कर्पूर चला गया है, परंतु उसकी खुशबू सुरक्षित हैं अभी। जगन्नाथ जी के आगे अर्पित वह कर्पूर, जिससे मोहग्रस्त हो गई थी राजकन्या चंद्रिका।

वह तो एकादश शताब्दी का इतिहास है। वह कहानी आज लोककथा बन गई है। उसके साक्षी के रूप में खड़ा है अनंत वासुदेव मंदिर। महाकाल की निष्ठुर झंझा का उपहास कर चंद्रिका द्वारा निर्मित यह मंदिर आज भी अपराजेय स्थिति में गर्व के साथ उपस्थित है।

जगपति महाराजा अनंग भीमदेव की कन्या है चंद्रिका। प्रभु जगन्नाथजी के चरणों में अचल भक्ति न्यौछावर है। नृत्य - संगीत विशारद गजपति महाराज की कन्या ने विवाह के कई प्रस्ताव ठुकरा दिये थे। मुक्त कंठ से कहा था - "मैं देवदासी के रूप में परमपिता के चरणों में उत्सर्ग रहूँगी। विवाह नहीं करुँगी। किसी राजकन्या के लिए कभी यह संभव है? नियति के इंगित से चंद्रिका परमार्दि देव की पत्नी बन गयी, परंतु ईश्वरानुरागी अंतरात्मा देवदासी बन कर रह गयी। अनंत वासुदेव मंदिर के नाट्यमंडप में अनेक नर्तकी मूर्तियाँ उनकी इच्छा का प्रकट रूप हैं।"

उत्कल के सांस्कृतिक उत्थान - पतन से जुड़ गयी जगन्नाथ संस्कृति। जगन्नाथ संस्कृति का एक अभिन्न अंग है यह देवदासी संस्कृति। इसको क्या इतनी जल्दी भूल सकती है मुक्ता? भूल सकती है कोई भी माहारी? पाण्डुलिपियों को इधर - उधर करते हुए इतिहास की बहुत लम्बी कहानी पढ़ी है मुक्ता ने। यह भी पढ़ा है कि चोड़गंग देव ने द्वादश शताब्दी में जब कलिंग में गंगवंश स्थापित किया, तब मंदिर में प्रातः धूप (पूजा) से लेकर रात 'बड़सिंहार' तक देवदासी की सेवाएं अनवरत जारी रहती थीं। इसलिए दाक्षिणात्य से अनेक देवदासियों को लाकर पुरी में एक बस्ती की स्थापना की गई थी। उनको मुफ्त जमीन दी गयी थी। वह बस्ती आज भी चुडंग साही है। चोड़गंग देव के घुंघराले बाल, लंबी मूंछ और बड़ी - बड़ी आँखों के नीचे वह प्रतिमूर्ति शोभा पा रही है। मराठा, यवन, मुगल और अंग्रेजी अत्याचारों के बीच जिस तरह जगन्नाथजी की उपस्थिति अम्लान है, उसी तरह चोड़गंग देव मूर्ति आज भी

अक्षुण्ण है। इतिहास के पन्नों के नीचे सब कुछ लुप्त हो गया, परंतु कभी - कभी वह पन्ने भी बोलते हैं।

उन पन्नों की अनकही बातें सुनी हैं मुक्ता ने। सुना है बहुत दिनों पहले भारत भूमि पर बने प्राचीन मंदिरों में अंकित नर्तकी की छवि संभवतः देवदासी प्रथा का परिचय है। यह लगभग तीसरी सदी की बात है। उस युग से चली आ रही है एक संस्कृति, देवदासी से माहारी नृत्य, माहारी से 'गोटिपुअ' नृत्य और 'गोटिपुअ' से ओड़िशी तक।

ईश्वर के प्रति वही समर्पित भाव, वही अभिनय मुद्रा। व्यक्ति और महाकाल का परिवर्तित आधार और अपरिवर्तित आराधना।

सब के मूल में सर्वव्यापी, सनातन, जगन्नाथजी हैं। उन दोनों नेत्रों में जिज्ञासुओं की जिज्ञासा, दुखियों का दुःख, आर्ति की याचना, पापी का पाप और तपी का तप सब कुछ उसमें समा जाता है।

कुमारी पूजा का समय हो गया। दत्ता चुड़ंग साही की माहारियों को संवाद देकर लौट आयी है। अपने स्वप्निल लोक से यथार्थ में लौट आई मुक्ता। उसे जाना होगा, देवल करण प्रतीक्षा करते होंगे। मुक्ता और चुड़ंग बस्ती की माहार आगे - पीछे देवल करण श्रीवत्स महांति के घर पहुँच गईं।

महांति के निर्देश के अनुसार उनकी पत्नी ने कंटिलो (एक प्रसिद्ध ग्राम का नाम) निर्मित कांसे की झरी में जल लाकर सब माहारियों के पैर धोये। सिंदूर और आलता भी लगा दिया। एक - एक कर सबको निमंत्रण कर आसन ग्रहण करने का अनुरोध किया।

कुमारी पूजा तंत्र का एक प्रधान अंग थी। साधक आधार के रूप में एक अक्षत कुमारी को चुनते थे।

"आकाशात् पतित यथा तथा गच्छति सागरे।"

उसी तरह सारी तपस्या, साधना और जप - तप का अंतिम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है। ईश्वर प्राप्ति कोई आसान बात नहीं, एकाग्रता के अंतिम सोपान तक पहुँचना होगा। देह और इंद्रियों के ऊपर कुण्डलिनी को जाग्रत करना होता है।

योगी त्याग और तपस्या के माध्यम से इंद्रियों पर विजय प्राप्त करके पहुँच जाता है महासमाधि की स्थिति में। तांत्रिक इंद्रिय भोग के माध्यम से पहुँचते हैं उस सोपान तक। इसलिए साधक शिव और आधार रूप में नारी शक्ति के संयोग की जरूरत है।

साधक और आधार युग्म अवस्था में इंद्रियातीत से देहातीत होकर समय के असीम प्रवाह में खो जाते हैं। बिन्दु के पतन से प्रशांति भाव खो जाता है और शक्ति भी खो देता है। योगासन में बैठना संभव नहीं होता, इसलिए शिव और शक्ति बिन्दु को स्थिर कर देते है, योगाभ्यास के माध्यम से।

समय के प्रवाह में तंत्रशास्त्र का यह महायोग तांत्रिकों की यौन पिपासा पूर्ण करने का माध्यम बन गया और कुमारी पूजा एक जघन्य कर्म में बदल गयी। समय की धारा में गृहस्थों के लिए देवपूजा की तरह छोटी - मोटी अभीष्ट सिद्धि के लिए 'कुमारी पूजा' में परिवर्तित हो गयी।

तंत्रशास्त्र में वर्णित कुमारी पूजा का रूपांतरित विश्वास कैसे मिल जाता है पारिवारिक विश्वास में, मुक्ता चुपचाप बैठी देख रही है। महांति की घरवाली में जो घृणा और ईर्ष्या भाव था, अतिथि सत्कार में कहीं भी इसकी झलक नहीं मिलती। अतिथि सत्कार की भारतीय भावना मौजूद है। देव, विप्र और अतिथि पूजा की उत्कलीय परंपरा एकाकार हो जाती है। धमनियों में रक्त प्रवाह की तरह, सागर में नदी के मिलन की तरह।

श्रीवत्स महांति विनय के साथ बुला रहे हैं - बहनों, इधर आइये! भोजन तैयार है। सुन्दर - सुन्दर चित्रों से अंकित आसन बिछाये गये। सामने थाली में - केले, नारियल, अमरूद, केंदु, खिरिकोली, भंइच और टभा (कुछ फलों के नाम) थाली के दूसरी तरफ आलता, सिंदूर, शंख और साड़ी। लग रहा था जैसे सवित्री पूजा हो रही है। महांति की कन्या को आशीर्वाद देकर लौटते समय मुक्ता ने रमा माहारी से पूछा - "क्या वृंदा की तबियत इतनी खराब है जो बिलकुल नहीं आ सकी?" रमा माहारी वृंदा की पड़ोसी है। मुक्ता के प्रश्न की उपेक्षा कर कहा - "कौन जाने, सिर्फ वही जाने। तबियत खराब क्यों होगी? बहाना है। राजा या राजगुरु तक बात गयी तो.... अब छोड़ो। मैं अगर बोली तो लोग कहेंगे रमा बदनाम कर रही है। कोयल के पास कौआ का बच्चा सिर्फ का... का... करेगा, कूक नहीं सकता।"

वह रमा की वक्रोक्ति कुछ समझ नहीं पायी। घबरा कर उसने पूछा - "बताओ न जरा, क्या हुआ?"

रमा की फिर वही कुटिल हँसी! 'होगा क्या, वृंदा मां बनने जा रही है!'

सर्पाघात की तरह चौंक गई मुक्ता। वृंदा सिर्फ मंदिर की नृत्यांगनाओं में से एक नहीं, जगन्नाथजी की छत्तीस नियोगियों में ही एक नहीं है, बल्कि श्रीजगन्नाथ की

परम भक्त है। वह कोई शास्त्र या पुराण नहीं पढ़ती, बड़देउल के अलावा और किसी मंदिर नहीं जाती। भाव विभोर होकर जब सुन्दर गले से वह जगन्नाथजी के भजन गाती है, आनंदाश्रु झर जाते हैं, उसकी आँखों से। वही भाव सारे भक्तों को विगलित कर देता है। उसके पैरों के पास ढेर हो जाते हैं रुपये, सोने और पाटवस्त्र। दूरागत यात्रियों का यह है प्रेमाभक्ति निदर्शन, परंतु वृंदा की उस पर कोई असक्ति नहीं। जगन्नाथजी के विशाल नेत्रों में वह अपने को खो देती है। जगन्नाथजी का नाम जप कर सारा दिन बिता देती है।

वही वृंदा पुण्य के बैकुण्ड से उतर कर आ गई है पाप के पाताल में!

यह कैसे संभव हो सकता है? रमा के साथ इधर - उधर की बातें करने में कोई फायदा नहीं। मानव के लिए सारे असंभव भी संभव हो सकते हैं। संभव - असंभव के बीच फंस कर मुक्ता घर नहीं जा सकी। वह सीधे वृंदा के घर पहुँची।

उसके चेहरे से पता ही नहीं चलता कि वह श्रीजगन्नाथजी की परम साधिका किशोरी देवदासी वृंदा है।

उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में सागर की तरंगे नहीं हैं। कैसी एक झुलसी दोपहर सी उदासी छा गयी है। फिर भी वृंदा के होठों पर मुस्कान थी। चाल में हिरनी सी थिरकन है।

मुक्ता को देख कर वृंदा खुश हो गई। मुक्ता बहन, तुम क्या देवलकरण के घर कुमारी पूजा में नहीं गई?

मुक्ता मुस्करा उठी। वृंदा के माथे पर स्नेह का हाथ फिरा कर कहने लगी - "अरे, मैं तो उधर से ही आ रही हूँ। जब सुना कि तुम्हारी तबियत खराब है, तुझे देखने चली आई। क्या हुआ है तुझे?"

मुक्ता के प्रश्न से वृंदा लाज से जैसे मुरझा गई। आंचल को दांतों में दबाते हुए अंगूठे से जमीन कुरेदने लगी। रसोई से निकल कर वृंदा की मां किशोरी माहारी मुक्ता को हृदय से लगा रोने लगी, रोते हुए कहा - "वृंदा पर मुझे बहुत आशा थी।" मेरे बाद जगन्नाथजी की सेवादासी बन कर कौलिक प्रथा को चलायेगी। निष्ठा के साथ सेवादासी बन कर श्रीजी की सेवा कर देवदासी की पावन जिन्दगी बितायेगी, परंतु यह सत्यानासी न जाने किसके फेर में पड़ कर श्रीजगन्नाथजी को छोड़ कर संसार की ओर मन कर बैटी। पूछने से किसी का नाम भी नहीं बताती। तीन महीने हो गये। संतान के सारे लक्षण दिख रहे हैं।

तुम ही इससे पूछो, इसे तो मंदिर से निकाल दिया जायेगा। मैं भी इसके कारण सिर उठा कर चल नहीं पाऊंगी। बात तो कानों कान राजगुरु और महाराज तक पहुँच जाएगी। मैं क्या करुं, कुछ समझ नहीं पाती। यह मर जाती तो सारी निन्दा से मुक्त हो जाती। किशोरी माहारी रोती रही। वृंदा पर कोई प्रतिक्रिया नहीं। निर्लिप्त दृष्टि समा गई थी अनंत आकाश की ओर।

सूरज ढलने को उतावले थे। सूरज की उज्जवल रश्मि वृंदा के होटों को आलोकित कर रही थी। मुक्ता उस श्यामलांगी सौंदर्यमयी कन्या को देख सोच रही थी - सचमुच यह लड़की क्यों योग - पथ से भोग की ओर मुड़ गई? उसकी निष्पाप आँखें जैसे कह रही हैं - "वृंदा कुछ भी गलती नहीं कर सकती। वह कभी गलती नहीं कर सकती। मानव के लिए उस अंतिम योगावस्था में अगर पाप होगा, तो वृंदा बराबर यह गलती करेगी।"

मुक्ता वृंदा से पूछने लगी - "सच बोलो वृंदा, मौसी जो कह रही हैं, सब सच है क्या?"

वृंदा चुप रह गई। मौनं स्वीकृति लक्षणम! कभी - कभी नीरवता भी कोलाहल से ज्यादा मुखर होती है। "मैं तेरी बड़ी बहन हूँ। तुझे किसने पथ से विच्युत किया है? बताओ। उसका नाम जानने के बाद हम उसके साथ विवाह की कोशिश करेंगे।"

किशोरी माहारी चौंक गई - तुम तो जानती हो हम माहारियों का विवाह श्रीजगन्नाथजी से होता है। लोगों के साथ अगर पुनः विवाह होगा तो मृत्यु अवश्यंभावी होगी। वृंदा को नरक भोगना क्यों न पड़े, परंतु किसी की जान लेना ठीक नहीं।

मुक्ता ने समझाने की भंगिमा से कहा - "तुम और कितने दिनों तक उन्हीं पुराने खयालों में रहोगी? प्रभु जगन्नाथजी को छोड़ कर दूसरे की पत्नी बनना माहारी संप्रदाय के लिए निषेध है। इसका मैं सम्मान करती हूँ और सारा जीवन मैं मानती आई हूँ। परंतु जो जगन्नाथजी का प्रेम ठुकरा कर मानव प्रेम में लग जाती हैं, उनको दूसरी जगह विवाह कर लेना चाहिये। आजकल बहुत - सी देवदासियों ने अपनी इच्छा से विवाह किया है। सब सांसारिक भोग में खो गयीं हैं। युग - युग से चलता आया है कि पुराने वस्त्र की तरह पुराने नियम भी त्याज्य हैं। वृंदा ने अगर जानबूझ कर किसी को अपना सब कुछ अर्पण कर दिया है तो विवाह कर लेना उसके लिए मंगलकारी है। वृंदा बोलो - 'तुम अगर उसका नाम जानती हो तो बता दो।'

उदास हो वृंदा कहने लगी - मैं खुद नहीं जानती हूँ दीदी, जगन्नाथजी के अलावा मैं दूसरे पुरुष को जानती ही नहीं। अब सचमुच परिस्थिति कुछ असहनीय - सी लग रही थी। मिथ्या, प्रवंचना और भोग को जो अपने जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य मानता है, उसके लिए सारे उपदेश, अनुरोध और निर्देश पानी के बुलबुले जैसे हैं। वृंदा अपने प्रेमी का नाम सहज ही नहीं बतायेगी। मरने दो उसे।

''जो अपने हाथ से जिह्वा छेदता है, उसके लिए

प्रतिवाद करने वाला कोई नहीं होता!''

जगन्नाथ दास ने भागवत में झूठ नहीं लिखा। किशोरी माहारी को भरोसा देने की भंगिमा में मुक्ता कहने लगी - 'चकाडोला के ऊपर भरोसा रखो, मौसी। वे परमपिता ही मानव की असहाय बेला में सहायता करने, आँसू पोछने के लिए हैं।' खीझ और पराजय की ग्लानि से उठ खड़ी हुई मुक्ता। उठते - उठते तीक्ष्ण दृष्टि में देख कहने लगी - ''जगन्नाथजी, इस पाप और ताप से रक्षा करेंगे। उनके अलावा और कोई नहीं कर सकता।''

स्वगतोक्ति में वृंदा बार - बार कहती रही थी - ''कालिया, तेरी आशा में आज तक जी रही हूँ। तेरी इच्छा और लीला, सब कुछ तेरी है।'' मुंदी आँखों में आँसू आते हैं। अंधकार वलय में रूपांतरित जैसी झुलस रही थी। मानव के दुःख के समय आँसू पोंछने के लिए वही कृष्ण और श्रीजगन्नाथजी आते हैं। युग - युग में अवतार लेते हैं।

वृंदा आकाश की ओर देखने लगी। वही नीलनयन, नीलकांति सागर में वही वर्णनातीत नीलिमा की असीम व्याप्ति, पृथ्वी में, पहाड़ों में, झरनों में, चारों ओर उसकी छवि, कृष्ण की सत्ता परिव्याप्त है। वह नील आलोक की रेखा जैसी समा गई है उसके मन और गर्भाशय में। मुक्ता का प्रश्न याद कर रही थी वृंदा।

वही दुर्लभ रात, जिसने अर्थहीन जीने को अर्थमय बना दिया था। एक नूतन परिपूर्णता के अनुभव से उसकी सेवती देह - मन भर उठा था। वह अनिर्वचनीय सुख की छुअन का अनुभव कर रही है। अपने सारे शरीर में, हृदय में और आत्मा में।

पहली बार उसने बड़सिंहार धूप के समय ठाकुर जी के सामने नृत्य की अनुमति पायी थी। यौवन प्राप्ति के पहले पारंपरिक रूप में वह गरुड़स्तंभ के पास मंगल आरती के समय गीत गाया करती थी।

उस दिन की नृत्य सेवा थी यौवन प्राप्ति के बाद का पहला दिवस। उस दिन उसका मन भाव से भर गया था। जगन्नाथजी के सामने गीत गोविन्द नृत्य करते हुए अनुभव कर रही थी कि वह स्वयं वृंदा नहीं है, पार्थिव शरीर त्याग कर श्रीराधा में बदल गई है। जगन्नाथजी श्रीकृष्ण की तरह लग रहे हैं। जगन्नाथजी का केतकी टाहिया (मस्तक के पीछे का शोभा मुकुट) बदल गया है मयूर पंख में। अधरों में वंशी बहुत सुन्दर लग रही है। वंशी के स्वर में जैसे बुलावा आ रहा है – 'राधा... राधा!!'

उसी बुलावे में राधा पागल की तरह दौड़ जाती है यमुना किनारे। प्रभु की दोनों बाहुओं ने उसे समेट लिया है अपने हृदय में। नील – नव घन कांति के भीतर राधा का अंग समा गया है। सिर्फ राधा के भीतर कान्हा और कान्हा के भीतर राधा का समावेश! राधा चरम प्राप्ति में खो गई है। आलिंगन शिथिल हो गया है। थोड़ी देर बाद बालगोपाल ताली बजा कर हँस रहे हैं। चेतना पा कर उसने देखा कि वह यमुना किनारे नहीं, बल्कि समुद्र किनारे पड़ी है।

श्रीजगन्नाथजी ने कृष्ण के रूप में उसके साथ एकाकार होकर नारी जन्म सार्थक बना दिया है! गहन भावावेग में वृंदा घर लौटी थी। वह अनुभव कर रही थी कि वह राधा से यशोदा बन गई है। तब वृंदा कौन? यशोदा, राधा या देवदासी वृंदा? वह कौन है? उसे सब कुछ असह्य लग रहा है। उसे चक्कर आ जाते हैं। 'जगन्नाथजी-श्रीजगन्नाथजी' कह कर वह मूर्च्छित हो गई।

रात बीते उसे नायकजी ने लाकर सौंप दिया था मां के हाथ में। आसमान में घने मेघ की छाया सुदर्शन चक्र की पताका को ढक रही थी। जेष्ठ खत्म हो रहा है। आज जेष्ठ शुक्ल एकादशी है। कल चंपक द्वादशी। इस दिन रुक्मिणी नारायण को स्वामी के रूप में पाने के लिए विमला पूजा करती थी। अंतर्यामी नारायण उनके मन की बात जान कर विमला मंदिर से उसे उठा कर ले गये थे। उस मधुर स्मृति की पूजा आज भी श्रीमंदिर में प्रतिवर्ष होती है। उस दिन महालक्ष्मी रुक्मिणी के रूप में सजाई जाती हैं और श्रीजगन्नाथजी की चल प्रतिमा मदनमोहन के साथ 'रुक्मिणी मंडप' में ले जाकर विवाह रचाते हैं। देवदासियाँ शंख, वाद्य और मंगल ध्वनि से विवाह का कार्य सम्पन्न करती हैं।

यह पवित्र दृश्य देखने ओड़िशा के गांवों से यात्री दो दिन पहले ही आ गये हैं। एकादशी के बाद चंपक द्वादशी को रुक्मिणी विवाह देख कर स्नान पूर्णिमा के दिन जगन्नाथजी का 'जगवेश' देखेंगे। पाशा, चापखेल, चंदन आदि लगने की अधिकता सहन न करने के कारण बुखार हो जाएगा। कुछ दिन किसी से भेंट न कर विश्राम

लेंगे। कई लोग चले जाते हैं और कुछ लोग रुके रहते हैं नेत्रोत्सव या नव यौवन रूप देख कर जाने के लिए।

उसके बाद आषाढ़ शुक्ल द्वितीया! श्री गुण्डिचा! पतितों का उद्धार करने के लिए बाहर चले आएँगे भाईऔर बहन के साथ। इसलिए सारा पुरी नगर धूमधाम से भर रहा है। मानो अनंत युगों से प्रतीक्षारत भक्त देखने को उतावले हो रहे हैं। सुबह होने आ रही है, परंतु सूरज नहीं निकला। बड़देवल से आरती का घंटा बज उठा। कोई भिखारी गा रहा है -

"मान उद्धारण कर हे तारण, शरण मुं तब पद तले"

(मैं तुम्हारे चरणों में शरण हूँ, मुझे उद्धार कर दीजिए।)

'जय जगन्नाथजी' कह मुदुली सिंहद्वार खोलते हैं। महापात्र और उनके पीछे सानच्छता मठ के वाद्यकार श्रीमंदिर में प्रवेश कर रहे हैं।

श्री जी की मंगल आरती का समय हो गया, इसलिए पालिया मेकाप, प्रतिहारी, अखण्ड मेकाप आदि गमछे को कंधे पर डाले इधर - उधर भाग दौड़ कर रहे हैं। लक्ष्मण शतपथी कहने लगे - 'जल्दी - जल्दी चलिये। धीरे - धीरे चलने से नहीं होगा। उधर ठाकुर की नीति सम्पन्न हो जायेगी। 'घुटनों तक पहने हुए कपड़ों को ऊपर उठा कर नाचते हुए आ रहे हैं शतपथी जी। तिवारी से कहने लगे - 'सुबह ही इन कोढ़ियों को देखिए जरा। कितनी भीड़ जमा कर दी है! सरकते ही नहीं, पास आ जाते हैं, छू जाने पर फिर कौन जाकर नहाएगा नरेंद्र पुष्करणी में।'

तिवारी जी ने जरा मुस्कराते हुए कहा - 'शतपथी जी, आप इतने दिन पुरी धाम में रह कर भी कोढ़ियों को अस्पृश्य समझते हो, यह तो ठाकुरजी की लीला भूमि है, सारे बड़ों का मिलन यहाँ हुआ है। बड़ेठाकुर, बड़मंदिर, बड़पंडाऔर बड़ा रोग। दुष्ट लोकनाथ से बड़दांड तक कतार में बैठे हैं! फिर यह अछूत क्यों? हे जगन्नाथजी, जगन्नाथजी!'

श्रीमंदिर में उस समय प्रभु की मंगल आरती देखने के लिए भीड़ जमा हो चुकी थी।

जय - विजय द्वार पर अखंड मेकाप भीतर जा कर दीप चला चुके हैं। खटशेज मेकाप रात के शयन का रत्न पलंग ले जाकर भंडार में रख चुके हैं। भंडार मेकाप आरती की थाली में कर्पूर, इक्कीस बत्ती, दही और चावल का आटा आदि चांदी के थाल में रख चुके हैं।

अरुण स्तंभ को पार कर सिंहद्वार होते हुए गाऊँणी और किशोरी माहारी बाईस पावछ पार करती जल्दी से बाहर आ रही हैं। बाइस पावछ को पार करते हुए काशी विश्वनाथ जी को प्रणाम करते समय मुड़ कर देखा तो शतपथी जी पतितपावन को प्रणाम कर रहे हैं।

तिवारी जी ने आवाज दी - "आइये शतपथी जी! जल्दी आइये। तुम्हारे सेवा कार्य में तो देर है, परंतु मेरी पारी तो अभी ही है। 'माजणा अवकाश' तो अभी होगा। किशोरी माहारी आ गई है। ठाकुर जी की आरती के समय वह चौपदी गाएगी। उसके कुछ समय बाद ही मेरी बारी है।"

पतितपावन को प्रणाम करते हुए शतपथी जी कहने लगे - "किसका नाम ले रहे हैं तिवारी जी? कौन चौपदी गाएगी?"

"क्यों, किशोरी माहारी गाएगी। आज बारी उनकी है। मंगल आरती में वे आएंगी। क्या भक्ति... क्या तान... क्या लय...!"

जगु तिवारी कहते समय भाव विभोर हो गए थे। आगे - पीछे बेतरतीब चल रहे, ये कुछ नहीं सोचा। शतपथी ने व्यंग में जरा मुस्करा कर निर्भय स्वर में कहा, क्यों नहीं कहोगे, उसकी भक्ति का क्या कहना! "बयस काळे नौ शह घोइता; वृद्धा काळे हरिमंदिर चिता!!" (उम्र रहते व्यभिचार और बल जाने पर भक्ति का पारावार)

जगु तिवारी रुक कर शतपथी को देख कर दबे स्वर में कहने लगे - "चुप भी रहो शतपथी जी, कोई सुन लेगा। भक्त भी आने - जाने लगे हैं। सुनेंगे तो कहेंगे ये पंडे इतने अधर्मी हैं! सुबह - सुबह सेवा करने के लिए आते हैं तो ऐसी बातें करते हैं! क्यों क्या हुआ?" उनकी आँखों में जिज्ञासा और कौतूहल।

शतपथीजी मंद मुस्कान भर कहने लगे - क्या होगा? बेटी किशोरी माहारी मां बनने जा रही है! जगन्नाथजी! जगन्नाथजी!! इनको धर्म सहेगा? नाम से ही ये देवदासी, देवताओं की सेवादासी - माहारी हैं। सारी माहारी बस्ती कुछ दिन बात 'दारा बस्ती' न हो जाये तो मेरे नाम पर कुत्ते पालना। समझे तिवारी जी! जगन्नाथजी इतनी बड़ी - बड़ी आँखें लिए बैठे हैं नीलाद्रि कंदरा में! पाप छिपेगा नहीं। किशोरी माहारी पागलों की तरह बक रही है। नाम - ग्राम कुछ भी पूछने पर हँस कर सिर्फ जगन्नाथजी का नाम लेती है। पढ़ा था आपने कि राजपुत्र मित्रद्रोही बन कर कैसे - कैसे बोल रहा था।

विश्वासघात करके क्या फल मिलता है? उस समय श्रीमंदिर में मंगल आरती शुरू हो गई थी। पहले कर्पूर आरती, उसके बाद इक्कीस बत्तियों की आरती, अंत में चावल आटे से बनायी आरती का तीनों विग्रहों को अर्पण के बाद आरती प्रसाद राजमहल भेज दिया गया है। किशोरी माहारी का कंठ स्वर सबको भाव-भक्ति में भिगो रहा है।

तिवारी जी चलते वक्त शतपथी जी से कहने लगे - इसमें किशोरी माहारी का क्या दोष है? अपना कर्म स्वयं भोगेगा। तुम्हारी बाल विधवा फूफी राधागोविन्द के महंत स्वामी ज्ञानानंदजी से ज्ञान आहरण करते समय उन्हें लेकर वृंदावन भाग गई। देखने वाले कहते हैं कि बाल - बच्चों वाली होकर संसार बसा लिया है। उसके लिए तुम्हारे पिताजी या तुम दोषी ठहराये गए? आप लोगों को तो मंदिर से निकाल नहीं दिया गया। इसलिए कहते हैं - "गोदरी लो निज गोड़ कु अना" अपनी गलती खुद देखनी चाहिए। इतना कह कर जगुबंधु तिवारी मंदिर के अंदर चले गए।

लक्ष्मण शतपथी देखते रहे। उनका हड़ीला चेहरा लज्जा से लाल हो गया। गहरी आँखें नीरव आक्रोश से दप - दपा रही हैं। उनकी लंबी नाक फूल कर विवर्ण हो गई है।

लज्जा, अपमान, क्रोध और आक्रोश को एक ही वाक्य में उगलते हुए कहा - "साला, खुद तो तुलसी ही है! समूचा पवित्र!"

जगु तिवारी मंदिर में पहुँचे, तब तक तीनों देवताओं का 'मइलम लागी' हो चुका है। ठाकुरजी के श्रीअंग से पिछली रात की माला व वस्त्र आदि लेकर सिंहारी रत्न सिंहासन से नीचे उतर रहे हैं।

सुआरवडु चारों तरफ साफ कर रहे हैं। देर से आये हुए जगु तिवारी से बोले - "तिवारी जी कल रात क्या हुआ, भांग क्या ज्यादा हो गयी थी? अभी भी नींद नहीं टूटी है? आज ठाकुरजी का 'माजणा अवकाश' नहीं होगा?"

तिवारी जी चुप रह गये। सामाजिक, पारिवारिक या सांसारिक जीवन में सब अलग होने पर भी श्री जी के सिंहासन के नीचे सारे सेवक समान हैं। किसी पर नाराज होना बुरी बात है।

प्रभु के 'माजणा अवकाश' के लिए तिवारी जल्दी चले गये। 'पाणिआ पटि' सेवक सामने के कूप से जल ला रहा है। 'सुआरबडु' ने तीनों ठाकुरों के लिए तीन पीढ़े और सामने तीन मेज रखी हैं। अचल महामेरु तो स्वयं रत्नसिंहासन से उतर

कर नहीं आयेंगे। तीनों ठाकुर जी के सामने कांसे के आईने रखते पड़ते हैं। आईने में प्रतिबिंब रहेगा उस असीम विश्वव्यापी प्रतिबिंब का। तीनों ठाकुरजी के प्रतिबिंब से उनकी सोने की जीभ छेली और दातुन से दांत साफ किये जाते हैं।

प्रभु बलभद्र और सुभद्रा देवी के सामने दर्पण रखे गये। जगु तिवारी प्रभु जगन्नाथजी के लिए रखे गये दर्पण को लेकर बैठ गये हैं। 'गराबडु' ने जब पानी लाकर रख दिया तो कांसे की थाली में तीनों देवताओं के प्रतिबिंब को दधि से स्नान करवाया। ठाकुरजी के माजणा पानी लेते हुए बड़सिंहारी ऊंचे स्वर में कहने लगे 'पाळिआ' प्रतिहारी, माजणा जल लीजिए।" प्रसाद की महाराज प्रतीक्षा कर रहे होंगे। इतना कह कर तीनों ठाकुरों को पाटवस्त्र पहना रहे थे।

अभी साहाण मेला (अवाध दर्शन) और उसके बाद बल्लभ भोग होगा, सुबह का आरती धूप, मध्यान्ह धूप, उसके बाद छप्पन पौटी भोग होता जायेगा। प्रभु के सब लोग दर्शन कर सकेंगे। दर्पणिया जगुतिवारी की सेवा सिर्फ इतनी है। तीनों विग्रहों के माजणा अवकाश के लिए कांसे के दर्पण लिए हुए ब्रह्मांड ठाकुर के सामने बैठना उसका काम है। इसलिए तो तीन पीढ़ी से वह 'खंजाजमीन' और खेई का अधिकारी है। उसके बाद दिन भर यात्रियों को लेकर दर्शन कराना, झूठी गप्पें सुनाना और इधर - उधर मंदिर में टहलना उसका काम है।

जगुतिवारी मंदिर से निकल कर लक्ष्मी के सामने बैठ कर गमछे से हवा करने लगे।

ढके हुए मेघ में वर्षा का कोई निशान नहीं, सूर्य की प्रखरता भी नहीं है। सुबह - सुबह असह्य उमस। इस साल इंद्र अगर शुभ दृष्टि नहीं करेंगे तो क्या स्थिति होगी, कहा नहीं जा सकता।

विश्व जननी विश्व पटरानी लक्ष्मी सारी दुनिया को अन्न और वस्त्र देने वाली है, इसलिए सारे भक्त मां के सामने दीप जला कर बैठ जाते हैं उनके सामने कुछ मांगने के लिए। विश्वास है कि अन्नपूर्णा मंदिर में बैठ जाने से जीवन भर अन्न - वस्त्र की चिंता दूर हो जाती है।

गमछा डोलाते हुए दृष्टि चली गई ग्रामीण भक्तों की ओर। उनमें से एक बड़बोला निकल कर कहने लगा - "सुनते हो यार! गांधी जी, महाराज रथ यात्रा देखने आ रहे हैं।"

विस्मय से पूछा - "सच? तुम्हें कैसे पता चला?"

संवाद बताने वाला सर्वेसर्वा की भंगिमा में कहने लगा - "वही लीडर बाबू जो किसानों की सभा करने गये थे, चर्चा कर रहे थे।"

उनमें से और एक श्रोता पूछने लगा - "तुम्हें कैसे पता चला! मैं भी तो गया था, मुझे तो पता नहीं?"

पहला वक्ता छोड़ने वाला नहीं है। दाहिने हाथ से जांघ को पीट कर कहने लगा - 'समझे प्रधान जी, सब लोग सारी बातें जान नहीं सकते। सब कुछ सुन भी नहीं सकते। सुनने पर भी समझ नहीं सकते।' फिर व्यंग्योक्ति भरी हँसी के बीच प्रश्नकर्त्ता को छोड़ चले गये। प्रश्न करने वाले श्रोता चुप रहे। एक श्रोता पूछने लगा - 'लीडर क्या कह रहे थे? गांधी जी हमारे गांव आयेंगे?'

वक्ता कहने लगे - "गांधीजी को लाना कौन - सी बड़ी बात है?" जगु तिवारी सब सुन रहे थे। लीडरजी की प्रशंसा सुन कर उनसे सहा नहीं गया। साले, तुम्हारे गांव गांधीजी जायेंगे? एक बार श्रीक्षेत्र आये थे। जगन्नाथजी के दर्शन न कर सागर किनारे चले गये। कस्तूरबा अकेली गई थी। लौटने के बाद कस्तूरबा से कहा - 'तुम दरिद्रनारायण को छोड़ कर पत्थर-लकड़ी की क्यों पूजा करती हो? जहाँ मानव के लिए इतनी निषेधाज्ञा है, वहाँ जाने की जरुरत ही क्या है? मैं ये सब बिलकुल पसंद नहीं करता।' कस्तूरबा के मुँह से बोल नहीं निकले। जब उन्होंने क्षमा मांगी तो गांधीजी शांत हो गये।

बराल जी पूछने लगे - "गोसांई जी, आप ने खुद सुना है?" जगुतिवारी ने चारों तरफ एक नजर फेंकी। पान खाते हुए लाल दांतों को दिखा कर कहा - "हाँ, हाँ सुना क्यों नहीं? यह तो मेरी देखी - सुनी बात है। कस्तूरबा मेरा हाथ पकड़ कर कहने लगी - पंडाजी, बापू को तुम जरा समझाना, जगन्नाथजी को ऐसे लकड़ी - पत्थर कहने से पाप होगा। बेजात, अधर्मी लोग मंदिर में घुसने की जिद्‌द करते हैं, कितने पाप की बात है!"...

जगु तिवारी ने बात को इतना रसाल बना दिया कि पूछो मत! मैंने ऐसा समझा दिया कि बूढ़े ने झट से हाँ भर दी। जगन्नाथजी की डोर न लगने से इच्छा न होने पर भी कोई जा सकता है? कोई गड़बड़ हो गई दिल्ली में, गांधी जी मंदिर न जा कर तुरंत रवाना हो गये वापस। जाते समय मुझे बता कर गये - 'बेटा, मैं फिर आऊँगा।'

यही तो बताया था, इसलिए तो वे रथयात्रा के अवसर पर आ रहे हैं। तुम्हारे गांव जाने के लिए उनके पास समय कहाँ? वे क्या तुम जैसे आदमी हैं?

हो सकता है और कुछ झूठ - सच मिला कर तिवारी जी बोलते। इतने में एक दर्पणिया ने आकर कहा - "तिवारीजी आप यहाँ बैठे हैं? उधर आप को ढूँढा जा रहा है। जाइए... जाइए!"

सुबह की 'धूप' लगी थी। तिवारी 'खेई' के लिए मंदिर के अंदर फिर से गये। सुबह की पूजा में 'एण्डुरी', 'कांति', 'झिल्ली', 'अदरक', 'हंसकेळि', 'माटपुळि', 'काकतुआ', 'बुद्धिआ' और खीर की सुगंध फैल रही है।

* * *

चंपक एकादशी!

हर साल की तरह इस साल भी राजप्रसाद में आनंद-उल्लास की कमी नहीं। रास्ते पर आम के पत्तों के तोरणद्वारों में पूर्णकुंभ और राजपथ पर शंख की मंगलध्वनि के साथ सत्यकार्यो की घोषणा हो रही है।

राजप्रासाद की अतिथिशाला निमंत्रित सामंत राजाओं द्वारा पूर्ण हो गयी है। नाट्यशाला में बाणपुर से राजनर्तकी राजअंगिला आ गई है। चुड़ंग साही से संप्रदानियों और भीतर गायनियों को भी निमंत्रण भेज दिया गया है। ठाकुरजी के विमान के साथ - साथ वे आएँगी। राणी अंतःपुर से राजदरबार तक उत्सव मुखारित हो उठता है। प्रभु जगन्नाथजी को केंद्र कर विकसित हो उठता है उत्कलीय धर्म, संस्कृति, कला, राजनीति और राष्ट्रीय ऐक्य तथा विश्व - मैत्री भाव। विश्व देव जगन्नाथजी के छत्तीशानियोग सेवकों में से पुरी के जगपति महाराज प्रधान नियोगी और प्रथम सेवक हैं।

फिर भी, आज प्रभु अतिथि के रूप में प्रासाद में उपस्थित होंगे! भक्त की भक्ति में सदा बंधे हैं प्रभु जगन्नाथजी! इसलिए ही तो उनका नाम है भक्तवत्सल!

बैकुण्ठ का सिंहासन त्याग कर भक्तों के लिए भगवान युग - युग में मानव रूप लेते हैं इस धरती पर। साधारण मानव की तरह जन्म - मरण, प्रेम-विरह, विवाह आदि लोकाचार में वे प्रकट हो रहे हैं। वह स्मृति अब भी श्रीमंदिर को ओत - प्रोत कर देती है। जेष्ठ शुक्ल एकादशी को प्रभु मदन मोहन वेश में शोभा पाते हैं। प्रातः धूप (भोग) के बाद श्री जी के बाएं हाथ की माला लेकर सेवक महालक्ष्मी को अर्पित कर देते हैं। लक्ष्मीजी रुक्मिणी वेश में पालकी में बैठती हैं। पिता द्वारा चुने गए वर

शिशुपाल से विवाह न करने के लिए विष्णु प्राणा रुक्मिणी इष्टदेवी विमला की पूजा करने निकलती हैं। वीणा वादक नारद के हाथों चिट्ठी भेजती हैं विष्णु के पास।

संदेश पा कर रुक्मिणी को विमला के मंदिर से मदन मोहन हरण कर अपने रथ में बिठाते हैं। प्रभु मदन मोहन का देवी रुक्मिणी को लेकर लौटते वक्त सरस्वती के मंदिर के सामने शिशुपाल वेशधारी सेवक के साथ युद्ध छिड़ जाता है। शिशुपाल को पराजित कर रुक्मिणी के मंडप में उनका विवाह होता है। संध्या अर्चना के बाद नवदंपति श्रीमंदिर के अंदर जाते हैं। देवदासियाँ आगे-आगे मंगलगीत गाती हुई चलती हैं।

रुक्मिणी विवाह के बाद चंपक द्वादशी के दिन भोग मंडप के द्वार पर श्री जी की माला पाकर वर - वधू को आशीर्वाद दे करके लौटने की परम्परा बहुत दिनों से चली जा रही है।

चंपक द्वादशी या रुक्मिणी के विवाह बाद वाले दिन प्रभु की प्रतिमा रूप में मदन मोहन और रुक्मिणी दोनों आते हैं राज प्रासाद में। नवदंपति का विवाह राजा धूम - धाम से करते हैं।

दूर - दूर से निमंत्रित अतिथि आते हैं, नृत्य, संगीत और भोज से आप्यायित होते हैं। कवि और पंडित आपस में ज्ञान - विज्ञान की चर्चा करते हैं। नृत्य और संगीत की प्रतियोगिता होती हैं। महाराज स्वयं प्रतियोगियों को उपहार देते हैं।

आज वही चंपक द्वादशी का शुभलग्न है। सभासद, निमंत्रित अतिथि और गजपति महाराज स्वयं मदन मोहन और लक्ष्मी देवी के सिंहासन के नीचे आकर उपस्थित हैं।

महामंत्री ने घोषणा की - "प्रभु जगन्नाथजी के विवाह के लिए राजनर्तकी नृत्य पट्टीयसी यमुनाबाई नृत्य प्रस्तुत करेंगी।"

आलोक से खिल उठा सभामंडप! पद्मगंधा यौवनावती रूपसी की देह महक उठती है पद्म की सुगंध से! रुनझुन नूपुर की तान से अपूर्व भंगिमा में खड़ी है राजनर्तकी यमुना बाई। उसके अंग - अंग से आमंत्रण का स्वर उभर रहा है।

वीणा और पखावज की ताल पर घुंघरु बज उठते हैं। आँखों में, होठों में और उन्नतवक्षों में प्रकट हो उठा है अभिसारिका का छंद।

अभिनय की मुद्रा से प्रतीत होता है कि तुम छली हो, लंपट हो! लौट जाओ

यहाँ से। प्रतीक्षा करते - करते सुबह हो गई। तुम लौट जाओ, फिर यहाँ आने की हिम्मत न करना।

सौंदर्यमयी यमुना नृत्यमयी बन गयी है! नृत्यमयी रूपसी संगीत की तान में विमोहित हो रही है। सचमुच राजनर्तकी यमुना सौंदर्य, कला और आकर्षण की धारा यमुना नदी हो गई है, जिसके स्रोत में रसिक मंडली का मन, बुद्धि और हृदय जैसे बह - बह जाता है। तालियों के बीच यमुनाबाई ने आभार व्यक्त कर सभागृह से प्रस्थान किया।

प्रभु मदनमोहन और देवी रुक्मिणी के विग्रह के सामने अब समवेत नृत्य नाटिका प्रस्तुत करेंगी देवदासियाँ।

संक्षेप में रुक्मिणी विवाह की नाटिका प्रस्तुत की गई चुड़ंग साही की देवदासियों द्वारा। नृत्य और अभिनय में वे एक - दूसरे से आगे हो जाती हैं। उनकी अभिनय कला इतनी चमत्कार भरी थी कि दर्शकों के सामने समय मानो द्वापर में लौट जाता है।

मुक्ता माहारी के नृत्य के बाद पंडित सभा शुरू होगी। दर्शकों के बीच फुस फुसाहट होने लगी। कोई कहने लगा कि यमुना बाई के कामोद्दीपक नृत्य के बाद मुक्ता माहारी का वैराग्यपूर्ण नृत्य रखना उचित न था।

कोई कह रहा था कि मुक्ता माहारी के नृत्य से यमुनाबाई पीछे रह गई। दर्शकों का कलरव थम गया। संपूर्ण आत्मसमर्पण की मुद्रा में उपस्थित हो गई है देवदासी मुक्ता माहारी! मृदंग की ताल में, संगीत गुरु रामानुज पट्टनायक का मेघ गंभीर स्वर। सुन्दर भाव से श्रीजगन्नाथजी की पद वन्दना का अपूर्व अभिनय सुन्दर ढंग से प्रस्तुत कर रही थी मुक्ता।

कदाचित् कालिन्दी तट विपिन
संगीत मुदारं...

उसके बाद राधिका का मान दुरंत प्रियतम श्रीकृष्ण के लिए -

मोहन... प्रीति में नहीं कारण
विष को पीयूष की तरह... न जान कर लिया
अब नतीजा हुआ करुण...
प्रीति में नहीं कारण...

यह आवेग स्पंदित नृत्य परिवेश को संगीतमय बना रहा है। संवेदन से भरा अश्रुल अनुभूति का विवशभाव। दर्शकों का मन और इंद्रियाँ यमुना बाई के नृत्य से उत्तेजित हो उठे थे, मुक्ता माहारी के नृत्य और रामानुज पट्टनायक के संगीत से उन्मत्त हो उठे! यह उन्मत्त भाव गंभीर भावानुवेग से जुड़ गया। परमात्मा के साथ मिलन के लिए आत्मा का दुर्निवार आवेग! जिस भाव से मोहित हो गई कृष्णगत मीरा, जिस भाव से इंद्रियातीत राज्य में पहुँच गये थे श्री चैतन्य। अभिव्यक्ति और चेतना के आरोहण से रंग गया परिवेश, हो उठा तन्मय, प्रेमोन्मत्त!

सचमुच ऐसा लग रहा है कि उस द्वापर युग का धरावतरण हुआ है। कृष्ण, कदंब, यमुना और राधा का प्रेम प्रणय मान और आत्मसमर्पण सब कुछ दिखाई दे रहा है मुक्ता के अभिनय की एक - एक मुद्रा में।

राजनर्तकी यमुना बाई सत्य है।

देवदासी मुक्ता माहारी भी सत्य है। मनुष्य के जीवन में ये दोनों सत्य बराबर हैं।

भोग और योग, आनंद और महानंद, भोग और त्याग, पतिता और परिणीता, जीवन में किसी की भूमिका कम नहीं है। हिचकिचाहट में पड़ गये गजपति महाराज रामचंद्र देव। श्रेष्ठ नर्तकी के रूप में किसको विभूषित करेंगे?

यमुनाबाई का नृत्य श्रावण महीने का उत्ताल फेनिल तरंग है तो मुक्ता माहारी का नृत्य अगहन महीने की नदी का धीर - शीत प्लावित स्रोत है। एक रुद्र सुन्दर है, तो एक शांत सुन्दर।

सौंदर्य में ही तो दोनों का आंतरिक-आभ्यंतरिक विकास है। चिंताग्रस्त महाराज ने श्रेष्ठ नृत्यांगना का विचार करने का भार उपस्थित पंडितों पर छोड़ दिया।

पंडित सभा में तर्क - वितर्क, वाद - विवाद और उसी तरह का द्वंद्व पैदा हो गया है।

एक दल मुक्ता माहारी का समर्थन करता है तो दूसरा दल यमुना बाई को श्रेष्ठ नर्तकी की स्वीकृति प्रदान करने की बात कहता है। दोनों शिविरों में सिर्फ उत्कंठा और प्रतीक्षा है।

दर्शक मंडली तो उत्कंठित होकर प्रतीक्षा कर रही है। मुक्त आंगन में आम लोग और राजप्रासाद में गजदंत वाली के उस तरफ अंतःपुर में राजमाता राणी कुंवरि और सामंत परिवार आदि बैठे हैं।

पंडित मंडली के निर्णय की घोषणा जिन्होंने की, उनकी तरफ सबकी आँखें चली गई। कान भी उनकी बातें सुनने को तत्पर हो उठे। उन्होंने घोषणा की - "आज के इस नृत्य अवसर पर गजपति के आदेशानुसार पंडित मंडली नृत्य पट्टीयसी यमुनाबाई को श्रेष्ठ नर्तकी के रूप में सम्मानित कर रही है।"

दर्शक मण्डली में फिर गुंजन छा गया। 'पक्षपात - पक्षपात', 'साधु - साधु'! महाराज ने खुद विचार न कर इन भंगेड़ियों के हाथों फैसला क्यों छोड़ा? अस्पष्ट से स्पष्ट होते हुए स्वर फिर और स्पष्ट होने लगा।

घोषक सब लोगों को शांत कर व्याख्या कर रहे थे - 'पंडित मंडली के मत में ये एक दूसरे से बढ़ कर नृत्यप्रवीण हैं। परंतु सत्य को पेश करना और मिथ्या छलना का आश्रय लेना एक बात नहीं है। सत्य की विजय चिरंतन है। दोनों विपरीत धर्मी चुंबक एक - दूसरे से आकर्षित होते हैं। नारी का अन्य नाम अभिनेत्री है। नारी अंगगुण, रूप और अधीनस्थ कला, प्राण - प्रणय से पुरुष को आकर्षित न कर सके तो वह अभिनेत्री के रूप में श्रेष्ठत्व कैसे प्राप्त कर सकती है? यमुनाबाई ने अपने नृत्य से दर्शक मंडली के तन और मन को प्रबल आकर्षण और गंभीर आवेग में आकर्षित किया है। उनके अभिनय में है एक अभिसारिका, प्रेमिक पुरुष की ओर गहन भावानुवेग में स्वतःस्फूर्त चेतना। मुक्ता माहारी का नृत्य आकर्षक और सुन्दर होने पर भी हृदय के आवेग और अभिनय में समन्वय नहीं रख पाता।

यह निर्णय पंडित मंडली का है, इसलिए महाराज से विनम्र अनुरोध है कि यमुना बाई को श्रेष्ठ नर्तकी का सम्मान प्रदान करें।

घोषक को एकटक देख रही थी मुक्ता। शाल जैसी सीधी काया, शंख ध्वनि का भ्रम पैदा करने वाला स्वर!

यह तो वही कला प्रेमी युवक है, प्रभु के बड़सिंहार के समय नृत्य समाप्त कर आते समय जिससे भेंट हुई थी, जिसने चांदनी रात में उसके हाथ में थमा दिया था बहुमूल्य रत्नहार! मीना नायक बता रहे थे कि कसरत करने वाले युवकों को लेकर 'कांचि विजय' अभिनय किया था और बता रहे थे कि वे एक कवि हैं!

आज सारी स्मृतियाँ तरोताजा हैं। कुछ विस्मृत नहीं हुआ। उस चांदनी रात में स्वर्गिक विमुग्ध भाव, क्या वह छलना था? प्रभु जगन्नाथ के लिए समर्पित देह - मन, स्वर्णालंकार देकर वह क्या मुक्ता का सान्निध्य चाहता था? प्रभु जगन्नाथजी के लिए समर्पित देह, मन और आत्मा के आईने में थोड़ी देर के लिए भी क्यों न हो, अपना प्रतिबिंब देखना उसका उद्देश्य था?

मनुष्य का मन तो चंचल है, लेकिन मुक्ता अपने चित्त पर विश्वास नहीं कर पाती। पंडित मंडली का प्रतिनिधित्व करने वाला यह युवक दुर्बल चरित्र का हो सकता है, यह विश्वास नहीं होता। ज्ञान, बुद्धि और प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति मानसिक पतन से क्या हमेशा मुक्त रह सकते हैं? ज्ञानी - गुणी लोगों के पास क्या प्रेम आवेग और आकर्षण की कोमल स्निग्ध - अनुभव शक्ति नहीं है? मुक्ता अपने तर्क का स्वयं ही खंडन कर रही थी। बार - बार तालियों के बीच उसका विस्मृत भाव दूर हो गया।

घोषणा हो रही है - "अब वीर श्री गजपति गौड़ेश्वर नवकोटि कर्णाट कलवर्गेश्वर श्री श्री महाराजा रामचंद्र देव नर्तकी श्रेष्ठ यमुनाबाई को उपहार प्रदान करेंगे।"

मुक्ता देख रही थी। मंद मुस्कान में यमुना बाई खड़ी है। महाराजा के लंबे हाथों में शोभित हो रहा है पटवस्त्र। यमुना बाई का सिर झुक गया। महाराजा के हाथों से सिरोपाव लेकर श्रीकरण ने यमुना बाई के मस्तक पर पहना दिया। उत्फुल्ल होकर सारे दर्शक तालियों से हर्षोल्लास व्यक्त कर रहे थे। उनके साथ मुक्ता भी शामिल थी।

यमुना बाई से पराजित होने की ग्लानि या दुविधा कुछ भी नहीं थी मुक्ता के मन में। वह तो नृत्य कर रही थी मदनमोहन के मनोरंजन के लिए। वाह्य जगत की प्रशंसा और पुरस्कार पाने की लालसा में नहीं। उसके नृत्य को पहचानने वाले हैं सोलह कला के ठाकुर मदन मोहन। वह देख रही थी कि उनके अधरों पर मुस्कान बिखर रही है।

मुक्ता एक साधारण देवदासी है। जगन्नाथ स्वामी की करुणा के अलावा किसी यश, प्रतिष्ठा और अर्थ के लिए वह लालायित नहीं है। वैसा अगर होता तो महाराजा मुकुन्द देव की करुणा का वरदहस्त उसके सिर पर सोने का कलश पहले ही उंडेल गया था।

अबोध किशोरी अगर गर्व से घोषणा कर रही थी कि जगन्नाथजी की पत्नी बनने के बाद वह मानव के मनोरंजन के लिए 'राज अंगिला' (मात्र राज नर्तकी) नहीं हो सकती। फिर आज उसके लिए इस ढलती उमर में इतनी आकांक्षा क्यों होगी?

उस किशोरी मुक्ता का अहंकार और आत्माभिमान आज भी उसके अंदर मौजूद है, लेकिन एक विचार उसके मन और हृदय को लगातार मथ रहा था। युवक को कैसे पता चला कि इस नृत्य में मुक्ता माहारी की अंतरात्मा की स्वीकृति नहीं थी, इसलिए हृदय के आवेग और अभिनय में मेल न था।

निष्ठा के साथ वह आज तक कला की साधना करती आ रही थी। आज पहली बार वह अनुभव कर रही थी कि उसको गहराई से जानने वालों में जगन्नाथजी के बाद वह युवक ही है। उसकी सूक्ष्म दृष्टि से साधना और सिद्धि के पहाड़ के नीचे दबी हुयी थोड़ी - सी गलती भी छिपी न रह सकी।

पंडित सभा शुरु हो चुकी थी। राजनर्तकी यमुना बाई ने लास्य भंगिमा में अनुमति लेकर सभास्थल त्याग दिया। उसके वाद्यकार, कुछ संगीतज्ञ और उसकी रूप - कला से मोहित रसिक वृंद भी उसके पीछे चले गये।

पंडित सभा के अंत तक बैठी रही मुक्ता। उसके सीमित जीवन की परिधि के भीतर यह असीम उपलब्धि और अनुभूति और कभी नहीं मिलेगी।

विद्वानों का सान्निध्य कितने लोगों के भाग्य में होता है? सभा के पहले उस तेजस्वी युवक ने सभा का तात्पर्य बताया। युग - युग से राजा - महाराजा, संगीत, साहित्य और नृत्य के किस तरह से पृष्ठ पोषक बनते आ रहे हैं और वह समय की धारा के साथ कैसे घुलमिल जाता है, विस्तार से बताया। उस कला से अपराजित कालजयी कोणार्क की रचना हुई। राजा - रानी और ब्रह्मेश्वर मंदिर बने हैं। राज अनुग्रह और राजानुराग से पुष्ट संस्कृति उसकी वाकपटुता से मुखर थी। सारे पंडित चकित होकर उसकी ओर ईर्ष्या से देख रहे थे तो कभी हृदय से अभिनंदन जता कर रहे थे।

युग - युग से प्रतिभाशाली की पूजा और ईर्ष्या एकांत में ही होती है। खुले दिल से दूसरों की प्रशंसा कितने लोग कर सकते हैं?

मुक्ता के सामने पर्दे की तरह निकल आई एक स्मृति छाया। मां की मृत्यु के समय राजा मुकुंददेव दृष्टि डाल रहे थे एक निष्पाप किशोरी की नृत्य छटा पर। इसलिए 'राज अंगिला' के रूप में अपनाने को तैयार थे, परंतु उस लोभनीय प्रस्ताव को मुक्ता स्वीकार न कर सकी थी।

फिर भी क्षमाशील उदार हृदय से उन्होंने कहा था - "तुम मेरी नन्हीं मां हो!" आज कहाँ हैं वो उदार पितृतुल्य हृदय, महाराज! थोड़ी देर के लिए उसकी आँखें भर आयीं। सहज होते समय उसे पता चला कि महाराज मुकुंददेव के पुत्र रामचंद्रदेव आसन छोड़ रहे हैं और सभासद उन्हें सम्मान जता रहे हैं। पास से गुजरते समय महाराज को अभिवादन किया मुक्ता ने। गजपति महाराज जरा रुक गये। महाराज मुस्करा कर कहने लगे - "यमुना बाई यद्यपि श्रेष्ठ नर्तकी का पुरस्कार ले सकी है,

पर तुम्हारे नृत्य ने मुझे चमत्कृत कर दिया। प्रभु मदनमोहन की ओर तुम्हारे आत्मसमर्पण ने मुझे आत्मविस्मृत कर दिया माहारी! बधाई हो मुक्ता! तुम्हारी कोई इच्छा हो, तो कहो, मैं पूरी करुंगा!"

हाथ जोड़ कर मुक्ता उत्तर देने लगी - "महाराज, इस कृपा के लिए मुक्ता आभारी है। अपने लिए मैं कुछ नहीं मांगती। प्रभु की करुणा और महाराज के शासन में मेरे लिए कोई अभाव नहीं।

फिर भी मानव तो स्वयं सम्पूर्ण नहीं और निष्काम भी नहीं। कुछ इच्छा और अभिलाषा लेकर ही मानव पैदा होता है। वह स्वप्न अपने लिए हो या विश्व मैत्री के लिए, शाश्वत होता है।"

मुक्ता उनकी ओर देखने लगी। उनके समवयस्क होंगे या दो-चार साल बड़े। विशाल उत्कल राजमुकुट ने पहना दिया है यौवन को गंभीर और चिंताशील व्यक्तित्व का आवरण!

विनीत होकर मुक्ता कहने लगी - "मेरा भी एक सपना है। देवदासी की प्रथा बचाने के लिए एक विद्यालय की स्थापना करूँ। युग - युग से राजाओं की कृपा से कला और संस्कृति बची है। आपकी पृष्ठपोषकता में एक नृत्य केन्द्र हो जाए तो अनेक देवदासी उससे उपकृत होतीं और जगन्नाथजी को केन्द्र में रख कर यह जो परम्परा है, वह भी अटूट रहती। मैं इतनी - सी याचना करती हूँ।" कहते हुए उत्तर पाने को व्याकुल हो उठी।

रामचंद्र देव कहने लगे - "तुम्हारी साधु कल्पना से हम चकित हैं। तुम्हारा सपना साकार होगा।"

रामचंद्रदेव मंत्रियों के साथ विदा लेकर चले गये। आते वक्त की गति धीमी हो गई। पीछे से कोई बुला रहा है - "मुक्ता माहारी, जरा सुनना।" पीछे मुड़ कर मुक्ता देखने लगी। वह पुरुष उसका नाम लेकर बुला रहे हैं। मुक्ता खड़ी हो गई।

युवक ने कहा - "मुक्ता माहारी, मुझे गलत न समझना। उस दिन मंदिर के नृत्य में जो विह्वल भाव था, आज नहीं है। इसलिए मैंने यमुना बाई को श्रेष्ठ नृत्यांगना के रूप में घोषित कर दिया। आशा है तुम कलाकार हो, सत्य की पुजारिन, सत्य को सम्मान दोगी।"

युवक मानो कुछ छुपाने की कोशिश कर रहे थे। मुक्ता ने मुस्कराते हुए कहा - "आप, ज्ञानी, गुणी और सूक्ष्मदर्शी हैं। आपकी सूक्ष्म दृष्टि से सब कुछ स्पष्ट हो गया। आपने जो कुछ किया, ठीक ही है। मंदिर में भगवान के लिए मेरी कला अर्पित

है। साधारण दर्शकों के लिए मेरे पैरों में जड़ता भर जाती है। मैंने निष्ठा के साथ नृत्य नहीं किया, इसमें आप की गलती कहाँ?''

चैन की सांस लेकर युवक ने कहा - ''ईश्वर की कृपा से आपने मुझे गलत नहीं समझा। महाराजा के आगे अपने निःस्वार्थ स्वप्न की बात प्रस्तुत करने के अपूर्व साहस पर अभिनंदन स्वीकार करो।''

युवक चले जा रहे थे। मुक्ता ने हिचकिचा कर प्रश्न किया - ''आपका परिचय तो मालूम नहीं हुआ।''

- ''मैं नरोत्तम भुईंमल हूँ! नरणगढ़ के इंद्रजित भुईंमल की इकलौती संतान!''

मुस्कुराते हुए मुक्ता ने प्रश्न किया - ''यह तो हुआ आप का स्थूल परिचय। अपना परिचय भी तो दिया होता?''

नरोत्तम ने उत्तर दिया - ''समय आने पर सब कुछ पता चल जाएगा। मैं अभी यहीं मार्कंडेश्वर साही में रहता हूँ, फिर भी, जगन्नाथजी की कृपा होगी तो भेंट होगी।''

नरोत्तम भुईंमल चले जा रहे थे। दूसरी देवदासियों के साथ मुक्ता पैदल ही चुड़ंग साही लौट रही थी।

तरुण और सयानी माहारियों के बीच आपस में फुसफुसाहट हो रही थी। वे तिरछी नजरों से देख रही थीं। उनकी चुप्पी में भी बात एक से दूसरी तरफ पहुँच जाती थी। यह सुन्दर युवा पुरुष कौन है? इनके पास इसका क्या काम है या उनके पास इनका?

यह सब काम करके ही तो वृंदा बदनाम हुई। मुक्ता माहारी यह गलती फिर क्यों कर रही है और फिर श्रेष्ठ देवदासी भी तो है! छिः... छिः!

किशोरी माहारी ने मुक्ता के पास से गुजरते हुए कहा - ''बेटी, तेरे साथ एक बात करनी है।''

मुक्ता ने कहा - ''क्या बात है? बताइये न मौसी!''

''घर चल।'' कहते हुए चुपचाप किशोरी माहारी चलती रही।

* * *

खामोश मुक्ता के सामने अतीत की रुद्ध देहरी खोलते हुए किशोरी को हल्का महसूस हो रहा था। उठ कर चलते समय कह गई कि सोच - विचार कर काम करना।

प्राचीन मूर्ति की तरह गंभीर बैठी मुक्ता को जरा हिला कर दत्ता ने कहा - "दीदी उठिये, भोजन तैयार है।" मुक्ता की आँखें दूर आकाश की ओर चली गई थी। दत्ता फिर बुलाने लगी। मानो तपस्वी का तप भंग हो गया हो। तू जा, खीझती हुई कहने लगी - "मुझे कुछ देर अकेली रहने दो। अपने बारे में कुछ सोचने दो।"

दत्ता वहाँ से निकल आयी। दुख और अपमान से वह मुरझा गई। दयणा ने पूछा - "क्या हुआ दत्ता? दीदी उदास क्यों हैं?"

दत्ता मुंह बना कर कहने लगी - "तू अपना काम कर। मुझे अकेली छोड़ दे।" दत्ता गुस्सा होकर अपनी कोठरी की ओर चली गई। जाते - जाते कहती गयी - "सास मारे बहू को, और बहू झेंप उतारे चूल्हे में जले लुआठे पर।" दत्ता अपनी कोठरी के दरवाजे के पास जाकर खड़ी हुई। धीरे - धीरे रात बढ़ रही थी। समुद्र का गर्जन सुनाई देता है। दत्ता के मन में तरह - तरह की चिंताएं उभर रही हैं।

वह सोच रही थी कि मुक्ता माहारी को आज सारी बात बता दूँ। इन लोगों के अलावा दत्ता का अपना कौन है इस दुनिया मं। इनकी दया और ममता छा गयी है उसके मन, तन और आत्मा पर।

बापू जब जेल गये, तो उसकी उमर सात - आठ साल की होगी। शैशव की वह आंसू भरी कहानी तरोताजा हो गई उसके मन में। उसका नाम राधी थी। राधी की बात तो छोड़िए, उसके पिता को भी मालूम न था कि इस वंश के किसी ने महाजन के रुपये करज लिए हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी यह चलता रहा।

पिता जो फसल करते, साहूकार सूद की बाबत वसूल ले जाता। वे मजूरी कर इधर - उधर से जो कुछ भी लाते, उससे खाना बनता। कभी मिलता तो कभी नहीं। पैसा बचा कर कभी बैल या बकरी खरीदते, मगर साहूकार उसे भी भला क्यों छोड़ता?

एक दिन की बात है। साहूकार द्वारा घर में घुस कर बकरी खोल कर ले जाते वक्त बापू ने रोका। उसने कहा - "हजूर, किसी पूर्वज ने आप से पांच - सात रुपये कर्ज लिए होंगे। उसके लिए घर और जमींन बंधक रख गये हैं। फसल भी आप ले रहे हैं, तीन पीढ़ी से। इसको अभी छोड़ दीजिए। इसके दूध से मेरा बच्चा बच जायेगा।"

गरीबों की बात सदा हवा में उड़ जाती है। साहूकार के लोग बकरी ले गये। साथ - साथ बापू को खूब पीटा।

उसके दुःख की थाह नहीं रही। भूख से राधी का भाई चल बसा। साहूकार का बापू पर आक्रोश बढ़ता रहा। चोरी और फौजदारी के अपराध में फँसाया, पुलिस बांध कर ले गई। सब देख रहे थे, परन्तु किसी के मुख से सच बात नहीं निकली। सबने तो उससे कर्ज लिया है।

छोटी - सी राधी रोते - रोते साथ चल रही थी। कह रही थी - "मेरे बापू को छोड़ दो। छोड़ दो। उसने चोरी नहीं की है। किसी को मारा नहीं। सारी बात झूठी है। मेरे बापू को मत ले जाइये।" एक पुलिस वाले ने राधी पर लाठी मारी और कहा - "तेरा बापू चोर नहीं तो क्या हम चोर हैं?"

राधी एक तरफ गिर गई। बापू आये उसे उठाने के लिए परंतु पुलिस उसे ले गई। कमर में रस्सी, हाथ में हथकड़ी डाल घसीट ले गई।

आज सब कुछ याद है दत्ता को। दत्ता के उस खोल के अंदर राधी का वह रूप, दुःख और बापू की वह असहाय छवि आज भी याद है।

बापू को दस साल जेल भोगनी पड़ी, परंतु मां उन भूखे बच्चों को लेकर ज्यादा दिन तक रह न सकी। मूल के एवज में घर और जमीन साहूकार के पास चले गये। राधी को लेकर मां श्रीक्षेत्र चली गई। श्रीजगन्नाथ धाम में कोई भूखा नहीं रहता। सुखी से दुःखी तक सबको खाने को मिल जाता है। कोई भूखा नहीं रहता, यह था मां का विश्वास।

पेट की भूख तो है ही। इसके अलावा उम्र की भी एक भूख है। दत्ता अनुभव कर रही है। उस समय मां के ऊपर वह गुस्सा हो गई थी, खूब मान भी किया था। उसे अकेली छोड़ कर वह चली गई।

वह अब समझ रही है कि उसकी मां जगन्नाथजी के जिम्मे छोड़ कर कहाँ और किधर चली गई। जहाँ भी जाये, सुखी रहे। जगन्नाथजी के आगे यही प्रार्थना करती आ रही है।

बाईस पावछ पर नींद से उठ कर वह मां - मां कर बिलख रही थी। उस समय मुक्ता माहारी मंदिर की सेवा पूरी कर लौट रही थी। उसे गोद में ले लिया। मां को खोजा गया, परंतु उसका पता नहीं चला।

प्रभु जगन्नाथजी के बाईस पावछ से उसे उठा कर अपने साथ ले आई थी। उसे कालिया देवता का दान समझ उसका नाम रखा 'देवदत्ता'। नृत्य - संगीत की शिक्षा लेकर उसे देवदासी बनाने की अभिलाषा की थी, परंतु वह कठिन काम उससे न हो सका। ताल, लय, मात्रा आदि वह याद नहीं रख सकी। गाते समय वह स्वर भूल जाती थी।

उस समय मुक्ता सिर्फ अठारह साल की थी, तो भी, मां का त्याग और बड़ी बहन का स्नेह देकर उसे बड़ा किया था। उसकी शादी के बारे में सोच रही थी, किन्तु दत्ता ही नाराज हो गई। देवदासी तो नहीं हो सकी, लेकिन आप - सी देवदासी की दासी तो बन सकती हूँ। आपकी सेवा कर जगन्नाथजी की पत्नी महालक्ष्मी की सेवा का अनुभव करुंगी।

मुक्ता ने उसे समझाया, परंतु दत्ता अटल रही। वह विवाह नहीं करेगी। जब से राधी से वह 'देवदत्ता' बन गई, तब से जगन्नाथजी को समर्पित हो गई।

नृत्य कर वह देवदासी नहीं बन सकी, परंतु तुलसी और फूलों की माला गूँथ उसकी दासी बनने का गौरव तो पाया।

परंतु क्या हुआ उसका, अपने में वह छिपी रही। संयम व नीति - नियम के वशीभूत रह कर अपनी कामना को नियंत्रित किया था, परंतु आज वह बंदी जीवन से निकलने को प्रयासरत है। यह बात कैसे बता सकेगी मुक्ता माहारी को?

संगीत शिक्षक गुरुपद दास का बेटा है मालव। मुक्ता माहारी को संगीत सिखाते समय कभी - कभी गुरु आते नया सुर देने या हालचाल जानने के लिए। उनके साथ इकलौता बेटा मालव भी आता। वह दत्ता का समवयस्क है। गुरुजी द्वारा इधर - उधर संगीत चर्चा करते समय दत्ता और मालव दोनों खेल में डूब जाते।

शैशव और कैशोर्य के साथी मालव को जीवन साथी बनाने का संकल्प लेगी, कभी सपने में भी नहीं सोचा। अपने बंधुत्व को समय की बालुका पर ढूंढते समय उनको मिली थी एक दूसरे के प्रति आकर्षण की सीप। उसमें प्रेम का मोती!

भविष्य और नारी का मन, इन दोनों के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। देवदत्ता को लग रहा था 'मालव' को छोड़ जीना मुश्किल है, परंतु वह कुछ भी बोल नहीं सकी।

आठ साल की लड़की अठारह की हो जाने पर भी मालव के साथ मिलती रही।

मुक्ता ने कभी कोई संदेह नहीं किया। उसकी सरलता के बीच यह बंधुत्व कब प्रेम में परिणत हो गया, उसे भी नहीं मालूम। यह बात मुक्ता को कैसे बताये? इसी मानसिक द्वंद्व में दत्ता चौबीस साल की हो गई।

मालव उसे समझाता - 'देवदासी के परिवार में विवाह कोई नयी बात नहीं है। मुक्ता माहारी गुस्सा क्यों होगी? विवाह न होता तो समाज में मर्यादा ही नहीं होती। अतः देवदासियाँ पहले अपना वंश रखने के लिए पुत्रों को गोद लेकर विवाह करवाती रही हैं। कुलवधू को घर लाती। उनसे जो बच्चे होते, वे सब कला और संस्कृति का पृष्ठपोषण करते रहे हैं। पुत्र संतान नृत्यगुरु, संगीतगुरु, मादेली व पखावज - वंशीवादक के रूप में प्रतिष्ठा पाती थी। सारी लड़कियाँ तो नृत्य प्रवीणा और सुन्दरी नहीं होती। उनका भी आगे चल कर विवाह हो जाता देवदासियों के पुत्रों के साथ। मुक्ता स्वयं भी तो तुम्हारे विवाह के लिए राजी थीं।'

आश्चर्य के साथ दत्ता मालव की बात सुनती रही। बहुत जानता है वह। देवदासी परिवार में इतने दिन रहने पर भी इतनी बातें नहीं जान पायी दत्ता। जो भी हो, देवदासी का खून मालव की नस - नस में है। उसका व्यक्तित्व कुल प्रथा के अनुरूप है। नृत्यगुरु के रूप में प्रसिद्धि सिर्फ उत्कल में नहीं है। जगन्नाथजी के दर्शनों को लाखों यात्री आते। उनसे सारे भारतवर्ष में उसकी प्रशंसा है।

कभी - कभार दत्ता मान करती - तुम तो धनी लड़कियों को नृत्य शिक्षा दे रहे हो, तुम्हारा क्या भरोसा? कभी किसी के प्रेम में उलझ जाओगे। दत्ता का नाम भी याद नहीं रहेगा। मुझे तो नृत्य - संगीत कुछ नहीं आता, जिससे आप को बांध सकूंगी।

दत्ता को चिढ़ाने के लिए मालव झूठे ही गंभीर होकर कहता - "हाँ, आदमी का मन और भविष्य के ऊपर किसी का नियंत्रण नहीं। कब क्या होगा कौन कहे? हो सकता है, तुम्हें भूल जाऊँ। तुम्हें तो नृत्य नहीं आता, फिर आशा क्यों करती हो कि एक नृत्य कला प्रवीण आदमी को बांध सकोगी?"

उस समय दत्ता की आँखों में आँसू नहीं, मन और हृदय जैसे टूट जाते। वहाँ से उठ कर वह मानिनी सी चली जाती। पीछे - पीछे मालव 'दत्ता... दत्ता' कहते बुलाता रहा। वह कुछ दिनों मालव की कोई बात नहीं सुनती। मालव क्षमा मांगता, सच्चे प्रेम का विश्वास दिलाता और जगन्नाथजी की माला पकड़ कर शपथ लेता। इतने में भी दत्ता मानती नहीं तो कहता - 'दत्ता को न पाने पर वह अपने प्राण त्याग

देना।' मालव कहता - 'मानिनी का मान भंजन करने के लिए मुझे 'देहि पद पल्लव मुदारं' कहना पड़ेगा?' सचमुच दत्ता का पैर छू लेता।

दत्ता के होठों पर मुस्कान खिल उठती। सारा मान धो डालती। पैर पीछे हटा कर कहती - "धत्, पाप लगेगा मुझे।"

दयणा बुलाती है - "दत्ता दीदी, दीदी बुला रही है।" उसकी हिरणी की - सी आँखों में चंचलता छा जाती और दत्ता मालव से कहने लगी - "कल आओगे?" इसी तरह उनका प्रेम चलता रहा।

मालव जिद ठान रहा है कि उनके विवाह की बात दत्ता अगर नहीं कहेगी मुक्ता माहारी से, तो वह अपने पिता के जरिये कहलवायेगा। मालव उसे समझाता है कि जमींदारी समाप्ति के बाद माहरियों के लिए राजा का अनुदान काफी नहीं है। मंदिर से मिलती 'खेई' (मंदिर के महाप्रसाद में का अंश) से आदमी का जीना कठिन है।

इसलिए उसके पिताजी के हाथों से अनेक अलंकार बेंच कर अपना गुजारा करती है मुक्ता माहारी। सिर्फ मुक्ता ही क्यों? ज्यादातर माहारियों की हालत ऐसी ही है। इस अवस्था में दत्ता उन पर बोझ बन कर क्यों रहेगी?

देवदत्ता सोचती है कि मुक्ता माहारी क्या कहेंगी? दत्ता उनके सुख के दिनों में पास रहती थी और दुःख के दिनों में अकेले छोड़ कर चली जाएगी! अपने लोग तो सुख के दिनों की बजाय दुःख के दिनों में अधिक जरूरी होते हैं।

दत्ता इतनी स्वार्थी नहीं हो सकती।

परंतु मालव? मालव का गहरा प्रेम! दत्ता मालव से विवाह करेगी, यह बात सुन कर मुक्ता माहारी क्या सचमुच खिन्न हो जायेगी? दत्ता क्या उनकी सरलता से फायदा उठा रही है?

नहीं, उसकी दीदी इतनी संकीर्ण नहीं हो सकती। मुक्ता माहारी का मन आकाश की तरह विशाल है। वह कभी गलत नहीं सोचेगी। कहने के लिए साहस चाहिए। ठीक समय पर वह दूर भागती है। इसी में दिन बीत रहे हैं।

मुक्ता गुरुजी या मालव से सुनेगी तो मान करेगी कि इतनी - सी बात छुपायी गयी है उनसे। दत्ता को वह कभी दासी की दृष्टि से नहीं देखती बल्कि एक अंतरंग सखी या छोटी बहन की तरह रखती है।

उसकी आँखों में मुक्ता माहारी जगन्नाथजी से भी बढ़ कर है। आज वह साहस बटोर रही है भोजन के समय मालव के साथ अपने सम्पर्क की बात बताने के लिए। ठोकर खाकर वह लौट आयी है। दीदी इस तरह से क्यों बोल रही है? समझने की कोशिश नहीं की। वह सिर्फ अपना स्वार्थ देख रही है। यह सिर्फ अपने बारे में सोच रही है। दुनिया के सारे जीव - जगत में मानव ही सबसे अधिक स्वार्थी है।

दत्ता ने अपने को धिक्कारा। जिसने अपनी मां की तरह आत्मीयता देकर आँचल तले सुरक्षित रखा है, पृथ्वी के सारे दुःख - कष्ट और पाप की झंझा के बचा कर रखा है, उसे अपने स्वार्थ के लिए तुच्छ मान चली आयी। पश्चाताप के आँसू बह आये दत्ता के साँवले सुन्दर गालों पर। श्रीजगन्नाथजी की ओर हाथ जोड़ प्रणाम करते हुए कहा - ''प्रभु, मेरी दीदी के सारे दुःख, रोग और अशांति मुझे दे दो। उनके जीवन को निरापद और स्निग्ध बना दो।''

किशोरी माहारी चली गई। दत्ता रात के भोजन के लिए बुलाने गई है। दयणा सूचना दे गई है, फिर भी, मुक्ता पाषाणी अहल्या की तरह निर्वाक और निस्पंद बैठी है।

मां के बारे में किशोरी माहारी ने जो कुछ बताया है, वह सब क्या झूठ है? नरणगढ़ के इंद्रजीत भुईंमल एक बार मां के रूप पर मोहित होकर उसके प्रणय के प्रार्थी बन गये थे। आज उनके बेटे नरोत्तम भुईंमल इतिहास की पुनरावृत्ति करने जा रहे हैं!

तो राजा जमींदार के वंशानुक्रम में नीला रक्त बहने की जो जनश्रुति है, वह क्या एकदम सच है?

नरोत्तम भुईंमल अगर सोचते हैं कि बार - बार भेंट करके उनकी नृत्यशाला की सराहना करके, उपहार देकर, वाकूपटुता से हृदय को जय करने का प्रयत्न कर रहे होंगे, तो ये सब गलत है। सारी माया, मोह, जागतिक प्रेम आदि सबसे ऊँचे हैं प्रेममय देवता श्रीजगन्नाथजी। वह तो उनके प्रेम में बंधी है ; जन्म से मृत्यु तक। विश्व मैत्री के देवता जगन्नाथ उसे सिखा रहे हैं जाति, धर्म, वर्ण, देश-विदेश की संकीर्ण भाव धारा से निकल कर सारे मानव समाज को प्रेम करना, सम्मान देना। जिस देवता के प्रिय भक्त सालवेग हैं। जिसके लिए जगन्नाथजी का रथ नहीं चल सका, उन इच्छामय की इच्छा से हर काम चलता रहता है। उनकी इच्छा से उनकी बनायी पृथ्वी को, जीव

जगत को, सारे मानव समाज को प्रेम किया है। प्रेम के लिए तो मानव जिंदा है। जीवन को अर्थमय बना देता है।

उसका निष्काम प्रेम कला और कलाकार के लिए श्रद्धा व्यक्त करना है - सारे कामों को नरोत्तम भुईंमल अगर 'प्रेम' कहेंगे तो मुक्ता उसके भ्रम को सुधार देगी। वह ऐसी शिक्षा देगी कि जीवन भर याद रखेंगे।

समझ सकेंगे कि नारी कभी अबला नहीं थी, आज भी नहीं है। बिना आश्रय कविता, बनिता और लता बच सकती है। उनके परम और चरम आश्रय वही पतितपावन हैं। साधारण मानव नहीं।'

मुक्ता खुले आकाश की ओर ताकती रही। असंख्य तारों के बीच मां की आत्मा भी तारा बन गई होगी। उस नीलचक्र की ओर देखते समय मुक्ता की आँखें क्या देख रही होंगी?

मुक्ता अनमनी हो गई। मां, इंद्रजीत भुईंमल, नरोत्तम भुईंमल और प्रभु जगन्नाथजी सब मिल कर एक गोरखधंधा बन गये।

मां ने तब इंद्रजीत भुईंमल से विवाह क्यों नहीं किया? जगन्नाथजी की सेवा से वंचित हो जाने के भय से? इंद्रजीत भुईंमल अपनी रक्षिता बना कर रखना चाह रहे थे?

देवदासियों के जीवन में जगन्नाथजी के अलावा और कोई नहीं आएगा, यह तो कोई कसम खाकर नहीं कह सकता। दुर्बलता और चारित्रिक शुद्धता, उनकी जीवन - मुद्रा के दो पार्श्व हैं। फिर भी आदमी दुर्बलता को जय कर चिरंतन और शुद्ध जीवन बिताने की ओर बढ़ रहा है। आँधी के बाद शांत पृथ्वी की तरह, दुर्बलता के बाद शुद्ध जीवन बिताना वैसे भी सुन्दर और पवित्र है।

अगर किसी क्षण इंद्रजीत भुईंमल ने मां के मन की निषिद्ध कोठरी के द्वार खोले हैं तो इसमें मां का क्या दोष?

मां को लेकर यह सब सोचना ठीक नहीं।

वह स्वयं को धिक्कारने लगी। मां को देखा है - जगन्नाथजी का कीर्तन करते वक्त वाह्य जगत को भूल जाती थी। अश्रु से भरपूर वह जो भक्ति संगीत गाती, वह किसी भक्त कवि - जयदेव, सालबेग, दीनकृष्ण या अच्युतानंद का नहीं होता - स्वतः प्रवाहित होता है।

वे भक्ति गीत मां लिख कर रखती थीं। अचानक मुक्ता के विचारों में यह बात आई कि उनकी सारी कविताओं का प्रकाशन करती तो कैसा होता! मां के लिए कुछ किया है, इससे आत्मा को संतोष मिलता!

मुक्ता कोठरी में आ कर खोजने लगी पाण्डुलिपियों को। अस्त - व्यस्त लिखी, अधलिखी पंक्तियों के कागजों का स्तूप लेकर ढूंढती रही। तभी एक खाता मिल गया।

आशा बांध कर वह पन्ने पलटने लगी। महाराज से वह निवेदन करेगी - इस पाण्डुलिपि का प्रकाशन करा दीजिए। एक साधारण नारी के लिए यह संभव नहीं। राजा - जमींदार की कृपा के बिना कठिन है ये सब! परंतु यह तो स्याही से लिखी किसी कवि की कविता नहीं? यह तो आँसू और रक्त से लिखी आत्म - जीवनी है। काँपते हृदय और हाथ से पृष्ठ पलटती चली गयी।

- ''श्रीजगन्नाथजी की इच्छा क्या है, मालूम नहीं! खुद को समझा रही थी कि ये सब सोचना भी अपराध है, फिर भी यह मन मानता नहीं। काया, मन और वचन से मैं जगन्नाथजी को समर्पित हूँ। उनकी इच्छा, उनकी आशा-आकांक्षा सब कुछ उनके लिए ही है, इसे मैं कभी अस्वीकार नहीं कर सकती। उनकी सेवा के लिए दीक्षा ली है। पालन में कभी हिचहिचकायी नहीं। उनके लिए ही मेरा जीवन - पद्म खिला है। यह बात जानते हुए भी पद्मगंध में दूसरा कोई व्यक्ति आकृष्ट हो गया, इसका मैं क्या करुँ? खिलना तो फूल का धर्म है, परंतु उसकी सुरभि से तो दस आदमी आकृष्ट हो जाएँ, यह उसकी गलती नहीं है। दोष तो भौंरे का है। वह जानता है कि देवताओं के लिए फूल है, फिर भी लोभी दृष्टि से क्यों उसे बिद्ध करता है?

परंतु भौंरा कहता है - ''दोष फूल का है। ठाकुरजी तो तुलसी में भरपूर हैं। उनके लिए फूल खिलने की आवश्यकता ही क्या? अगर खिला तो इतने रूप और उसकी महक से भौंरे को अंधा बनाने की आवश्यकता क्या है?''

जमींदार इंद्रजीत की युक्ति के सामने वह हार जाती है, परंतु आत्मसमर्पण नहीं किया। जीवन के दुर्बल क्षणों में भी वह भूल नहीं पाती कि प्रेममय, इच्छामय, लीलामय प्रभु के लिए वह समर्पित है। उनका तर्क है कि श्रीकृष्ण को सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करने पर भी राधा चंद्रसेन की पत्नी थी। अद्‌भुत : मैं प्रतिवाद करती। चन्द्रसेन की पत्नी श्रीकृष्ण की प्रेमिका बनी, परंतु श्रीकृष्ण की प्रेमिका चंद्रसेन की पत्नी नहीं हुई। मैं देवदासी हूँ, प्रभु मेरे लिए श्रीकृष्ण और चंद्रसेन दोनों हैं। वे मेरे स्वामी हैं। सारे सुख

- दुःख उनके लिए हैं, परंतु वह इस युक्ति को मानती नहीं। जयदेव और पद्मावती की कहानी कहते हैं। श्रीजगन्नाथजी को समर्पिता पद्मावती को उनके पिता वासुदेव बड़े पंडा के पास छोड़ गये थे।

पद्मावती प्रियतम जगन्नाथजी के लिए मंदिर में नृत्य कर रही थी। उसने भी तो जयदेव से विवाह किया! उनको मंदिर से निकाला नहीं गया। जगन्नाथजी की समर्पिता, जयदेव की पत्नी, अगर मंदिर में नाच सकती है तो दूसरी देवदासी क्यों डर जाती हैं?

मैं निर्वाक हो जाती हूँ। किस भाषा में समझाऊँ कि जयदेव जगन्नाथजी की अभिन्न आत्मा हैं। युग - युग में यही हुआ कि भक्तों के प्रेम में भगवान बंधे हैं। द्वापर युग में श्रीकृष्ण और अर्जुन एक आत्मा दो भाग हो गये। द्वारका के अतिथि अर्जुन को लक्ष्मी भी भिन्न नहीं मानती थी। 'कृष्णार्जुन' दोनों के दो नीलपद्म - से पाद जांघ पर रख कर सेवा करने की कथा पुराण में है। जगन्नाथजी ने बड़ापंडा को स्वप्नादेश दिया था कि 'पद्मावती' का विवाह मेरे भक्त जयदेव से ही करवाये। पद्मावती श्रीराधा का रूप लेगी और जयदेव स्वयं गीतगोविन्द की रचना करेंगे। जयदेव और कोई नहीं मेरे दारु विग्रह के मानवी रूप हैं। मेरी भाषा छिप जाती है। इंद्रजीत जयदेव नहीं हैं, यह मैं कैसे बता सकती। सत्य का चिरंतन मूल्य है, वह मानव को पता है। सत्य को अपनाने में दुःख है, वेदना है।

राजा निर्मम होते हैं। इसके साथ - साथ प्रेम भी, परंतु प्रेम करने वाले आदमी अंधे के साथ बहरे भी हो जाते हैं। अतः पद्मावती और जयदेव, जगन्नाथजी और पद्मावती एक दूसरे से अभिन्न हैं। ये सारी बातें इंद्रजीत भुईंमल सुन कर क्या विश्वास करते? ये बात समझाना भी बेकार है, इसलिए मैं चुप रह गई।

यह मां की आत्मलिपि नहीं आत्मदर्शन है। मुक्ता की आँखों के सामने मानो दूसरे लोक का दृश्य दिखा रहा है कोई जादूगर।

यह तो अन्याय है। मां का निषिद्ध अतीत जानना बेटी के लिए अनुचित है। पीड़ादायक भी, परंतु मुक्ता माहारी मां की आत्मलिपि के पृष्ठ बंद नहीं कर पाती। आग्रह, उत्कंठा और कौतूहल नहीं, उसके भीतर एक झिझक बोल रही है - "मुक्ता माहारी, यह आत्मलिपि सिर्फ इंद्रमाहारी की नहीं, सारी माहारी जाति का इतिहास है। जीवन दर्शन और मनोविज्ञान है। उसे अपना कर अपने जीने का पाथेय ढूंढ लो।"

मुक्ता मन ही मन गुनगुनाती रही। मेरे जीने का पथ और पाथेय स्वयं जगन्नाथजी हैं। वे मेरे प्रेमी हैं, स्वामी और संतान हैं। उनके चकाडोला (विशाल नेत्र) में असीम व्याप्ति के अंदर मेरी सीमित दुनिया के सारे सुख छिपे हैं। मुक्ता लंबी सांस लेकर मां की आत्मलिपि देखने लगी।

- प्रभु यह कैसी परीक्षा मेरे लिए! मेरा सारा प्रेम और प्रणय आप पर न्यौछावर है। फिर और बचा ही क्या है जो पार्थिक मानव प्रेम के लिए व्याकुल होऊँगी? सब कुछ झूठ है, माया है। इंद्रजीत भुईंमल के प्रति कोई प्रेम, आसक्ति नहीं। मैंने अपने को दृढ़ बना लिया। अब अगर भुईंमल आएँगे तो सदा के लिए अपना द्वार बंद कर दूंगी। यह किसी गणिका या नाचने वाली का कोठा नहीं है। यह देवदासी इंदु माहारी का घर है। यह बात साफ - साफ सुना देगी, परंतु यह क्या हुआ मुझे?

इंद्रजीत मेरे मन की बात जानने आये ही नहीं। मुझे खुश होना चाहिए था कि मेरे निठुर हो जाने से पहले वे स्वतः दूर हो गये हैं। मेरे चरित्र की विशेषता हो या दुर्बलता कि मैं किसी को आघात नहीं दे सकती। प्रतिघात तक नहीं कर सकती। अच्छा हुआ कि जगन्नाथजी ने इस परिस्थिति से बचा लिया है। मैं ज्यादा देर तक चुप न रह सकी? घबराहट बढ़ती गई। भुईंमल क्यों नहीं आये? क्या असुविधा हुई। अस्वस्थ हैं? खबर तो दे सकते थे। उनकी प्रतीक्षा में सारे दिन और शाम कट जाते थे। मंगल आरती के समय नाचते समय आँखें चली जाती थीं भक्तों के ऊपर। बड़सिंहार आरती के वक्त नाचते समय पांव थम जाते थे। जगन्नाथजी के अधरों पर भी मुस्कान मुरझायी - सी लगती। क्लांत और उदास सी।

मन ही मन विष्णुसहस्र नाम आवृत्ति करती। गंगा स्तोत्र पढ़ती। जगन्नाथजी से व्याकुल निवेदन करती - 'हे प्रभु मेरा अपराध क्षमा करेंगे। मुझे अमृतमय जीवन का प्रकाश दें। पाप - ताप से मुझे बचा लीजिए।' प्रार्थना के बाद चारों तरफ शांति छा जाती। फिर वही चिंता - इंद्रजीत भुईंमल के बारे में कई बातें सुनती हूँ। उनकी धमनियों में जमींदारों का खून बहता है। बहुरानी लिप्सा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आ रही है। जमींदारी का जीवन दर्शन है - "बहुनारी भोग ही पुरुषार्थ है।"

परंतु इंद्रजीत के चरित्र में, व्यवहार में, बातचीत में ये सब बिलकुल नहीं देखा। उनमें कला के पुजारी का व्यक्तित्व झलकता है। यही उनकी विशेषता है।

यदि चरित्रस्खलन जमींदारों के वंश में किसी में है, तो सारा दोष उनकी संतान का नहीं है। जिस वंश में पिता, अत्याचारी, अहंकारी और बहुनारियों के भर्ता बनने का गर्व करते हैं, माताएँ स्वामी के सुख से मुक्त होकर धर्म चर्चा और अतिथि सत्कार में ध्यान देती हैं। उस अटूट परिवार के बच्चों में तीसरा पथ चुनना स्वाभाविक है क्योंकि उन पर न कोई दायित्व है, न चिंता, अच्छा - बुरा समझने के लिए उनके पास कोई व्यक्तित्व नहीं होता।

इंद्रजीत भुईंमल के लिए ये सब संभव हो सकता था, परंतु विश्वास नहीं आता। आदमी अपने लोगों के बारे में उदार बन जाता है। बेचैनी और अस्थिरता के बीच एक सप्ताह कट गया। एक दिन भुईंमल आ गये। उस दिन मंदिर में नृत्य सेवा नहीं थी। संगीत का अभ्यास खत्म होने के बाद देखा कि बरामदे में वहीं पर बैठे हैं इंद्रजीत भुईंमल। उनकी आँखें और तन्मय भाव से पता चला कि देर से वे रियाज सुन रहे हैं। वे कहा करते थे नृत्य से संगीत उन्हें ज्यादा अच्छा लगता है। वहीं खड़ी रह गई। मेरे शांत जीवन में कंपन पैदा करने वाला आदमी यह है। मैं कर रही थी इसकी प्रतीक्षा। किसी योगभ्रष्ट अभिशप्त किन्नरी की तरह अशांत और उद्वेलित हो कर। इस समय मान में मैं रो भी न सकी। अनजान की तरह वहीं खड़ी रही।

मुंदी आँखें खोल कर थोड़ी देर वे मेरी ओर देखते रहे। आकाश की नीलिमा में दृष्टि गड़ा कर बोले - "बैठो यहाँ... मुझे बहुत कुछ कहना है। बहुत कुछ", यह बात सुनते ही मेरे अंदर गुदगुदाहट भर गई। इसी का नाम प्रेम है?

नहीं, मैं जगन्नाथजी के प्रेम में बंध गई हूँ, परंतु प्रभु के पास सम्पूर्ण आत्मसमर्पण के बाद भी जो इंद्रियातीत-देहातीत स्वर्गिक भाव - शरीर, मन और आत्मा को मोहित कर देता है, यह इससे एकदम अलग है।

तब इस 'भाव' की परिभाषा क्या है? इसका आकार क्या है? दुविधा में भरी मैं बरामदे के कोने में सिकुड़ कर बैठ गई। भाषाहीन समय का क्षितिज, फिर भी भावमय। इस तरह हमारे परिचय के तीन साल बीत गये हैं। बीच - बीच में इंद्रजीत आते हैं। कभी - कभार वीणा के साथ, हारमोनियम के साथ गाते समय वे सुन कर चले जाते हैं।

उनके पधारने से जाने तक मेरा घर खुला रहता है। 'साहिनायक' की संदेही दृष्टि बीच - बीच में सतर्क हो जाती, साधना कक्ष की ओर।

फिर भी, उन्होंने कभी नहीं कहा, फिर आज क्या कहेंगे वे?

तब मेरे भीतर अभिसारिका नायिका का भय और उत्कंठा जाग उठी थी। प्रतीक्षा कर रही थी कि भुईंमल क्या कहेंगे।

आँखें झुका कर बोले - "पिताजी ने मेरा विवाह पक्का कर दिया है।" हृदय में एक धड़कन पैदा हो गई। फिर भी संभल गई। हँसते हुए कहा - "यह तो बहुत खुशी की बात है। बधाई हो! वह सौभाग्यशाली नारी कौन है?"

खिन्न होकर भुईंमल बोले - "इंदु, यह हँसने की बात नहीं। मेरी इच्छा की विरुद्ध तय हुआ है।" सरल ढ़ंग से पूछा - "आपने अपने पिताजी से अपनी चुनी हुई लड़की के बारे में बताया नहीं होगा।"

"हाँ इंदु, साहस बटोर कर जब मैं मन की बात कहने लगा तो पिताजी एकदम नाराज हो गये। यह भी नहीं सुना कि उनकी पसंद की लड़की से विवाह न करूँ तो वे मुझे त्याज्य पुत्र बना देंगे। पिताजी की जमींदारी खोकर मैं जी सकता हूँ, परंतु मेरी पसंद की लड़की से विवाह न हुआ तो मैं मर जाऊंगा, इंदु!"

मैंने पूछा - "आप के लिए मैं क्या कर सकती हूँ? मुझ से अगर संभव हुआ तो मैं जरूर करूँगी, आज्ञा दीजिए।"

दृढ़ स्वर से कहा - "तुम से विवाह करना चाहता हूँ इंदु! मेरे उच्छृंखल जीवन को तुम्हारा संगीत और सुन्दरता ही बांध कर रख सकती है। तुम देवदासी का जीवन भूल कर मेरे साथ संसार बसा सकोगी? तुम नहीं मिलोगी तो मेरा जीवन नरक बन जायेगा। चलो, हम श्रीक्षेत्र छोड़ कर कहीं और चले जायें। जहाँ तुम्हारा परिचय इंदु माहारी और मेरा परिचय नरणगढ़ जमींदार का उत्तराधिकारी न हो। मैं तुम्हारा पति और तुम मेरी पत्नी, बस! इतना ही परिचय रहेगा हमारा।"

गहरे भावावेग में आकर मेरे दोनों हाथ पकड़ कर ताकते रह गये समर्पित भाव में। उत्तर देने के लिए मेरा गला एकदम अवाक रह गया।

मेरे अंदर कंपन हो रही थी। पैरों के नीचे से जैसे धरती खिसकती जा रही है। मेरी आँखों में आँसू उतर आये। सारे शरीर में अद्भुत रोमांच भर रहा था।

इंद्रजीत भुईंमल से मुक्त होकर तनिक दूर हट गई। आँसू भरे स्वर में कहने लगी - "आप जानते हैं, मैं भगवान जगन्नाथजी की सेवादासी हूँ। संसार बसाने का मतलब जगन्नाथजी को धोखा देना है। मेरे धोखे की सजा है विधवा होना!"

"देवदासियों का साधारण मानव से विवाह करने का मतलब है अकाल मृत्यु या असाध्य रोग से पीड़ित होना। आप की इतनी हानि नहीं कर सकती हूँ - आप

के स्वस्थ दीर्घ जीवन के लिए मैं प्रभु जगन्नाथजी से प्रार्थना करती हूँ। देवदासियों के लिए विवाह करना तो दूर, उसकी कल्पना भी पाप समझा जाता है। आप ऐसी बात न कहें। अगर पिताजी द्वारा चुनी गई लड़की के साथ शादी करेंगे तो मैं ज्यादा प्रसन्न होऊँगी। प्रभु जगन्नाथजी आप को सुखी रखें, यही मेरी प्रार्थना है।''

इंद्रजीत भुईंमल कठोर दृष्टि से मेरी तरफ देखते लगे - 'यह तुम्हारे हृदय की बात है या तुम धर्म से डर कर ऐसा बोल रही हो? सचमुच अगर तुम देह, मन और आत्मा के साथ जगन्नाथजी से प्यार करती तो मेरे लिए स्नेह और अनुराग नहीं होता। तुम हाड़ - मांस की नारी हो। नारी जन्म की सार्थकता संसार में मां बनने में है। तुम भी एक नारी हो, देवदासी भी वही नारी है, यह क्यों भूल जाती हो?''

राजा-महाराजाओं की तरह समाज के मठाधीशों ने इस तरह की प्रथाएँ पैदा की हैं, अपने को बड़ा बनाने के लिए, अपने पीछे मर्यादा को उज्जवल रखने के लिए, एक और संप्रदाय को अंधेरे में ढकेल देने के लिए मानव की कोशिश है।

देवदासियाँ विवाह नहीं कर सकेंगी, इस जघन्य प्रथा के नियामक भी हैं वही लोग। प्रभु जगन्नाथजी की नामावली आप के ऊपर थोप दी गई है, इसका मतलब यह नहीं कि आप मानव से देवी बन गई हो। यह सोचना भी गलत है। आप मानवी हैं इंदु! कामना - वासना, आशा - आकांक्षा सब को लेकर आप एक साधारण नारी हो। यह बात अस्वीकार कर सकती हो? क्या यह बात झुठला सकती हो कि मेरे ऊपर आप की प्रीति और आसक्ति नहीं हैं? पहले मैं आप के संगीत से आकृष्ट हो गया था। आज मुझे पता चला कि आप वह नारी हैं, जिन्हें मैं ढूँढ रहा था अनेक स्त्रियों के भीतर। मैंने क्या गलती की है?

मैं दोनों कानों पर हाथ रख कर कहने लगी - ''ऐसी बात मत पूछिए। भुईंमलजी मत पूछिए। मैं इसका उत्तर देने में असमर्थ हूँ। जगन्नाथजी की नृत्य सेवा के सिवा मैं कुछ नहीं। मैं सिर्फ इतना ही जानती हूँ और कुछ नहीं। कृपया आप यहाँ से चले जाइये और यहाँ कभी मत पधारें।''

अन्य राजाओं की तरह बहुपत्नी की आशा करने वाले कामुक व्यक्ति होते, तो वे अपनी इच्छा पूरी कर सकते थे। माहारी जाति की परंपरा को बहुतों ने ठेस पहुँचायी है। राजा, जमींदार और पंडे आदि विवाह करते या रक्षिता बना कर उपभोग करके छोड़ देते थे। इन लोगों ने कभी नहीं सोचा कि माहारी जगन्नाथजी की पूजा का फूल है।

परंतु इंद्रजीत भुईंमल सबसे न्यारे थे। मेरी बातों ने उन्हें ठेस पहुँचायी परंतु वे चुप रह गये। उनके चले जाने के बाद मैं बिलख - बिलख कर रोती रही। मैं शरबिद्ध कपोत की तरह छटपटाती रही।

हो सकता है कि इसी का दूसरा नाम परकीया प्रेम है! एक की परिणीता दूसरे की प्रणयिनी है। इन दो नावों में एक साथ चलना कितन मुश्किल है!

सूर्य की उज्ज्वलता और चांद की चांदनी दोनों की जरूरत है मेरे लिए, मेरे जीवन में। परंतु दोनों को एक साथ संजो कर रखना कितना मुश्किल है, यह कोई समझ नहीं सकता। समझा भी नहीं सकता। स्वामी जगन्नाथजी के पैरों के नीचे याचना करते हुए सारी रात बीत गई।

धर्मग्रंथ अध्ययन, नृत्यसेवा और प्रभु के लिए व्याकुल आवेदन से मैं अपने को दृढ़ बना रही थी। इसी बीच, भुईंमल जी के विवाह का निमंत्रण पत्र आ गया।

मेरे मन में ग्लानि, दुःख, ईर्ष्या कुछ भी नहीं। मानव के मन में इस तरह समाधिस्थ अवस्था शायद आ जाती है। सचमुच जगन्नाथजी ने मेरे मन के सारे दुःख को धो डाला था। मां को बताया था - "मां, मैं इंद्रजीत की वधू को जरा देखने जाऊँगी।" उत्तर में उसने भी 'हाँ' की थी।

विवाह के बाद सप्तमंगला के दिन मैं शिविका के उतर का अंतःपुर में गई। इंद्रजीत भुईंमल राह दिखाते आगे - आगे चल रहे थे। बहुत सारी उत्सुकी आँखें देख रही थीं। नारियों के बीच हलचल मच गयी - यही तो वह है! कोई कह रही थी - छोटे जमींदार इंदु माहारी की कोठी में पड़े रहते थे। मां के पुण्य - फल से ही विवाह करने को राजी हो गये, नहीं तो सब कुछ चौपट हो जाता। यह फिर यहाँ क्यों आई?"

इंद्रजीत की मां ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा - "मैंने इंद्र से तुम्हारे बारे में सब कुछ सुना है। आज देख कर सोच रही हूँ... उसने कुछ भी नहीं कहा। जो कुछ भी कहा था, तुस उससे कहीं अधिक अच्छी हो!"

उस ममतामयी, क्षमाशीला, स्नेहमयी मां को देख कर मेरा हृदय भर आया। कई कमरे पार कर ले चली नववधू के कमरे में। हाथी दांत के पलंग पर मखमली गद्दे पर अष्ट रत्न अलंकारों से सजी अवगुण्ठनवती नववधू! हलदियागढ़ के सामंत राजा की बेटी है। सचमुच सौंदर्य की स्फुलिंग है! इंद्रजीत भुईंमल को आंचल में बांधने

का रूप है इसमें। इंद्रजीत की मां के निर्देश के मुताबित नववधू को घेरे दासी, परिवारी और कुटुंब की नारियाँ वहाँ से चली गई।

मेरे साथ उपहार लेकर गई दासी ने वह उपढौकन वहीं रख दिया। मां ने कहा - "बहू, तुम्हें देखते के लिए पुरी से आई है देवदासी इंदु माहारी!"

मैंने उनका अवगुण्ठन खोल कर देखा, स्तब्ध रह गई! इतना रूप सौंदर्य! क्या एक साधारण नारी के लिए संभव है? इंद्रजीत सचमुच सौभाग्यशाली हैं! नववूध ने एक बार मुझे देख कर सिर नीचा कर लिया।

मुग्ध स्वर में कहा - "ठकुराइन, यह बहू नहीं, लक्ष्मी घर में आयी है! जगन्नाथजी इनको सुखी रखें!"

अचानक झनझनाहट की आवाज आई। मेरे दिये उपहार को ठुकरा दिया। अलंकार चारों ओर बिखर गये हैं। उसके चेहरे पर कठोर दृष्टि और मुख भंगिमा, निखर उठती घृणा और अवज्ञा की मुद्रा। चारों तरफ बिखरे थे नवरत्न हार, मथामणि, कर्णफूल और कंकण!

ठकुराइन स्तब्ध खड़ी रही। इस तरह की घटना के लिए वे प्रस्तुत न थीं।

परिस्थिति को संभालने के लिए मैं शीघ्र दासी के साथ आकर शिविका में बैठ गई। शिविका चल पड़ी। पीछे इंद्रजीत की निरुपाय जिज्ञासा अस्पष्ट दिख रही थी। शिविका के भीतर मेरा असहाय नारीत्व और व्यक्तित्व चूर - चूर हो गया था। नरणगढ़ से रणपुर, फिर टांगी होकर बरुणेई पहाड़ के नीचे से शिविका चली जा रही थी जटणी - पिपली की सड़क पर। गरमी की दोपहर! छायाहीन जलहीन रास्ते पर चल रही थी। मेरे सूखे जीवन के साथ यह सब कितना मिलता है! मेरे भीतर की लांछना के ताप से यह ताप कितना कम है! भोई (शिविका वाहक) के शब्द ध्वनि के साथ पता नहीं कब साक्षीगोपाल आकर पहुँच गया। मुझे कुछ पता ही नहीं चला। दासी की बात से मैं चौक गई - "दीदी, साक्षीगोपाल आ गया, राधा माधव के दर्शन नहीं करोगी?"

तीन साल पहले आंवला नवमी को आई थी। राधाराणी का पाद दर्शन करके सारे पाप से मुक्ति पाने के लिए। पाप - ताप से मुक्ति कहाँ? सांसारिक बंधन से मुक्ति कहाँ? जगन्नाथ प्रेम में भरपूर जीवन में कहीं एक जगह खाली रह गई थी। इंद्रजीत के लिए प्रेम-निमंत्रण से भर गया मन।

दासी को उत्तर दिया - "नहीं, दर्शनों की जरूरत नहीं।" शिविका आगे बढ़ गई थी। केवड़े के कांटेदार पत्तों की तरह मेरे मन में भी कंटीला रक्त झरता प्रश्न - "सचमुच मैंने गलती की है?"

मां की आत्मकथा पढ़ मुक्ता रो पड़ी। व्यथा और संवेदना से हिल उठी थी। नीलाद्रि बिहारी की पत्नी होकर भी वह कितनी लाचार और दुःखी प्रेमिका थी!

प्रभु को धोखा देने का दण्ड और क्या हो सकता है? मुक्ता माहारी सांस ले रही थी। नपी - तुली जिन्दगी से जरा इधर - उधर हो जाने का दण्ड कैसा होता है! पर सांसारिक बंधन में रहने वाली नारियाँ क्या गलती नहीं करती? माहारियों की जिन्दगी का अलिखित इतिहास! जनश्रुति और लोककथा से चली आ रही है पीढ़ी दर पीढ़ी। दुःख और आँसू से भरपूर है उनका जीवन।

नानी और मां से कुछ सुना है मुक्ता ने। सुनी बातों में कितना झूठ - सच या काल्पनिक है, उसने नहीं देखा। बहुत दिनों की बात है, नानी कह रही थी। एक बार कोई एक देवदासी बड़सिंहार के समय नाचते - नाचते अनमनी हो गई। राजगुरु की दृष्टि से ओझल होना आसान नहीं है। शयन ठाकुर के लिए शृंगार नृत्य प्रस्तुत करते समय आँख जाकर छत्रधारी से जा लड़ी। वह सेवक ठाकुर जी के पास छत्र लेकर खड़ा है। आँख मिली और ताल, लय और मुद्रा में गलती हो गई।

राजगुरु की घंटी झनझना उठी।

पर्दा गिरा हुआ है। मंदिर के चारों पीढ़, गर्भगृह, नाट्यशाला, भोगमंडप और मुखशाला। चारों तरफ बत्तियाँ बुझा दी गई थी। सारे सेवक बाहर आ चुके थे। नृत्य खत्म होने के बाद 'छामु दुआर', जय-विजय द्वार बंद कर ताला लगाने के बीच मुदुली और वहाँ मिट्टी की मुह देने की तलिछु महापात्र प्रतीक्षा कर रहे थे।

रत्न सिंहासन पर महाप्रभु, खटोले पर शयन ठाकुर तथा नीचे देवदासी के अलावा और कोई नहीं है। अधमुंदे धोकड़ी द्वार के पास राजगुरु खड़े हैं। प्रभु के नेत्र मूंदते समय देवदासियों के पैर धीरे - धीरे शिथिल होते जा रहे हैं। ठाकुर जी के सो जाने के बाद देवदासी को बाहर आ जाना चाहिए। थोड़े ही समय में जगत के नाथ सो जाने वाले हैं। मंद मुस्कान छा गई है।

अचानक एक चीख निकली। मंदिर के शांत वातावरण को हिला दिया। प्रदीप माला जल उठी। सेवक गर्भ गृह के भीतर घुसे। एक बड़े साँप ने लपेट लिया था।

साँप ने दोनों स्तनों के बीच की जगह को डस लिया है! देवदासी छटपटा रही थी।

सारे सेवक डर गये। देवदासी जरूर योगभ्रष्ट हो गई है! मानसिक शुद्धि खोने का फल मिला है! फिर भी सेवकों की आँखें भर आयीं। अपराधी को स्वयं भगवान दण्ड दे देते हैं! उसकी कौन रक्षा कर सकता है?

साँप की फूंकार से गर्भगृह हिल उठा। अनिंद्य सुंदरी देवदासी का शरीर साँप के विष से नीला हो गया। आँखें जगन्नाथजी पर हैं, राजगुरु गर्भ गृह के अंदर स्वर्ण दण्ड लिए आ गये। बेंत उठाते ही साँप का फन दब गया। 'जय श्रीजगन्नाथजी' कह अद्‌भुत साहस से साँप का फन मुट्‌ठी में कर लिया। जल्दी ही वहाँ से देवदासी को हटाने के लिए सेवकों को आदेश दिया। मरे साँप को फेंकने के लिए कह कर वे बाहर चले आये।

सेवक उसे मंदिर से बाहर लाये, तब तक गरुड़स्तंभ के पास निस्पंद हो गई थी। तलिछु महापात्र ने कहा - 'जल्दी - जल्दी बाहर ले जाओ, कोशिश करने पर शायद बच जाय।'

देवदासी बच न सकी। अपराध का दण्ड श्रीजगन्नाथजी ने दे दिया। किसी ने कहा - ''राजगुरु का इसमें हाथ है। पापिनियों का दण्ड विधान राजगुरु इसी तरह करते हैं। नानी बता रही थी कि उसी नैष्ठिक ब्राह्मण, शुद्ध चरित्र वाले राजगुरु के अंतिम दिन कटे थे फूल माहारी की कोठी में। वहीं उन्हें नारायण प्राप्ति हुई थी।''

फूल माहारी श्रीजगन्नाथजी को धोखा देने के अपराध में दंडित हुई। उसे नृत्य सेवा से वंचित कर दिया गया। उसकी खेई और जमीन छुड़ा दी गई। इस राजगुरु ने ही भीतरछु महापात्र की ओर फूल माहार के प्रेमासक्त होने की बात को लेकर राजदरबार में फरियाद की थी। बाद में देखने वालों का कहना है कि फूल माहारी की कोठी में अगर राजगुरु नहीं पधारते, तो फूल माहारी की दशा पंख कटे पक्षी की तरह हो जाती।

अंतिम समय में जब उन्हें कोढ़ हो गया तो उनके माता - पिता, पत्नी और पुत्र - पुत्री सब ने उन्हें त्याग दिया था, परंतु फूल माहारी ने उन्हें आदर के साथ अपना लिया था। फूल, चंदन, तुलसी की सुगंध से परिचित रहने वाली फूल माहारी बदबूदार घावों को साफ कर के मरहम पट्‌टी कर देती थी। ये सब जनश्रुति हैं, उसमें कितना सच और कितना झूठ, जानना मुश्किल है।

उसके बाद वाली देवदासियाँ एकाग्रचित्त जगन्नाथजी की नृत्य सेवा किया करती थीं। भय और भक्ति ने उनको अपने बारे में सोचने का अधिकार नहीं दिया।

उस घटना के बाद गर्भगृह में कभी देवदासी नृत्य नहीं हुआ। शयन ठाकुर आकर जय विजय के द्वार पर स्थित श्याम डंबरु के ऊपर विराजमान होते। पखावज की ताल के साथ देवदासियाँ वहीं शृंगार मुद्रा में नृत्य करतीं। यदि नृत्य में गलती होती, उन्हें आर्थिक दंड भोगना पड़ता। जगन्नाथजी के 'खेई' (मंदिर में मिलने वाला नियमित प्रसाद) बंद हो जाता। यह मुक्ता की आँखों देखी बात है।

किसी से प्रणयासक्त हो गईं तो बात खत्म। राजगुरु, महाराज और मंदिर परिचालकों के कान में बात जाती तो देवदासियों को मंदिर की सेवा से वंचित किया जाता। कभी किसी को श्रीक्षेत्र से निकाल दिया जाता था। उसके बाद वह किस तरह से जिन्दगी बिताएगी, उसकी फिकर कोई नहीं करता। जीवन का संयम, तापसी - निष्ठा और जगन्नाथजी पर अटूट विश्वास व भक्ति सब कुछ एक पल की दुर्बलता से मिट्टी में मिल जाता।

देवदासियों का अतीत रहस्यावृत्त और भविष्य अनिश्चित है। वर्तमान ही उनके लिए सब कुछ है। ईश्वर - विश्वास और कलानुराग युगों से समाज में जीने का अवलंब रहा है। कला, संस्कृति, त्याग, निष्ठा, परंपरा आदि सब ज्ञानकोश के शब्द भंडार बन जाते देवदासियों के लिए।

मुक्ता माहारी गहरी सांस लेती हुई मां की आत्मकथा की ओर फिर चली गई। प्यार, त्याग, भक्ति, निष्ठा और धोखा सब कुछ सहने का धैर्य जैसे देवदासियों की आदत बन गई। यह सिर्फ एक के जीवन की कहानी नहीं है, बल्कि समग्र माहारी जाति का इतिहास है।

मुक्ता उस स्वीकृतिहीन इतिहास को पढ़ने लगी, क्रमशः रात गहरी हो गई।

- मुझे दुःख नहीं हुआ। इंद्रजीत भुईंमल के विवाह की बात मैंने बताई थी। मैं भूल गई थी कि जगन्नाथजी की सेवादासी हूँ।

पर मन कभी - कभी उदास हो जाता है। कारण ढूंढने का साहस मुझ में नहीं था। असहाय होकर ठाकुरजी से निवेदन करती - "प्रभु मुझे शक्ति दो, संयम और स्वयं के लिए प्रेम मेरे हृदय में भर दो।" मानसिक स्थिरता के लिए प्रभु को लेकर कविताएँ लिखती। चित्तचांचल्य, प्रशांतिभाव और जगन्नाथजी के लिए कविता-रचना में समय बीत जाता।

एक दिन आधी रात में किसी ने दरवाजा खटखटाया और आवाज दी। मां ने पूछा - "कौन है?"

उत्तर आया - "दरवाजा खोलो!"

उस समय भय से कांप उठी। दरवाजा खोलने से मां को रोका, फिर कहा - "इंद्रजीत भुईंमल की आवाज लगती है।"

"इसलिए ही तो 'ना' कर रही हूँ।" गंभीर स्वर में कहा।

मां ने वह बात नहीं सुनी। दरवाजा खोल दिया। अंदर घुसे इंद्रजीत। सारा शरीर कंबल से ढका था, फिर भी तनिक भींग गये थे और एक पोटली अमूल्य वस्तु की तरह यत्न से अपने साथ लिए थे। उसके बाद मां ने दरवाजा बंद कर दिया, हो सकता बारिश के कारण पहरे पर प्रहरी नहीं हो। चारों तरफ सुनसान। सिर्फ मेंढ़कों की टर्टर - टर्टर ही सुनाई देती थी। कोई बात मेरे दिमाग में नहीं आ रही। निश्चल सी खड़ी थी। इंद्रजीत ने मेरे पास आकर कंबल की पोटली मेरी तरफ कर दी। उसे देख कर मैं चौक गई। यह तो कोई नवजात शिशु है। मैं इंद्रजीत की ओर ताकती रही। उनकें भावों से लग रहा है द्वापर युग का इतिहास! सचमुच कंस के डर से कृष्ण को बचाने के लिए बंदीगृह से छुपा कर ले गए वासुदेव गोपपुर को!

इंद्रजीत में मुँह खोला। इंदु, तुम्हारे ऊपर मेरा अटूट विश्वास है, इसलिए इसका भार तुम्हें सौंप रहा हूँ। प्रश्नवाची आँखें देखती रही। यह कौन है? नन्हीं बच्ची मेरी तरफ ताक रही थी। सुन्दर मुखड़ा और आँखों में माया भरी थी। लुभावनी और सुन्दर - सी बच्ची। मेरे मुख के भावों को इंद्रजीत ने पढ़ लिया।

आश्वासन भरे स्वर में कहा - "इंदु, यह कोई गंदगी का कीड़ा या पंक से पैदा कमल नहीं। यह सीप से पैदा हुआ मोती है। आज से यह बच्ची तुम्हारी है। मेरे जिगर के टुकड़े को अपने पास पलने दो।" इंद्रजीत जैसे आये थे, वैसे ही वापस चले गये। वह अवैध संतान क्यों न हो, मेरे प्रियजन की संतान है, इसलिए मेरी भी प्रिय है। नन्ही प्यारी - सी बच्ची को गोद में ले लिया। वात्सल्य और ममता नस - नस में भर गयी। मोती - सी चमकती उसकी आँखों को देख कर उसका नाम रखा 'मुक्ता'!

'आह' - एक क्षीण वेदनापूर्ण स्वर उसके पिंजर को सिहारता हुआ चला आया! आगे और पढ़ने की शक्ति या साहस न था। वह क्या इंद्रीजत भुईंमल की जारज

संतान है? नरोत्तम भुईंमल दूसरा कोई नहीं उसका सगा भाई है! तो फिर उसकी मां कौन है?

यह अनचाही बात मन में पैदा होते ही उसने स्वर्गीया मां के प्रति प्रणाम किया। 'मां' तुम ही मेरी मां हो! तुम देवकी नहीं हो तो क्या हुआ, यशोदा की मूर्तिमंत अवतार तो हो! देवकी के परिचय के लिए मैं व्याकुल नहीं होऊँगी कभी! करीने से पाट वस्त्र में ढक कर मां की आत्मकथा रख दी। दूसरी पोटली खोली जो मां की अमर कृति 'पद्मावली' है। पद्मावली को निकाल कर संदूक में बंद कर दिया। आज उसके लिए पृथ्वी ने जैसे नये वस्त्र पहने हैं।

अपनी अनुभूति को अपने पास रख लिया। वह परिचयहीन नहीं है। जगन्नाथ के अलावा उसका अपना कोई है। उसका छोटा भाई नरोत्तम! किसी को पता नहीं है तो ठीक है। न जानना ही अच्छा है। नरोत्तम भुईंमल को भी पता न चले तो अच्छा है।

मुक्ता ने देखा कि दत्ता पत्थर की मूर्ति की तरह बरामदे में एक तरफ खड़ी है। मुक्ता के होठों में मुस्कान भर आई।

*   *   *

मध्य पर्व

पूर्व दिशा में बालभानु का उदय समारोह चल रहा था। श्रीक्षेत्र में श्री जी की स्नान यात्रा की उत्कंठित प्रतीक्षा थी। नीलांचल की पतित पावन पताका मानो लोगों को अभय प्रदान कर रही है। दूर - दूर से आये भक्तों की थकावट दूर करती है। अभय देती है। उन्हें आमंत्रित कर रही है और दुःख धो रही है।

आज स्नान पूर्णिमा है! श्री मंदिर में आनंद उत्सव की तरंग महोदधि की तरंगों से भी बढ़ रही है! स्नान मंडप में आधी रात में आयोजन चल रहा है। गराबडु सेवकों ने शीतलाजी के कूप से १०८ घट पानी लाकर रखा है। मैत्रीदेव जगन्नाथजी की विधि के लिए चारों तरफ से तीर्थ जल कुँए में एकजूट होता है। वही जल गराबडु लाने के बाद 'घटुआरी' चंदन, चोया, कर्पूर आदि मिला कर सुगंधित बना चुके हैं। तीनों ठाकुर और सुदर्शन के स्नान मंडप में धड़ी पहंडी (पंक्तिपदार्पण) में पधारने के बाद स्नान कार्य होगा। सेवा करने वाले उस पवित्र लग्न की प्रतीक्षा में है। स्नान के बाद मुदिरथ ही छेरापंहरा करेंगे और ठाकुरजी को गज वेश में सजाया जायेगा। गोपाल तीर्थ मठ से बड़ठाकुर (बलभद्र) के लिए सजाने की सामग्री नहीं आयी है। राघव मठ से अभी तक जगन्नाथ और सुभद्रा के लिए सामग्री नहीं आयी है। राघव मठ के महंत संपूर्णानंद जी को देख कर सब लोक तत्पर हो उठे। ठाकुरजी के काम में थोड़ी -सी देर हो जाने से यही स्थिति होती है।

'टाहिया' तैयार करते समय माया की आँखों ने महंत जी की घबराहट देख ली। उसके मन में निश्चिंतता का भाव था। जगन्नाथजी श्रीक्षेत्र छोड़ कर कहीं चले तो नहीं जाते। थोड़ी - सी देर हो गई है। इसको तैयार करना क्या आसान काम है? इसको पहने बिना तो जगन्नाथजी नहीं जाएँगे। यह बात उसने मठ में सुनी है। माया मन ही मन प्रसन्न हो जाती है। सारे विश्व को नियंत्रण करने ठाकुर को आज वह माया नियंत्रण कर रही है! स्नान मंडप आने के समय में विलंब हो गया! बच्चों की तरह वह खिल उठी। मुख से मंद मुस्कान निकल रही थी। सम्पूर्णानंद माला, तुलसी की माला और गज वेश के लिए दूसरी चीजें इकट्ठी कर चुके हैं। आधी रात से शिष्य काम में लगे हुए हैं। माया ने खुद ही यह काम चुन लिया था। अब वे सोच रहे हैं कि माया को यह दायित्व देकर गलती हो गई।

दिन ढलता जा रहा था। सम्पूर्णानंद ने बुलाया - "माया, क्या टाहिया तैयार हो गयी?" हँसते - हँसते माया आकर सामने खड़ी हो गयी। तनिक देर तो हो गई,

मगर ठाकुरजी ने इसके पहले इतनी सुन्दर माला कभी पहनी थी? सम्पूर्णानंद मुस्करा दिये। सदानंद से सारी चीजें भिजवा दें। सदानंद तुम जल्दी ही यह सब स्नान मंडप पहुँचा दो।"

सदानंद के चले जाने के बाद सांस लेकर कहने लगे - "सब कुछ आप की लीला है, आप की इच्छा है!" हर समय यह बाबा मन ही मन गुनगुनाते हैं? माया खुद को संभाल न सकी। पूछ लिया - "बाबा, आप किससे बातें कर रहे हैं?"

बालिका माया के सरल प्रश्न से संपूर्णानंदजी सपनों की दुनिया से लौट आये। उसके माथे पर स्नेह से हाथ फिर कहने लगे - "जगन्नाथजी से।" माया खिलखिला कर हँस उठी, सपूर्णानंद जी की बातों पर। आपके सामने मैं खड़ी हूँ, मेरे साथ बातें न करके, जो नहीं है, उनके साथ बातें कर रहे हैं?

सम्पूर्णानंद जी ऊपर देखते हुए कहने लगे - "वह तो सर्वव्यापी सनातन हैं। वे तेरे भीतर, मेरे भीतर और शून्य में भी मौजूद हैं।"

माया झुंझला गई। सोचने लगी कि सुबह - सुबह कहां की बात कर रही हूँ। बगीचे में फूल अभी तरोताजा खिले होंगे। तितलियों की भीड़ लगी होगी। राधामाधव के लिए फूल तोड़ने के बहाने वह तितलियों के पीछे दौड़ने लगती। हँसमुख माया के आँसुओं से भरी हुई आँखों ने सम्पूर्णानंद जी की याद जगाई थी। एक तरफ पिता - माता की ममता और आवेग तो दूसरी तरफ संतान का जीवन और त्याग!

आसक्ति और त्याग दोनों का जन्म संसार की माया से हुआ। जुलाहे के ताने - बाने - सा मानव इधर - उधर कितना कष्ट झेलता है।

उस दिन जन्माष्टमी थी। मठ के सारे भक्त माधव के जन्मोत्सव में जुटे हैं। राधा माधव की जन्माष्टमी और भजन कीर्तन के बारे में चेलों को बता कर सम्पूर्णानंद जी श्रीमंदिर गये थे। श्रीक्षेत्र में रहते हुए जगन्नाथजी वेश न देखने से जीवन व्यर्थ हो जाएगा। कोटि जन्म के पाप धुल जाते हैं। जगन्नाथजी उस समय निराकार ब्रह्म नहीं रहते। भक्तों के भगवान बैकंठु के शेषनाग की गोद त्याग कर उतर आते हैं, इस धरती पर एक मानव का रूप लेकर।

उत्कलीय आत्मा में, विश्वास में और प्रेम में सिर्फ जगन्नाथ हैं। चारों तरफ सिर्फ जगन्नाथ ही जगन्नाथ हैं। मानव की तरह जन्म लेते हैं। भक्त उनकी गर्भ यंत्रणा को सहते हैं। जन्म के बाद उत्सव करते हैं श्रीक्षेत्र में। विश्व के परिचालक यहाँ भक्तों की इच्छा से चलते हैं।

सम्पूर्णानंद पवित्र दृश्य देखने के लिए श्रीमंदिर में पहुँचे, तब तक काम खत्म हो चुका था। मुदुली रामकृष्ण पति ने सम्पूर्णानंद को देख कर घबराते हुए कहा - ''महंत जी, ठाकुर 'जन्मचकड़ा' पधार चुके हैं, आप जल्दी जाइए।'' सम्पूर्णानंद ने सात पावछों को पार कर मंदिर के भीतर प्रवेश किया। इस अपूर्व दृश्य से सम्पूर्णानंदजी की आँखें प्रेमाश्रु में भर गयी। शरीर रोमांचित हो उठा। सचमुच यह समय पीछे जाकर द्वापर युग में स्थित हो गया है।

चांदी की मनोरम पद्म पंखुड़ियों के मंडल पर श्रीकृष्ण की जन्म पत्रिका स्थापित की गई है। चांदी की पंखुड़ियों में देवकी, वसुदेव, नंद, यशोदा, लक्ष्मी, उग्रसेन, बलभद्र और श्रीकृष्ण की मूर्ति उकेरी गयी हैं। मंडल के ऊपर श्रीकृष्ण की स्वर्ण प्रतिमा स्थापित कर पूजा पंडा ने बुलाया - 'मुदुली दक्षिण घर से मदनमोहन को 'जन्मचकड़ा' में लाइए।'

पंकज दास और देवदासी तुलसी, वसुदेव और देवकी के वेश में कंस की बंदीशाला का भ्रम पैदा कर रहे हैं। देवकी के वेश में सजाई गई देवदासी तुलसी के मुखमंडल पर आसन्न प्रसव गर्भधारिणी की मुद्रा है। असहाय वसुदेव के आकुल आवेग के बीच जन्म लिया श्रीकृष्ण ने।

''नील जीमूत देह कांति। बलय मणि लटकंति''

उस नयनाभिराम दृश्य को देख कर सम्पूर्णानंद की दोनों आँखों से भक्ति विह्वल आँसू भर आये थे। अश्रु के भीतर वे देख रहे थे... बंदीशाला आलोकित होती जाती है। वसुदेव और देवकी के हाथ और पांवों की बेड़ी मुक्त हो रही है! वर्षा की अंधेरी रात में वसुदेव लेकर जा रहे हैं - श्रीकृष्ण को मथुरा से गोपपुर की ओर।

पैरों की बेड़ी खुल गई, बिजली रास्ता बता रही।

गोद में नारायण को देख, दरवाजे झट से खुले।

नींद से सारे लोग मोहित हो गए, मेघमालाएँ वृष्टि करने लगी।

जगन्नाथ को भीगता देख कर, अनंत ने अपने फनों से ढक लिया।

ले जा रहे हैं भगवान, तभी रास्ता रोकते उग्रसेन।

उस समय चांदी की थाली में वसुदेव रूपी पंकज यमुना नदी यानी सरस्वती मंदिर तक ला चुके हैं। बेहरा खुंटिया ठाकुर जी के ऊपर सप्तफन लेकर चल रहा है। पूजा पंडों में से एक उग्रसेन होकर रास्ता रोक रहा है।

सम्पूर्णानंद बिलकुल अपनी सुध - बुध खो चुके थे। श्रीकृष्ण का नयनाभिराम रूप मानश्चक्षु से हृदय की ओर प्रकट हो रहा है। कटि में पीत वसन है। लुभावने कोटि कंदर्पों की कांति सम्मुख। कमर में सोने की मेखला, हृदय में पद्म पद है। गदा, पद्म, शंख, चक्र धारण करने वाले चतुर्भुज नारायण! देवमानवों को अगोचर अपूर्व रूप लावण्य है। जननी देवकी ईश्वर मान का प्रणाम कर रही हैं तो जननी की तरह वे कभी विभोर हो गोद में भर लेती हैं। देवकी रूपी देवदासी तुलसी माहारी का यह द्वैत भाव देख कर सम्पूर्णानंद आत्मविस्मृत हो गये। मुदिरथ जी ने उन्हें हिला कर कहा - आइये जी, शीतल भोग सम्पूर्ण हो गया है - प्रसाद सेवन कीजिए!

अतीन्द्रिय भाव से लौट आये सम्पूर्णानंद। मुस्कराते हुए हाथ फैला दिये - प्रसाद के लिए। जिन महाबादु के प्रसाद को महाप्रसाद के रूप में माना जाता है, उसमें से थोड़ा - सा भी काफी है।

मुदिरथ ने कहा - ''आप कल नन्दोत्सव के लिए जल्दी आइयेगा!'' ताटलेंका को अपनी दुधारु गाय दुहने के लिए दी है। आप कल आकर देखना - सचमुच कामधेनु! बच्चा पैदा करने से पहले जगन्नाथजी से याचना कर रहा था - ''हे भगवान, नन्द उत्सव के समय उसका इक्कीस दिन हो जाये तो उसका पहला दुहन यहाँ गिरेगा! वह उसका सौभाग्य माना जाएगा। जगन्नाथजी ने मेरी गुहार सुनी है। नन्दोत्सव के लिए दूध देने वाली गाय मिलना कोई आसान बात नहीं है। गांव - गांव घूम कर ताटलेंका बेदम हो जाता है - पहले दुहने वाली गाय की तलाश में।'' महाबहु जगन्नाथ ने श्रीकृष्ण के रूप में आज जन्म लिया है! कल उनका जन्मोत्सव सम्पन्न होगा श्रीमंदिर में! उस उत्सव का दृश्य देख कर आँखें पवित्र हो जायेंगी सम्पूर्णानंद जी की।

जगमोहन के झूले में झूल रहे होंगे राधाकृष्ण और मदनमोहन। बीच में सुभद्रा की आज्ञा पा कर दुर्गा मूर्ति (अम्बिका) उसके सामने खटोले पर पधारी होंगी। कंस आकर उठा ले जाएगा योगमाया को और सात पावछों पर पटकने की कोशिश करते ही वह अंतर्ध्यान होकर आकाशवाणी करेगी -

''अरे कंस मेरा उत्तर सुन, चक्रधर है तेरा दुश्मन।
वह तेरा संहार करेगा, और जितने असुर हैं सभी का,
तू मुझे न जान कर मारता, नियति की बात ही भूल जाता।''

उसके बाद भीतरछु महापात्र नंद वेश में राज प्रासाद जाकर वहाँ से लौटते

समय स्नान मंडप में बैठेंगे। वहीं उन्हें कृष्ण जन्म की बात मालूम होगी। नंद का बहू आकांक्षित हृदय उभर उठेगा पितृत्व के आनंद में। 'अपुआ घरे पुत्र जात, आनंद हुए नंद चित्त!' अपुत्रिक के घर में पुत्र पैदा होने पर नंद का मन आनंदमय हो जाता है।

लक्ष्मी मंदिर के सामने पहली बार ब्याने वाली गाय को लाया गया है। नंद जी आकर उस गाय को दुहेंगे। उस दूध में मदनमोहन नहायेंगे। उसके बाद दूध और तिल के लड्डू का भोग होगा। उस नैसर्गिक शोभा को देखने की अभिलाषा मन में लिए सम्पूर्णानंद आने की प्रतिश्रुति देकर मठ लौटे। मठ के अंदर पांव रखते न रखते सदानंद ने खबर दी कि आप के साथ भेंट करने एक सज्जन अपनी स्त्री व संतान के साथ आये हैं। सम्पूर्णानंद ने मठ का प्रधान दरवाजा पार कर कीर्तन गृह में प्रवेश किया। उन्हें देखते ही उस व्यक्ति ने प्रणाम किया। ऊँची नाक, तिरछी आँखें, ऊँचा कपोल, इससे उनके अभिजात का पता चलता है।

बातचीत से पता चलता कि वे सज्जन दूर मयूरभंज से पधारे हैं अपनी पत्नी और बच्ची के साथ। वे मयूरभंज के राजवंशी हैं। उनके पिता और प्रपितामह सामंत राजा थे। जमींदारी हटने के बाद भी वे लोग वैसे ही ठाठबाट से रहते हैं, वे पटना हाईकोर्ट के न्यायाधीश हैं।

आने का मकसद उन्होंने व्यक्त किया। संन्यासी होने पर भी सम्पूर्णानंद का हृदय द्रवीभूत हो गया था। विस्मय से विवाद से विरोधाभाव से उन्होंने कहा - "मेरी इकलौती बेटी माया है। हमारे प्रेम का पहला और अंतिम पुष्प भी वही है। उसके लिए कितने सपने और आशाएँ थी। मैं कह रहा था माया बड़ी होकर पढ़ेगी। मेरी पत्नी कहती थी माया नृत्य - संगीत की शिक्षा लेकर गांधर्व विद्या में निपुण बन कर देश - विदेश में नाम कमायेगी। उसकी तुतलाहट भरी मुस्कान की माया में हम सुधबुध खो जाते। नियति हमारे भाग्य पर उपहास कर रही थी। माया दो साल की हो गई। माया रोगग्रस्त हुई। हमने आयुर्वेदी, प्रकृति की जड़ी - बूटी, ओझा - साधु - संन्यासी सब की सहायता ली। बड़े - बड़े चिकित्सकों के पास गया, मगर उस पर कोई असर नहीं हुआ। सब ने भविष्यवाणी सुना दी कि ज्यादा से ज्यादा दो - तीन साल वह बच सकेगी। हम विनयपूर्वक भगवान से प्रार्थना करते रहे - "हे प्रभु, माया को स्वस्थ कर दें, हम आपको इसे सौंप रहे हैं। आपकी होकर वह बच जाये!"

मेरी पत्नी ने सपने में देखा कि एक ज्योतिर्मय पुरुष ने माया का हाथ पकड़

उठा लिया है। अशक्त माया खड़ी हो गई है। ज्योतिर्मय पुरुष ने माया के सारे शरीर पर हाथ फिर दिया। माया रजनीगंधा की तरह खिल उठी। उस दिव्य पुरुष ने कहा कि मेरे पीछे - पीछे आओ। माया के जड़ पैर चंचल हो गये। वह उनके पीछे - पीछे चलने गली। मेरी पत्नी सपने में भी बुला रही थी कि माया कहाँ जा रही है? आ इधर! 'श्रीक्षेत्र...' कहते हुए वह चली जा रही थी।

आश्चर्य की बात है कि उसके बाद ही माया ठीक हो गई। मेरी पत्नी का कहना है कि स्वयं जगन्नाथजी ने आकर मेरी माया को ठीक किया है। वह उनकी सम्पत्ति है। चलिए उन्हें सौंप दें। इस बीच दो साल गुजर गये।

मेरी सारी युक्तियाँ उनके सामने हार मान गई। मैंने उन्हें समझाया - "सपने और वास्तविकता में ऐसा हो जाता है। यह कोई अनहोनी बात नहीं। यह बात सही है कि जगन्नाथजी ने उसे ठीक किया है, फिर भी, एक कोमल बालिका को इस तरह भिखारिन बना कर छोड़ना उचित नहीं होगा। मेरी पत्नी की मृत्युचेतना इतनी भयानक थी कि उसके सामने सारी युक्तियाँ हार मान जाती थी, इसलिए आज आपके मठ की तरफ आये हैं। कृपया इसे संन्यास की शिक्षा दीजिए।" सम्पूर्णानंद चौंक गये थे। उनके सामने सात साल की बच्ची खड़ी है। ऊँची नाक, कपोल और सुन्दर मुख झलक उठता है। यह लड़की संन्यासिनी होगी? सज्जन ने बच्ची के सिर पर हाथ रख कर कहा - "माया, बाबा को प्रणाम करो!"

सम्पूर्णानंद को देख कर माया खिलखिला कर हँसने लगी। होठों पर हाथ रख कर कहने लगी - "आप पानी कैसे पीते हैं? इतनी बड़ी दाढ़ी तो पानी में डूब जाती होगी? पिताजी स्नेह से समझा रहे थे - "देख, संन्यासियों से ऐसा नहीं कहा जाता। संन्यासियों को ऐसी दाढ़ी रखनी पड़ती है।" माया ने कहा - "मैं अगर संन्यासी होऊँगी तो दाढ़ी रखनी पड़ेगी? मैं दाढ़ी नहीं रखूँगी।" वह हँसते - हँसते बगीचे में भाग गई, जहाँ तितलियाँ उड़ रही थीं। ऐसा लग रहा था कि इस मठ के साथ उसका सम्बन्ध बहुत पहले से है। मां और पिताजी की आँखें भर आयी थीं। सम्पूर्णानंद की भी आँखें गीली हो गई। वह लाड़ली संन्यासी होगी? संन्यास और संसार में भेद ही क्या है उसके लिए? जगन्नाथजी को उत्सर्ग करने की वस्तु पर किसी का अधिकार नहीं रहता। माया तो प्रभु के लिए ही है। सम्पूर्णानंद ने पूछा - "आपने राधानंद मठ में छोड़ने का संकल्प क्यों लिया? उस बाईस पावछ पर छोड़ दीजिए। वे उसे जैसे जिस तरह रखेंगे, वैसे रहेगी।"

सम्पूर्णानंद की ओर विकल दृष्टि से देख माया के पिता कह रहे थे - "मैं संन्यासी नहीं हूँ महंत महाराज। मैं सांसारिक आदमी हूँ। उसे बेसहारा छोड़ दूँ, यह मैं कैसे कर सकता हूँ? मैंने एक बार काशी में आपका प्रवचन सुना था। मुझे बहुत अच्छा लगा। मेरी बच्ची अगर संन्यासिनी होगी तो एक ज्ञानी - गुणी आदमी के पास रह कर ज्ञान प्राप्त कर सकेगी। वह यहाँ रह कर श्रीजगन्नाथजी की दासी बनेगी। आप उसे मठ में रख लीजिए। उसके लिए जितने पैसों की जरूरत है, उससे ज्यादा मैं भिजवा दूँगा।"

सम्पूर्णानंद जी ने उनके दोनों हाथों को थाम कर कहा - "यह गलती कभी मत करना। शिष्य हो जाने के बाद वह यहाँ रहेगी। संसारी व्यक्तियों की सम्पत्ति पर उसका न्यायतः और धर्मतः कोई अधिकार नहीं। यह बात कर और लिख कर आप देते जाइए कि आप की सम्पत्ति पर माया का कोई अधिकार नहीं रहेगा और माया पर आपका भी। भविष्य में कोई सम्पर्क रखने की कोशिश भी मत कीजिएगा।

सुबह होते ही दोनों माया को छोड़ कर चले गये। पीछे रह गया वह निजी शपथ पत्र। उनके शरीर, मन और आत्मा का अंश। पिता - माता जाते समय रोते हुए कहने लगे - "माया मगर उनके बारे में पूछे तो कह दीजिएगा कि उसके माता - पिता मर चुके हैं।" कोहरे में भीगी उस अंतिम भोर में वे दोनों मूर्तियाँ बहुत करुण दिख रही थीं। सम्पूर्णानंद जी गहरी सांस ले रहे थे। इस बीच दो साल गुजर गये। स्निग्ध आत्मीयता और स्नेह के बीच माया को बड़ा किया है। रोती हुई काया आज सब कुछ भूल गई है। कभी - कभी यादों में खो जाती है। सम्पूर्णानंद जी के मन में हलचल भर जाती है।

उनके गले में दोनों बाहों को डाल कर पूछती है - "मैं कब अपने घर जाऊँगी? मुझे न देख कर माता - पिताजी घबरा रहे होंगे। मुझे उनके पास छोड़ देंगे न बाबा!" निर्वाक सम्पूर्णानंदजी उत्तर खोजते हैं। गुनगुनाते हैं। गुनगुनाते हुए कहते - "ओ! श्रीजगन्नाथ! श्रीजगन्नाथ!! तुम्हारे संसार में कितने दुःख! बंधन और उसकी माया भी दुःखदायी है।" फिर माया को भुलावा देकर ले आते आश्रम की ओर। विद्या अध्ययन और शास्त्र - पुराण में उसका जितना ज्ञान है, चुलबुलाहट से भी वह उतनी ही परिपूर्ण है। माया ही मठ की जीवन शक्ति है, प्राण है। उसे छोड़ कर आत्महीन देह रह जायेगी। दो साल गुजर गये, पर अभी उसे संन्यासी की दीक्षा नहीं दी गई। दो साल बाद भी बचपन की यादें मिटी नहीं हैं। सचमुच क्या माया संन्यासिनी हो सकेगी? मंद मुस्कान चारों तरफ खिल उठती है। कभी - कभी रोकर माया पूछ लेती

है - "मुझे यहाँ क्यों रखा गया है? मेरे माता - पिता कब आयेंगे मुझे लेने?"

सम्पूर्णानंद जी ने एक बार उत्तर दिया था - श्रीजगन्नाथजी जानते हैं। झूठ बोला है, अपने स्वार्थ के लिए वरना उसके आश्रय से मुरझाने के पहले प्रभु के पूजा फूल के रूप में खिल उठेगी। माया को अपने पास लेकर सम्पूर्णानंद जी ने कहा - "तेरे मां - पिताजी नहीं आयेंगे माया! खबर आयी है दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई है।" माया की हालत संभाली नहीं जा सकी। सम्पूर्णानंद को नोंचने लगी, पीटने लगी, कपड़े फाड़ने लगी, माया भैरवी बन गई! अभी भी खरोंच के दाग छाती पर दिखाई दे रहे हैं। सचमुच श्रीकृष्ण के हृदय में श्रीवत्स का पग चिन्ह है। सहज होने के बाद माया ने उनके बारे में फिर कभी नहीं पूछा। कब, कहाँ और कैसे दुर्घटना हुई है, कुछ न पूछा।

दुर्घटना! मानव की पहली दुर्घटना है इस संसार में पैदा होना। घटना और दुर्घटना के बीच कदम रखते ही मानव मरता है आशा में, आकांक्षा में, स्वप्न में, मन में, सिर्फ बचता है शरीर को लेकर। माया के माता - पिता भयंकर मृत्यु के शिकार नहीं बने? प्राणों से प्यारी बच्ची को सदा के लिए छोड़ने की मानसिक स्थिति, माता-पिता की मृत्यु से भी भयानक है।

यह वही माया है। संसार त्यागी सम्पूर्णानंद जी को जकड़ रखा है अपनी माया में। परंतु कितने दिन? पितृहृदय का वात्सल्य दे कर यौवन प्राप्ति तक उसे अपने पास रखेंगे। उसका विवाह करा कर पिता का कर्त्तव्य पालन करेंगे। उन्होंने माया को एक शिष्य के रूप में अपना लिया है। संसार त्यागी जीवन बितायेंगे। भजन, कीर्तन, ईश्वर नाम श्रवण, गुणकथन के बीच भूल जाएगी वह इस संसार के दुःख, शोक, पाप और ताप।

सम्पूर्णानंद ने गहरी सांस ली। असहाय के रूप में नीलचक्र की ओर देखते हुए कहा - "इच्छामय, आप की इच्छा पूर्ण हो।"

हाथ जोड़ कर गाने लगे -

नीलाचल निवासाय नित्याय परमात्मने
बलभद्र सुभद्राभ्यां जगन्नाथाय ते नमः
जगदानंद कंदाय प्रणतार्त्ति हराय च
नीलाचल निवासाय जगन्नाथाय ते नमः।

सम्पूर्णानंद जी का हृदय शांत भाव से भर गया। आज श्रीजगन्नाथजी अपने अगणित मोक्ष - प्रयासी पुण्याकांक्षी भक्तों को गज वेश में दर्शन देंगे, इसके बाद अणसर गृह में रहेंगे। नेत्रोत्सव तक। पंद्रह दिन। समय की यह सीमा दूसरों के लिए कुछ न हो, परंतु श्रीक्षेत्र वासियों के लिए बहुत कुछ है। श्रीजी के दर्शन बिना कैसे कटेंगे ये पंद्रह दिन?

बयालीस दिन तक चंदन का लेप और नरेंद्र पुष्पकरणी के जल में आधी रात तक नौका बिहार करके प्रभु के श्रीअंग को बुखार हो जाता है, इसलिए पंडे पढ़ियारियों से छुटकारा पा कर वे चिकित्सित होंगे दइताओं के हाथ में। स्वयं श्रीजगन्नाथजी की चल प्रतिमा पुरी महाराज, पंडा - पढ़ियारी आदि किसी को भी दर्शन नहीं देती। साधारण लोगों की बात क्या कहें!

सम्पूर्णानंद जी मठ का और कुछ दूसरा काम पूरा कर दर्शन के लिए निकल पड़े। माया ने आकर रास्ता रोका - "आज मैं भी आप के साथ जाऊँगी!" सम्पूर्णानंद की आँखों में आशा की झलक कौंध गई। अपनी तरफ से माया मंदिर जाने को कह रही है! दो साल में माया एक बार ही मंदिर गई है। इतने में ही उसका सारा कौतूहल टूट गया था। जितनी बार बुलाते, वह कहती - "आप उन एक ही देवता को बार - बार देखने जाते हो, जाओ, मेरी इच्छा नहीं है। तीन सफेद, काले और पीले विना हाथ - पांव वाली पेड़ के लट्‌ठे से बनी मूर्तियों को देखना आप को अच्छा लगता है, तो जाइए।"

माया की बात पर दोनों होंठ दबा लेते और आँखें मूंद लेते सम्पूर्णानंद जी। मुंदी आँखों के वलय पर सफेद, काले और पीले रंग की तरल सौंदर्यमयी मूर्तियाँ उभर आतीं। प्रेमाश्रु झर जाते। जिस रहस्यमय ब्रह्म की कल्पना के भीतर श्रीकृष्ण का नाभिकलश रहा है, सचमुच वह क्या है? मुनि-ऋषि भी जान नहीं पाते। अबोध, अज्ञानी माया कैसे समझ सकती? सम्पूर्णानंद जी के होठों पर मुस्कराहट छा जाती। गुनगुनाते हुए कहने लगे -

"अपार महिमा जिसकी, कितना बखान करें उसकी!"

आज सम्पूर्णानंद जी ने परम आत्मीयता के साथ माया का अनुरोध स्वीकार किया। खड़ांऊ पहने आगे - आंगे सम्पूर्णानंद जी और पीछे माया चल रही है। सचमुच मलिन रास्ते पर कोमल पद्म की पांखुड़ी जैसी खिलती जा रही है!!

बड़दांड पर अकेले चलते सम्पूर्णानंद जी को माया ने सतर्क किया - "बाबा,

इस भीड़ में अकेले मत जाइये! भीड़ में खो जायेंगे तो मैं ढूंढ नहीं पाऊँगी।'' सम्पूर्णानंद ने रुक कर माया का हाथ पकड़ लिया। कहने लगे - ''अब हाथ पकड़ लिया है, खो नहीं सकती।'' यह नन्ही - सी बच्ची संन्यासिनी होगी? सम्पूर्णानंद ने गहरी सांस ली।

'बड़दांड' पर बड़े - बड़े लक्कड़ों का समूह देख कर माया पूछ रही है कि चक्के आदि क्यों रखे हैं बाबा? इतने लोग मिल कर क्या कर रहे हैं? सम्पूर्णानंद जी ने उत्तर दिया - ''श्री जी की घोष यात्रा के लिए रथ तैयार किये जा रहे हैं। आज से तीनों ठाकुर किसी को दर्शन नहीं देंगे। अनवसर तट्टी के पीछे गोप्य रहेंगे। पंद्रह दिन बाद यानी आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा के दिन प्रभु 'नवयौवन' दर्शन देंगे। द्वितीया के दिन श्रीमंदिर त्याग कर रथ पर पधारेंगे। हर जाति, धर्म, वर्ण के लोगों को दर्शन देंगे।

''ओ!'' रथयात्रा होगी। इतना घुमा - फिरा कर बात क्यों बताते हैं? माया के स्वर में सुन्दर चेहरे पर सयाना - सा गंभीर भाव देख कर सम्पूर्णानंद जी मुस्करा उठे। अरुण स्तंभ पार कर दोनों मंदिर में घुस गये। बांयी ओर पतितपावन को देख कर महंत ने कहा - ''पतितपावन को प्रणाम करो माया!''

प्रणाम करके माया ने पूछा - ''भाई-बहन को छोड़ कर यहाँ अकेले क्यों बैठे हैं?''

''बैठे नहीं बेटी, विराजमान हुए हैं।'' सम्पूर्णानंद जी माया की बात सुधार रहे थे। 'हाँ, एक ही बात है।'' माया की आँखों में बच्चों सी सरलता झलक रही थी। माया ने फिर वही बात दोहराई। कुछ आगे काशी विश्वनाथ को प्रणाम कर बाइस पावछ पर जाते समय माया के सवाल का जवाब दे रहे थे सम्पूर्णानंद। बहुत दिनों की बात है। पुरी के गजपति द्वितीय रामचन्द्र देव के समय में पतितपावन की मूर्ति वहाँ बनाई गई थी।

उस समय यवनराज चल रहा था भारत में। यवनों की संकीर्णता भारतीयता पर कुठाराघात कर रही थी। खास कर देवी - देवताओं के मंदिरों पर हमले से भारतीय आतंकित हो गये। सत्ता में बैठे यवन प्रायः मंदिर तोड़ - फोड़ देते। ओड़िशा के इष्टदेव जगन्नाथजी भी नहीं छूटे थे। सुजाखां के निर्देशन में मुगलों के आक्रमण से मुक्ति के लिए ओड़िशा के लोगों ने प्राणों का प्रण किया। द्वितीय राजा रामचंद्र देव ने नेतृत्व किया था। हार कर वे बाराबाटी किले में बंदी बने। सुजाखां के पुत्र तकीखां

की चाल से सुजाखां की बेटी रजिया से कलमा पढ़ कर शादी की थी - रामचंद्र देव ने। तकीखां की शर्त थी कि 'रजिया' से विवाह कर मुसलमान बनना होगा। फिर जगन्नाथजी पर कोई आक्रमण नहीं करेगा।

हिन्दू धर्म के परमाराध्य देव का हिन्दू संस्कृति के मूल औ उत्कलीय परंपरा के साथ सम्पर्क ऐसा है जैसे फूल का उसकी महक के साथ। यवनों के हमलों से श्रीजगन्नाथजी की रक्षा करने के लिए परमभक्त द्वितीय रामचंद्र देव धर्मांतरित हो गये थे, इसलिए हिन्दू धर्म के बड़े पंडों ने उन्हें मंदिर में प्रवेश की इजाजत नहीं दी थी।

गजपति रामचंद्र देव दर्शन किये बिना कुछ भी नहीं खाते। अतः मंदिर के बाहर पतितपावन की मूर्ति की स्थापना की गई। पुरी के गजपति पतित हो जाने के कारण उद्धार के लिए रत्नसिंहासन और भाई - बहन को छोड़ कर सिंहद्वार के पास विराजे हैं। प्रश्नोत्तर के बीच बाईस पावछ पार कर चुके थे।

माया मंदिर बेढ़ा के भीतर ही कहने लगी - "मैं सोच रही थी यहाँ कितनी पावछ हैं, गिनती करुँगी। मगर आपने इतनी सारी बातें बतायीं कि मैं तो भूल ही गई। यहाँ से लौटते समय गिनती करुँगी।"

जरा मुस्कराते हुए सम्पूर्णानंद जी ने कहा - "हाँ, लौटते वक्त गिन लेना!" सत्यनारायण, बटगणेश, मंगला और नृसिंह आदि मंदिर पार करके मुक्तिमंडप की ओर आ रहे थे सम्पूर्णानंदजी। उदात्त स्वर ने ऋषियों के वेद ध्वनि का भ्रम पैदा किया-

"सर्व संग परित्यक्त स्तत्रतिष्ठति देहभूतः
सुरी सुरावति क्रम्यर्तोहं पुरुषोत्तम।
सृष्टि लयेर नाक्रांतः क्षेत्रोतम पुरुषोत्तम
पृथिव्या गोपितं स्थान त वचापि सुदुर्लभां।"

उनके पीछे दौड़ती हुई माया पीछे छूट गई थी। दौड़ कर आकर माया कहने लगी - धीरे चलो, धीरे चलो, कहने पर भी नहीं सुनते!

माया के कोमल हाथ पकड़ स्नेह से कहा - "तू मुझे लेती चल!"

सामने विमला मंदिर है। आकाश काले बादलों से ढक गया है। श्रीजी का गणेश वेश देखने के लिए भीड़ लगी है। यात्रियों से कुछ लेने के लिए पंडे उन्हें अपनी तरफ

खींच रहे हैं। तुम्हारी सौ पुस्तें हमारी यजमान हैं। आ कर भोग लगायें। चकाडोला के दर्शन कर दक्षिणा दें। सात जन्म का पाप नाश होगा!''

कोई यात्री बिना सुने चला जाता - पंडे लोग ऐसे यजमानों पर गाली वर्षा कर रहे थे - आया है चक्र तीर्थ! घर में बैठता। यहाँ जगन्नाथजी धाम आने की क्या जरूरत थी?

कोई पंडे काककुंड के पास चिल्ला रहे हैं - 'यहाँ पैसा दो - आज स्नान पूर्णिमा है! मानव जन्म उद्धार हो जाएगा। यात्रियों की भीड़ देखा माया खड़ी हो गई। कहा - हम भीतर नहीं जायेंगे, बाबा। लोग हमें कुचल देंगे। यहाँ से हम लौट जायेंगे।

सचमुच आज ज्यादा भीड़ थी। गर्मी के कारण जो न आने वाले थे, वे भी आ गये। स्नान पूर्णिका पर तो जरूर वर्षा होती है। कौन जाने अगर शाम को ज्यादा बारिश हो गयी और घर से नहीं निकल सके तो?

सम्पूर्णानंद जी ने माया को गोद में उठा लिया। विमला की ओर हाथ दिखा कर कहने लगे - ''ये देवी विमला है! श्रीजगन्नाथजी का पुरी धाम 'विमलापीठ' भी कहलाता है। श्रीजगन्नाथजी का भोग विमला को समर्पण करने के बाद ही 'महाप्रसाद' होता है। विमला के दर्शन किये बिना हम कैसे जाएँ?'' भीड़ में माया ने सम्पूर्णानंद जी को जकड़ लिया है।

नया - नया एक पंडा दूसरे पंडे को इशारे में दिखा रहा है कि देखो इस महंतजी को! कितनी सुन्दर 'माता' को गोद में लिए हैं! इसको धर्म सहेगा?

निर्विकार सम्पूर्णानंदजी के हाथ और मन इस कटूक्ति को सह न पा रहे थे। थम गए और गा उठे -

''नवै चाये राज्यं च कनक माणिक्य विभवं
न याचे हं रम्यं सकल जनकाभ्यां वर वधूम्
सदा काले काले प्रथम पतिनागीत चरितो
जगन्नाथजी स्वामी नयनपथ गामी भवतु मे।''

मैं राज्य नहीं चाहता। कनक, मणि की आशा नहीं करता। सब अभिलषित रत्न नारी की भी जरूरत नहीं। मैं चाहता हूँ - [illegible] जिनके गुण [illegible] करते हैं, उस प्रभु जगन्नाथ में मेरे नयन पथगामी [illegible]।''

श्लोक के भाव को मन ही मन गुनगुनाते हुए विमला, राधामाधव, कमला, शीतला और लक्ष्मी मंदिर में भक्तिमय होकर माया को गोद से उतार 'मां जगज्जनी' कह कर तनिक बैठ गए।

माया ने प्रश्न किया - आप तो बाईस पावछ से स्नान मंडप की ओर चले जाते, घूम फिर इतनी दूर क्यों आये हैं? थक गये हैं? स्वगतोक्ति करते हुए सम्पूर्णानंद ने कहा - "सारी इच्छा और अभिलाषा इन देव - देवियों के पास मनौती करके निष्काम चित्त होकर परम ब्रह्म का दर्शन करना होगा, बेटी!"

बाबा की यह खोई - खोई मुद्रा उसे अच्छी नहीं लगी। "तुम्हारे सामने जो है, उससे बात करें। शून्य में देखते हुए क्यों बात करते हैं?"

सम्पूर्णानंद को हिला कर माया कहने लगी - "चलिए न बाबा, स्नान मंडप की ओर। उधर भीड़ हो गई होगी। मेरा बनाया हुआ टाहिया तो मुरझा गया होगा! इतनी भीड़ में, पहने हैं या नहीं, मैं कैसे देख सकूंगी?"

चलो बेटी, मैं तो यह बता भूल ही गया। आनंद बाजार होकर माया के साथ अब सम्पूर्णानंद जी चल रहे थे, स्नान मंडप की ओर।

लोगों की भीड़ थी। लीलामयी प्रभु की लीला देखने दूर - दूर तक उद्वेलित भक्तों की कतार लगी थी। सारी नदियाँ सागर में मिलने की तरह सब धर्म और सारे मार्ग एकाकार बन गए हैं श्रीक्षेत्र में श्रीजगन्नाथजी के पास। सचमुच सर्वधर्म समन्वय के देवता जगन्नाथ जी बाहें फैला कर विश्ववासियों को निमंत्रण दे रहे हैं - तुम दुःख शोक, पाप, ताप से झुक गये हो। चिंता नहीं। आओ, मुझे अपना लो। सूरज की रश्मि की तरह मैं तुम्हारे सारे दुःख दूर कर दूँगा। आओ, मैं तुम्हारा प्रभु नहीं, तुम्हारा सखा, भाई और परम आत्मीय हूँ।

प्रभु के सांवले मुख पर छायी है क्षमा स्निग्ध सुन्दर मुस्कान, प्रसारित बाहुओं में आत्मीयता का भाव! "सर्व धर्म परित्यज्य, मामेकं शरणंव्रज।"

इसी अंतःस्पर्शी आकर्षण से लोग स्नानवेदी की ओर चले जा रहे हैं। धन, जन, मान-सम्मान नहीं, सब में एक ही भाव, एक ही कामना - अनंत मोक्ष और निर्वाण। जय जगदीश की जयध्वनि में गगन - मंडल गूंज उठता है! मुक्तिकामी जनता की भीड़ में सम्पूर्णानंद खो नहीं गये, बालिका माया साथ में है। इस भीड़ में अगर खो गये तो!

सम्पूर्णानंद जी के होटों पर मुस्कान भर आयी। संसार की ओर थोड़ी - सी आशा बनी रहे, तो भावी मार्ग की ओर मन पूरी तरह से न्यौछावर नहीं हो सकता। इसलिए ही तो कुरुसभा में विवसना पांचाली ने वक्ष पर हाथ रख कर जब कहा - "नारायण रक्षा करो, हे लज्जा निवारण - द्रौपदी की इस धर्मलज्जा की स्थिति से रक्षा करो।" तब भी वह वहीं पसीजे थे। जब द्रौपदी ने दोनों हाथ जोड़ कर याचना की - 'नारायण रक्षा करो!', उस समय द्रौपदी को वस्त्र दे कर सहायता की! यह भी तेरी लीला का ही अंश है प्रभु! इतना कह कर सम्पूर्णानंद ने माया को अपने कंधे पर उठा लिया। बाबा के सिर को पकड़े है माया। देख रही है और खुश हो रही है। बाबा, मैं ठीक तरह से देख रही हूँ कि बलभद्र, सुभद्रा और जगन्नाथ जी स्नान मंडप में पधार रहे हैं। सिर पर मणि, नासिका में बसणी और होठों पर मंद मुस्कान खिल उठी है! जगन्नाथजी के माथे पर मेरा गुंथा टाहिया कैसा सुन्दर लगता है... ठाकुर जी सचमुच सिद्धिदाता गणेश की तरह लगते हैं! माया की बातों से प्रसन्न होकर सम्पूर्णानंदजी कहने लगे - वही तो सिद्धदाता, मुक्तिदाता, मोक्षदाता और मोक्षकर्ता नारायण हैं। कब कैसे भक्तों को दर्शन देते हैं, यह उन्हें भी पता है। उनकी लीला देव और मानव को अगोचर है।

उस समय शाम हो गई थी। दीप मालाओं में श्रीमंदिर की शोभा दुगुनी हो रही थी। बादलों की घटाटोप में चांद की थिरकन नववधू की तरह दिख रही है। नववधू द्वारा अपने प्रेमी के साथ प्रीति जताने की तरह दिखाई देती है। श्रीजगन्नाथजी की वसणी (नाकफूल) और मंद मुस्कान दिखाई दे रही है!

संध्या आरती के लिए भक्तों की भीड़ बढ़ रही है! बारिश होने के पहले काले बादल दिखाई दे रहे हैं। आरती मेकाप के प्रदीप भरे हाथ अपूर्व मुद्रा में थिरक उठते हैं। कोलाहल, मंत्रध्वनि, भजन, कीर्तन आदि के साथ गुंजरित हो रही है घुंघरु की ध्वनि! स्नान मंडप के ऊपर और नीचे प्रतीक्षा कर रहे हैं भक्त, आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी। सबकी आँखें देवदासी के ऊपर थीं। उसके शरीर से झलक उठता है भक्तिभाव, परम विहलता, सम्पूर्ण आत्मसमर्पण का भाव।

आलता लगे पांवों में चांदी की पायल और घुंघरु। चंपाकली - सी अंगुलियों में झुंटिया, कमर में कमर पट्टी और चंद्रहार, हाथ में चूड़ियाँ, बटफूल, चांदी के मकर - मुखी, बाहु में बाजूबंध और अनंत। बरहमपुरी सिल्क की साड़ी करीने से पहने हैं। पाट की कांचली सुन्दर ढ़ंग से सजायी गयी है। गले में हरड़ के टुकड़े जैसी सोने की माला, उसके ऊपर सरसों के दाने जैसी सोने की माला, फिर कीमती जड़ाऊ वाली

संकड़ी माला आदि देवदास के गले में है। इसके नीचे मुक्ता की माला है। जूड़े पर फूलों का गजरा। उस पर पांच टाहिया सुन्दरता को दुगुना बढ़ा रहे हैं। इन सब का सौंदर्य अनिद्य - सुन्दरी के मुख लावण्य को द्विगुणित करता। गोरे मुखड़े पर काली - कजरारी आँखें। सुन्दर आँखों से झलक रहा है आत्मसमर्पण का भाव। सोने की वसणी, रथ और दण्डी के बीच आभा झलक उठती है। गुलाब की पंखुड़ी - सा नैसर्गिक स्पंदन दिख रहा है होंठों पर।

नर्तकी की दृष्टि चकाडोला की असीम व्याप्ति पर है। बाह्य जगत का कोलाहल, उत्सव - मुखर परिवेश और आडंबर की तड़क - भड़क उसके निकट निरर्थक हैं। मादली के मृदंग के साथ नार्तकी के चंचल चरण नृत्य की भंगिमा प्रस्तुत कर रहे हैं। पद्म पंखुड़ी की तरह हथेली से विभिन्न भंगिमा दिखलाती है। देखने से लगता है कि प्रभु और सेवादासी के अलावा और सब गौण हैं।

दूर से आने वाले भक्त आपस में बातचीत कर रहे थे कि स्नान पूर्णिमा पर जगन्नाथजी का वेश देखने इंद्र सभा से उर्वशी और रंभा आ गयी है। मर्त्यलोक में ऐसी सुन्दरी कहाँ? आज ये आँखें पावन हुई। क्या रूप है! यह तपस्या और योग साधना है, नृत्य नहीं।

माया चकित हो चंचल चरणों की ओर अपलक देख रही। सचमुच नर्तकी अपनी स्थिति भूल गई। मानो वह लज्जा और दूसरों की उपस्थिति ही भूल गई। पैरों पर रुपये आ गिरते हैं। श्रद्धा और नैवेद्य के रूप में सोने के अलंकार, पाट वस्त्र आदि अर्पित कर रहे हैं। मादली की चंचल अंगुलियाँ द्रुत से मंद और मंद से अस्पष्ट होती जा रहीं। नर्तकी के घुंघरु की ध्वनि भी लीन हो रही हैं। धीरे - धीरे उसमें स्थिरता आ रही है। माया का तन्मय भाव टूटा।

सम्पूर्णानंद के कंधे से उनके मुख के पास आकर पूछ रही है - ''यह जो नाच रही थी, वह कौन है बाबा?'' आरती पाने के लिए भीड़ लग गई थी। माया की बात सम्पूर्णानंद सुन न सके। भीड़ से माया को निकाल वे बाहर आ गये।

बाबा के कंधे से उतर कर वह चलने लगी। दुबारा पूछा - ''जो नाच रही थी, वह कौन है बाबा?'' सम्पूर्णानंद जी ने उत्तर दिया - ''वह देवदासी! मंदिर की नर्तकी है।''

कुछ समय बाद माया ने बाबा के पग पकड़ लिये और कहने लगी - ''मैं भी नाच सीखूँगी। मैं भी ठाकुरजी के आगे नाचूँगी। कितना सुन्दर नाच है!''

माया पर स्नेह से हाथ फिरा कर सम्पूर्णानंद जी कहने लगे - "हट पगली, प्रभु के सामने हर कोई नहीं नाच सकता है? वह अधिकार केवल देवदासियों का ही है।"

* * *

माया चुप रह गई। उसका चेहरा मुरझा गया। उसे समझ नहीं आया कि ठाकुर जी के सामने हर कोई क्यों नहीं नाच सकता?

बाहर चांद की किरणें बिखर रही हैं। योगासन से उठने पर भी सम्पूर्णानंद का मन शांत नहीं था। साधारण संसारी की तरह अनिद्रा में रात बीती। माया चिंता का विषय बन गई है। माया को संन्यास की दीक्षा दे कर अंतेवासिनी की तरह वे रखना नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि उपयुक्त शिक्षा देकर अच्छे लड़के के हाथ में दे दें। माया संसार बसाये। यह भी एक साधना है। इस साधना के बल से माया पति के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होगी, मगर यही बात तो जगन्नाथजी नहीं चाहते। तभी तो पटना से बुला लाये हैं अपने पास।

लगता है माया उनके मन को मायासंसार में जकड़ रही है, इसलिए वे उससे मुक्ति नहीं चाहते, यह बात भी अनुचित नहीं। खिले हुए फूल की तरह माया को देखते ही उसके भविष्य के बारे में चिंता उभर आती है। किशोरी माया एक दिन बड़ी होकर सुन्दर लावण्यमयी होगी, इसमें संदेह नहीं। यह रूप लेकर मठ में बचना उसके लिए कठिन हो जाएगा। सम्पूर्णानंद तो जिन्दगी भर नहीं रहेंगे। जो चीज किसी की नहीं है, उसे अपनाने के लिए सब लोगों की भीड़ एकत्रित हो जाती है। कौन जानता है माया का क्या हाल होगा?

अपनी चिंता में वे खुद हँसने लगे। वे कौन हैं? सम्पूर्णानंद असम्पूर्ण दुनिया में एक छोटा - सा जीव। आज है, कल नहीं। परंतु वह लीलामय जगन्नाथ तो युग - युग से निराश्रय के आश्रयदाता, पथ हारे के साथी के रूप में विराज रहे हैं। वही माया को पथ दिखायेंगे। सहायक होंगे। अब वे माया के बारे में बिलकुल चिंता नहीं करेंगे। संन्यासी के लिए इतनी चिंता अनुचित है।

सम्पूर्णानंद जी कोठरी छोड़ बाहर आ गये। चांदनी चारों ओर बिखरी है। सुनसान रात की गूंज सुनाई दे रही है। अचानक मधुर सी आवाज से सम्पूर्णानंद उत्कंठित हो उठे। यह तो आरती के समय की घंटी या रात की गूंज नहीं। क्या हो

सकता है? उनके पैर पूजाघर के पास थम गये। पूजाघर खुला। प्रदीप से थोड़ा - सा प्रकाश फैला है। सम्पूर्णानंद चकित खड़े रह गये हैं।

यह क्या देख रहे हैं? क्या देख रहे हैं यह? बड़दाण्ड से खरीद कर लायी गयी 'हरेकृष्ण हरे राम' नामवाली की साड़ी पहने है माया। छोटे हाथ जुड़े हैं, तालहीन - छंदहीन दोनों पैर नाच रहे हैं। दोनों आँखें राधामाधव की ओर हैं। मुख पर शांत भाव है। आधी रात में राधामाधव के सिंहासन के नीचे योगलीन तपस्वी की तरह दिख रही है। प्रभु की दोनों आँखें नींद से भारी हैं। भक्ति गदगद हो सम्पूर्णानंद ने कहा - 'प्रभु, मेरी चिंता का निवारण हो गया है। हे लीलामय, सब के स्पंदन में तुम ही कार्य, तुम ही कारण हो!'

तुम ही किशोरी माया के रूप में नृत्यरत, वृद्ध सम्पूर्णानंद के रूप में भाव विह्वलित हो!

''त्वं स्त्री त्वं पुमान सि,
त्वं कुमार अथवा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वंचिसै,
त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः

माया पूजागृह से निकल कर अपनी कोठरी की ओर चली गई। माया की आँखों में बचपन न था और न अन्य दिनों की तरह बाबा के पास फरियाद की आकांक्षा। चुलबुली माया की आँखों में शांत भाव भरा था। शायद देवदासी के नृत्य में वह रम गई है। पूजागृह के पास प्रणाम कर द्वार पर खड़े सम्पूर्णानंदजी गुनगुना रहे थे। उसके बाद वे अपनी कोठरी में चले गये।

* * *

रात का तीसरा पहर। धुंधली चांदनी छाई है। चांदनी की रोशनी ने आकर 'जेगाघर' में कुछ चेहरों पर उजाला कर दिया है। उनमें से एक युवक के चौड़े कपोल और सुगटित कंधे चांदनी में चमकते दिखाई दे रहे हैं। ''चिट्‌ठी पढ़ लें..'' पत्र पढ़ने के लिए दूसरे ने दीप जलाया। सभा का प्रतिनिधित्व करने वाले ने उसको बुझा दिया।

धीरे से कहा - "पुलिस हमारे ऊपर कड़ी नजर रखे हुए है! चारों तरफ पहरा है। उजाला देख कर कोई आ जाए तो भंडाफोड़ हो जाएगा।"

प्रशान्त ने कहा - "पुलिस क्या हम से बढ़ कर है?" हम दिन में तारे दिखा देंगे। आने दो उसे। हम कौन हैं, बता देंगे। जरा - सा मुस्करा कर कहने लगा - 'मैं जानता हूँ, सोमनाथ! इसी भरोसे इतनी रात में तुम लोगों को बुलाया।' सोमनाथ ने सवाल पूछा - "हमें करना क्या होगा?"

युवक ने कहा - "निमापाड़ा से चंदनहजूरी ने चिट्ठी दी है हमारा कृषक आंदोलन असफल करने के लिए। अंग्रेज पुलिस कड़ी नजर रख रही है। सभा में हमें कीड़ों की तरह मार देगी, इसलिए हमें भी उनका मुकाबला करना होगा। तुम लोगों में से कौन रणपुर जाकर दलबेहरा से गोलियाँ और नयागढ़ के देवता से हथगोले लेकर रथयात्रा के पहले आकर पहुँचेगा। सब लोग उठ कहने लगे - 'हम तैयार हैं।'

अखाड़े (जेगाघर) के सारे मल्लों पर तीखी नजर डाली युवक ने। उनमें हरेक द्वापर के भीम, त्रेतायुग के वीर श्रेष्ठ हनुमान के बराबर हैं। कमर में वज्र कच्छा है। उसके ऊपर लाल गमछा कस कर बांधा गया है। शरीर में शतसिंह का पराक्रम है। आँखों में गहरा आत्मविश्वास झलक उठता है। देश को आजादी दिलाने के लिए सब ने कमर कस ली है। संकल्प किया है।

सब तलवारबाजी, बर्छी चलाने, बर्छा फेंकने और गदा चलाने में निपुण हैं। इस 'जेगाघर' का कण - कण उनकी शक्ति का साक्षी है। हर शाम पहलवानों की 'रे'. .... 'रे' ध्वनि, अभ्यास, कसरत और दण्डबैठक से 'जेगाघर' मुखरित हो उठता है।

सोमनाथ की आग-सी चमकती हुई लाल आँखों को देख युवक ने कहा - 'सोमनाथ, तुम्हें यह काम सौंपा हैं। तुम जिसको लेना चाहो, लेकर नयागढ़ चले जाओ। कैसे जाओगे, खुद सोचना है। मगर कैसे लौटोगे, वे बतायेंगे। सावधान, हथगोले जैसे भी हो, रथयात्रा के पहले पुरी में पहुँचने चाहिए।

नीलमणि महारथी की ओर देख कहा - "एक - दो दिन में रणपुर में दलबेहरा से मुलाकात करना। जाते समय मुझसे चिट्ठी ले लेना। तुम भी रथयात्रा के पहले लौट आओगे। मल्लों में सब से जो छोटा है, उसकी आँखें झरोखे की ओर थीं। उसकी आँखें और नाक सिकुड़ने लगे थे। चौड़ा सीना और बांहें आक्रोश में थिरक रहे थे। उसे देख कर युवक ने कहा - "रघु पाइकरा, तुम सुबह पिपली जा कर हमारा

कार्यक्रम तय कर आना। वहाँ के हाल कैसे हैं, वह तुम्हें पता करना है। ठीक समय पहुँच जाना। सब सावधान रहें!"

अखाड़े में सारे मल्ल मुगदर तथा तलवार की ओर हाथ बढ़ा रहे थे। युवक ने उन लोगों को रोक लिया। देखो, गोपनीय ढ़ंग से यह कार्य करना होगा। ये ढाल, तलवार, मुगदर, तोप के आगे कुछ भी नहीं। खबर है कि खजाना लेकर गाड़ी कटक जा रही है। समझ रहे हो? जरूरत पड़े तो हथगोला काम में लेना। तलवार वगैरह नहीं। रघुपाइकरा, सोमनाथ और नीलमणि के अलावा उनमें आरत - सुआर, मधुदास, हरिदत्त, वाहिनी पति, वामन बलियार सिंह और गोपीनाथ आचार्य आदि पहलवान भी थे। सब ने एक स्वर में कहा - "आप निश्चिंत रहिये! अपनी सम्पत्ति अंग्रेजों से छीनने के लिए श्रीजगन्नाथजी ने हमें यथेष्ट शक्ति दी है। वे हम से ज्यादा नहीं होंगे। हम अन्याय का मुकाबला करेंगे।"

हाँ, युग - युग में उन्होंने अन्याय का मुकाबला किया है। उनके पूर्वजों ने मराठों और मुगलों से जूझने के लिए इन 'जेगाघर' में इकट्ठे होकर युद्धाभ्यास किया है। गजपति महाराज ने काफी धन इसके लिए दिया था। ये लोग मराठा, यवन, मुगलों और फिरंगी आक्रमण से देवता और मंदिर की सुरक्षा करते रहे हैं। युगों से इन लोगों ने अपने जीवन को श्रीमंदिर और श्री जी पर होने वाले आक्रमणों से बचाने का व्रत लिया है।

आज वे लोग जेगाघर में इकट्ठे हुए हैं। ओड़िशा के दरिद्र किसानों से जो 'कर' वसूल किया जा रहा है, उसके खिलाफ लड़ रहे हैं। ब्रिटिश राजकोश में ओड़िशा से बहुत संपत्ति गई है। अब और नहीं। ये राजा और जमींदार अपनी जागीर और शान शौकत बनाये रखने के लिए घूस में अंग्रेजी सरकार को पैसा दे रहे हैं! ये जुल्म कर गरीबों से धन वसूल रहे हैं। 'भेंट, बेगार, गाछ और माछ' इन चार शब्दों से वे लोग अपना कर्तव्य अदा कर देते हैं। असहाय जनता का अपनी जमी पर कोई अधिकार नहीं रहा। उनके पेड़ों के फल और तालाब की मछलियाँ राजा की हैं! मेहनत से उन्हें जो मिलेगा, भेंट में वह राजा व जमींदार को देना प्रजा का धर्म है। वे खून - पसीना एक कर विलास - महल बनवायेंगे, हमाम खोदेंगे। शिकार के लिए जाने पर राजा का बोझ संभालेंगे! कुछ पालकी उठायेंगे। कुछ ढोल बजा कर शिकार को घेरेंगे। कभी - कभी तो वे शिकार पर जा कर लौटते तक नहीं। यह सरासर अन्याय है। इसका प्रतिवाद कर प्रजा में विप्लव के बीज बोये हैं। प्रजा और किसान 'कर' देने से इनकार कर चुके हैं। इन राजद्रोहियों को जेल में डाल अंधेरी कोठरी में सता कर

मारते हैं, ऐसी चर्चा है। ओड़िशा के कोने - कोने में यह आग भभक रही है।

युवक खड़े होकर कहने लगा - "मेरा विश्वास है कि मिल - जुल कर देश के लिए काम करेंगे, तभी अंग्रेजों के फंदे से हमें छुटकारा मिलेगा। वरना जिन्दगी भर गुलाम बने रहेंगे। स्वदेशी हो या विदेशी, हम किसी के गुलाम नहीं। हम स्वाधीन हैं, स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।"

अपनी - अपनी जगह से उठ कर सब ने महावीर जी के पांव छूकर आशीर्वाद मांगा! "प्रभु बजरंगबली देश के लिए मर मिटने की हमें शक्ति दीजिए! और बज्र से भी कठोर बना दीजिए।"

उसके बाद महावीर सिंदूर लेकर माथे पर लगाया और 'जय जगन्नाथ' के नारे लगा रातों रात चले गये। अंत में अखाड़े को बंद कर अपने घर न जा कर वह युवक बड़दाण्ड की ओर चल पड़ा।

सुबह की हवा उन्हें सिहरा रही थी। आँखों में नींद भर आयी, पर यह सोने का समय नहीं। सामने बहुत काम हैं। बाँए कंधे झोले का वजन संभाल न सके, इसलिए बांये से दाहिने की तरफ कर लिया। जल्दी - जल्दी चल रहे थे। चलने के लिए दूरी बहुत है। रात समाप्त हो रही है। हाँ, इस रात के खत्म होने में और देर नहीं। सामने से जगु तिवारी ने देखा - "नहीं, ये तो अंधेरे में सोने वाले आदमी नहीं हैं।" पास आकर पूछा - "कौन, भुईंमल जी? युवक ने चौंक कर कहा - "कौन?"

- "हजूर, मैं जगु तिवारी हूँ। इतनी रात में! आप क्या अखाड़े से लौट रहे हैं?"

जरा चैन से युवक ने उत्तर दिया - "हाँ, तिवारी जी! इस साल रथ यात्रा में लंका दहन मंचस्थ होगा। लीला की यह प्रस्तुति रात भर चल रही थी।" इतना कह कर नरोत्तम भुईंमल कहीं खो गये।

तिवारी देख रहे थे। बड़े अद्‌भुत हैं ये नरोत्तम भुईंमल जी! अखाड़े को अपना घर मान कर रात - दिन स्वांग, नाटक, लीला सिखा रहे हैं। उधर उनकी अपनी नरणगढ़ की जमींदारी उजड़ जाने को है। बाप ने तो नाच - गाने में मग्न रह कर इंदु माहारी की कोठी में गुजारते हुए नरणगढ़ के महल को थोथा समझ लिया था। ये भी उन्हीं के बेटे हैं, परन्तु जगन्नाथजी की कृपा से माहारी की कोठी में रात बिताने की बजाय अखाड़े में गुजार देते हैं। जगन्नाथजी, आप ही उनकी रक्षा करने वाले हैं। भुईंमल को सुदर्शन चक्र की ओट में रख कर सुरक्षित रखिए। ठाकुरजी की स्नान

नीति का काम आज उन पर है, इसलिए डग भरते चले गये वे मंदिर की ओर।

उस समय भोर का तारा नीलचक्र पर फहराती पताका से विदा ले रहा था। सिंह द्वार के पास पहुँच कर जगुतिवारी जी खड़े रह गए। मन ही मन कहने लगे-यह तो बड़ी गलती हो गई! कल रात से ठाकुरजी ज्वर में होंगे (अणसर)। आज तो पंडे दइतापतियों पर यह भार रहेगा।' अभ्यासवश चले आये थे प्रभु की सेवा करने। सारी बातें भूल गए थे। अरुण स्तम्भ के पास प्रणाम कर घर की ओर वापस लौट गये।

आकाश में चारों ओर कोमल उषा किरणें बिखर रही हैं।

मुक्ता माहारी श्रीजगन्नाथजी से कह रही थी - "प्रभु, आज का दिन आप की इच्छा से ही नियंत्रित है।" बाहर दरवाजे पर आवाज हुई। मुक्ता का ध्यान टूट गया। फिर सुना। पता चला कोई पीछे के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है।

मुक्ता ने दरवाजा खोल दिया। वह अंदर घुस आया। मुक्ता - 'कौन' आगे कुछ कहे, उससे पहले ही उसने ढकी हुई चादर उतार दी।

मुक्ता कहने लगी - "सुबह होने वाली है, कोई देख ले तो?"

उसने कहा - "उससे पहले ही मैं चला जाऊँगा। इसको संभाल कर रखिए। कंधे से वजनदार झोला निकाल रख दिया और दरवाजे से ही लौट गये।

अधखुले दरवाजे से मुक्ता देख रही थी - नरोत्तम भुईंमल तूफान की तरह आये और बिजली की तरह लौट गये। कोमल आलोक उनके घुंघराले केशों और कंधे पर छा गया है। थके - मांदे अंग तांबे की तरह दीख रहे हैं। मुरझाये चेहरे पर चिंता की अनेक रेखाएं। नरणगढ़ का प्रासाद छोड़ कर यायावर की तरह घूमना! यह मेरे ही खून की दूसरी धारा है। उन्हें दरवाजे से घर में अंदर की ओर नहीं बुला सकी। आंचल से पसीना पोंछ स्नेह से यह भी कह नहीं सकी - "कितने दिन ऐसे पागलों की तरह घूमेगा, भैया?"

गहरी सांस लेते हुए आँखों से दो बूंद आँसू टपक पड़े। आँसू पोंछ, दरवाजा बंद कर लौटी। उस वक्त दत्ता उसे अविश्वासी की तरह देख रही है।

उसकी आँखों में आशा और विश्वास - भंग के यंत्रणादायी प्रश्निल भाव उभर रहे हैं। "वे कौन हैं दीदी? रात भर तुम्हारी कोठरी में रह कर सुबह जा रहे हैं? तुम ने यह क्या किया, दीदी?..... जगन्नाथजी को धोखा देना क्या ठीक है?"

दत्ता कुछ भी प्रश्न नहीं कर रही थी, मगर मुक्ता को ऐसा लगा। दत्ता वहाँ

से चली गई। सूखी हँसी खिल गई मुक्ता के अधरों पर। सोच रही थी कि बहुत कुछ बाकी है। इस पथ में तू पूरी तरह अकेली और निरुपाय है! धैर्य के साथ चलने के सिवा कोई रास्ता नहीं। तेरी सहायता तो जगन्नाथ जी ही करते हैं। इतने में ही टूट जाने से कैसे चलेगा! मुक्ता ने वह थैली लेकर अँधेरी कोठरी में अमूल्य संपदा की तरह छिपा कर रख दी। आँगन में जाकर हाथ जोड़ गुनगुनाती रही।

"स्वयं रक्षा करो! मैं सिर्फ निमित्त मात्र हूँ।" आँसू से समर्पित स्वर में प्रार्थना की उसने। हे प्रभु, सदा तुम मेरे स्वामी हो और मैं तुम्हारी दासी हूँ। तुम्हीं मेरी गति, स्थिति और मुक्ति की निराकार सत्ता हो! पीछे मेरी व्यर्थता और विडंबना है। सामने अंतहीन, दिशाहीन अवसादपूर्ण जिन्दगी फैली है। उस गति पथ में स्थित प्रदीप की झलक दिखाई दे रही। आशा तुम्हारे लिए है। सिर्फ तुम्हें पाने की अभिलाषा प्रियतम! आशा में मुझे जीने के सौभाग्य से वंचित न करो!

* * *

स्वयं को संभाल रही थी दत्ता। इस घर में रोने का अधिकार भी नहीं है। यह उसका नहीं, जिस मुक्ता माहारी को अपनी आराध्य देवी का सम्मान दे बैठी है, उसके वह योग्य नहीं है। कब से वह झूठे आदर्श की पूजा करती रही। मुक्ता माहारी तो एक मामूली नर्तकी है। उसके पास सामान्य नारी की आशा और कामना भरपूर है। वह भी एक देह सर्वस्व मानवी ही है। देहातीत, इंद्रियातीत व्यक्तित्व नहीं।

नरोत्तम भुईंमल को उसने कई बार यहाँ आते देखा है। सहज बातचीत कर वे लौट जाते हैं। उन पर अविश्वास करना दूर, उनके व्यक्तित्व या कामों में तनिक संदेह भी नहीं किया जा सकता।

परंतु आज! उसकी आँखें धोखा तो नहीं खा रही! मुक्ता माहारी विरहिणी की तरह खड़ी है और नरोत्तम भुईंमल बिजली की तेजी से जा रहे हैं। यह आँखों का धोखा नहीं है।

उसने सुना है, देखा है, देवदासियाँ साधारण लोगों की तरह पति - पत्नी होकर न रहने पर भी धनी आदमियों की रखैल बन जाती है! इसलिए श्रीजी की सेवा से हाथ धोना पड़ता है। कोई - कोई राजा, राजगुरु या सामंत राजा का मन बहला कर

ज्यादा पैसे कमा लेती हैं। देवभोग्या देवदासी, देवता से पूजक से जमींदार और फिर आज आम लोगों के लिए भोग्या बन गई हैं! कोई यह सेवा त्याग कर किसी युवक के साथ दूसरी जगह चली जाती है। दत्ता उन लोगों को दोष नहीं देती, क्योंकि वे श्रीजगन्नाथजी की पत्नी बनती हैं जीविका निर्वाह के लिए, उनका वह जीवन नहीं होता। वे हाड़ - मांस की सामान्य नारी हैं। प्रौढ़ा होने से पहले अपना छोटा - सा संसार बसाने का सपना बार - बार उन्हें विचलित करता है। मैं मालव के साथ जैसे जीने का सपना देखती हूँ, वैसे ही हैं यह भी, परंतु मुक्ता माहारी को तो सबने अनन्या और असाधारण कहा है।

संसार की बात दूर रही, कई प्रलोभन ठुकराती रही हैं। आज प्रौढ़ावस्था में यह मतिभ्रम किसलिए? गलती करने की उम्र बहुत पीछे छूट गयी है। दत्ता के मन में बहुत से प्रश्न मचल रहे हैं। अपने ही लोग अगर रास्ता भूल जाते हैं तो उनके लिए हृदय ऐसे ही टूटता है। नहीं, वह पल भर भी नहीं रह सकती। मुक्ता माहारी की छत के नीचे सांस भी नहीं ले सकती। मालव का द्वार उसके लिए खुला है।

इस कारण मालव अगर पूछेगा तो दत्ता क्या उसके सामने यह निषिद्ध अध्याय खोल सकेगी? यह सही है कि मालव उसका प्रेमी है, परंतु मुक्ता माहारी उसकी श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से बहुत ऊँची हैं। इसे तो अस्वीकार किया नहीं जा सकता। दत्ता के मन में द्वंद्व, प्रश्न और कई उत्तर भर गये हैं। इस द्वंद्व से उसे कौन उबार सकता है? मालव, मुक्ता माहारी या स्वयं जगन्नाथजी? मुक्ता माहारी को लेकर जो द्वंद्व है, किसी के सामने कहा नहीं जा सकता। मुक्ता माहारी से भी यह प्रश्न नहीं पूछ सकती। तब? कभी तो अंतर खोल कर, हृदय का प्रेम और आत्मा की व्याकुलता देकर उसने जगन्नाथ जी को नहीं बुलाया। तो आज कौन उसे राह दिखायेगा? अंधकार से उजाले की ओर, विषाद से आनंद की ओर। दत्ता व्याकुल होकर नीलचक्र को देख कर प्रार्थना की भंगिमा में गुनगुना उठी। एक बार आत्मसमर्पण का प्रशांत भाव मन में आता। मैं पापिन हूँ कि एक बार भी बुला नहीं सकती। मैं आज कैसे कहूँ कि तुम मेरे ईश्वर, तुम मेरे प्रिय और तुम्हारे अलावा मैंने कभी न दूसरे को देखा, न जाना।

पूजा खत्म करके मुक्ता माहारी गा रही थी, दयणा ने आकर खबर दी - "दीदी, गोपाल दास मठ के महंत जी पधारे हैं।" आंचल माथे पर कर मुक्ता ने प्रणाम किया।

बिना भूमिका के सम्पूर्णानंद जी ने कहा - "आज तुम्हारे पास एक बड़े काम से आया हूँ। तुम्हारी स्वीकृति चाहता हूँ।" हाथ जोड़ कर मुक्ता ने कहा - "कौन सा

काम? मैं आप की सेवा कर सकूं, यह मेरा सौभाग्य होगा। महंत जी आज्ञा तो दीजिए।"

सम्पूर्णानंद जी ने माया का इतिहास बता दिया और मुक्ता की ओर देखने लगे - "तुम तो माहारी श्रेष्ठ हो, इसलिए मैं तुम्हारी सलाह लेना चाहता हूँ। माया की माया में मैं जकड़ा हूँ। उससे छुटकारा पाने का उपाय.....?"

नम्र और मीठे स्वर में उसने जवाब दिया - "पारंपरिक नृत्य - संगीत का विद्यालय खोलने का जिक्र किया था महाराज के सामने। महाराज ने अपना आश्वासन पूरा किया है। बालिसाही में एक मकान दिया है उस विद्यालय के लिए। पिछले महीने से दीक्षा दी जा रही है। आप की इच्छा हो तो उसे वहीं सिखा सकते हैं। माहारी संप्रदाय के अलावा दूसरे लोगों की बेटियाँ भी वहीं सीख रही हैं। कल से वह स्कूल आये और मैं उसका दायित्व लेती हूँ।"

सम्पूर्णानंद ने प्रसन्न होकर कहा - "बात सिर्फ इतने में ही खत्म हो जाती तो मैं आज इतनी दुविधा में क्यों पड़ता। बात यह है कि जगन्नाथजी की इच्छा है कि माया देवदासी बने। वह जगन्नाथजी को ही समर्पित है। उसका भार कौन देवदासी लेगी, यह चिंता का विषय है। नासमझ की तरह सम्पूर्णानंद को देख रही थी मुक्ता। शास्त्रज्ञान में भरपूर, देव भक्ति में अद्वितीय और संन्यास दीक्षा में स्वयं सम्पूर्ण योगी! सम्पूर्णानंद की शिष्या बनने में मुक्ता को क्या रुकावट है? वह देवदासी क्यों बनना चाहती है। उन्होंने स्निग्ध स्वर में कहा - "पहले का समय और था। पृथ्वी पर पाप का भार बढ़ रहा है। मठ और मंदिरों में पहले की पवित्रता, निष्ठा, भक्ति नहीं। पाप, अन्याय और अपवित्रता के काले दाग माया के पवित्र आंचल पर लगे, इसलिए हम चिंतित हैं। धर्म का नाम लेकर मंदिरों में युवक और युवतियाँ बुरे कामों में लगे रहते हैं। भय होता है कि मेरी मृत्यु के बाद माया की सुरक्षा कौन करेगा? मुक्ता माहारी, मैं विनती करता हूँ कि माया को अपने आंचल में छिपा लो।" सम्पूर्णानंद जी की आँखें भर आई। गहरी सांस लेकर कहने लगे - 'जगन्नाथजी की जैसी इच्छा, उसे जहाँ जिस तरह रखें।'

मुक्ता किसी बेटी को अपना कर उसे देवदासी दीक्षा देकर देवदासी बनाएगी, यह बात उसने सोच रखी थी। मगर आज चौंक गई। क्रमशः क्षय होती जा रही परंपरा जैसे रूप बदलती जा रही है, उसे लक्ष्य कर वह आतंकित हो उठी। इसी कारण तो उसने 'माहारी नृत्य - संगीत' सिखाने की योजना बनायी है। हाड़ - मांस की देवदासी शायद कभी मंदिर के स्थापत्य में इतिहास या किवदंती बन कर रह

जाएगी, परंतु जीवित रहेंगे कला के कालजयी हस्ताक्षर, पारंपरिक नृत्य की हर मुद्रा में।

आखिरी सांस तक वह कला को बचायेगी। यह एक तपस्या है। इस तपस्या से ही ईश्वर प्राप्ति है। ऋषियों जैसी तपस्या और साधना।

शांति से मुक्ता ने उत्तर दिया - "मगर जगन्नाथजी की इच्छा संन्यासिनी बनन है तो उस आदेश को मान लेना मैं अपने लिए सौभाग्य मानती हूँ। कल से माया मेरे पास रहेगी। शुभलग्न देख कर मंदिर में दीक्षा दिलाऊँगी। आप आज्ञा दें तो कल मैं जाकर ले लाऊँगी।

सम्पूर्णानंद जी ने धीरे से कहा - "नहीं, बेटी! महंत खुद ही यहाँ लेकर आयेंगे। उसके बाद तुम्हारा दायित्व और साँवरे की इच्छा।" महंत पूर्ण रूप से मायामुक्त हो गये। उनका गला भर आया।

मुक्ता सोच रही थी - प्रेम और ममता आदि सिर्फ शब्द नहीं हैं, ईश्वर प्राप्ति का पथ हैं। पथ अनेक हैं, मगर प्राप्ति एक है। सारी नदियाँ जैसे सागर में जा गिरती हैं, उसी तरह सारे जीवन स्रोत महाजीवन स्रोत में आकर एकाकार बन जाते हैं। महंत को बिदा करके मुक्ता ने दयणा को बुलाया।

आंचल से हाथ पोंछते हुए दयणा ने पूछा - "दीदी, क्या आपने बुलाया?"

मुक्ता चारों तरफ देख कर कहने लगी - "दत्ता कहाँ है? सुबह से कहीं दिखाई नहीं दे रही?"

दयणा ने कहा - "कोठरी में कुछ कर रही है, पता नहीं क्या? बुलाऊँ?"

"नहीं, अभी नहीं। मैं बाहर जा रही हूँ, दत्ता से कह देना।" इतना कह कर देहरी पार कर मुक्ता चली गई।

संगीतज्ञ गुरुपद दास ने बेवक्त देख घबरा कर प्रश्न किया - "बेटी, सब टीक - ठाक तो है?"

"आप के आशीर्वाद से सब ठीक है। आज आप के पास कुछ मांगने आयी हूँ।" गुरुपद दास और घबरा गये।

"तुम्हें देने के लिए मेरे पास क्या है बेटी! साँवरिया की कृपा से तुम्हारे पास क्या कमी है? मेरे पास जो कुछ था, वह तुम्हें दे दिया है। द्रोणगुरु से भी बलशाली योद्धा हैं अर्जुन। उसको छोड़ कर मेरे पास है ही क्या? बासेली बस्ती में घास - फूस

से बनाये घर के अलावा मेरे पास कुछ नहीं? भिक्षुक से फिर भिक्षा लेनी है?''

''इसके अलावा आप के पास जो अनमोल धन है, उसे मांगने आई हूँ। वही मालव! दत्ता को बहू बना कर लाने में आपको कोई एतराज है? अगर है, तो भी उन दोनों को आप ठुकरायेंगे नहीं।''

आनंद विभोर होकर गुरुपद दास कुछ क्षण चुप रह गये। उठ कर स्नेह से मुक्ता से कहने लगे - ''इससे बढ़ कर मेरे लिए खुशी की बात और क्या हो सकती है? देवदासी की दीक्षा न लेकर भी तापसी की तरह अपना जीवन बिता रही है। उसे बहू बनाने में मुझे क्या हर्ज है? मुझे लग रहा है कि वे आपस में आकर्षित हैं। वही बात मालव के मुख से सुनने की मैं प्रतीक्षा में था। उसके बाद मैं खुद जाकर तुमसे उसका हाथ मांगता। अच्छा हुआ तुम आ गईं।''

गुरुजी की चरण धूल लेकर मुक्ता जाने के लिए तैयार हो गई। उसने कहा - 'सब कुछ तो साँवरे की इच्छा है। हम चलते हैं। दत्ता के विवाह के लिए महाराजा के पास दरख्वास्त करनी होगी। उसके बाद पंडित जी को बुला कर शुभ दिन तय करना होगा।'

गुरुपद दास जी ने श्री जगन्नाथ का प्रसाद लाकर दिया और कहा - ''मालव की मां होती तो तुम्हें आज इस तरह नहीं छोड़ती? मैं बूढ़ा हो गया हूँ, क्या खातिर करूँ? श्री जगन्नाथजी के प्रसाद से ही मुँह मीठा कर लेना।''

आसमान पर डूबते सूरज की किरणें छा गई हैं। लौटते वक्त उसे लगा, धूप जैसे चांदनी बन गई है। जादूगर ने क्षयशील समय को जैसे यौवन रूपसी में बदल डाला है। भरा - भरा मन, कितना अच्छा लग रहा है आज!

असहाय आश्रित नहीं, प्रिय बांधवी, स्नेही अनुजा और लाड़ली बेटी की तरह आज तक उसे देखती आई है। किसी एक संबोधन में उसे नहीं बांधा जा सकता। सारे संपर्कों का मधुर मिलन दत्ता के पास मौजूद है। दत्ता सहेली, बहन और बेटी भी है। आज उसका विवाह तय हो जाने की खुशी जितनी है, चले जाने की शून्यता में दुख भी उतना ही लग रहा है। वह घर लौट रही थी। फिर से पीछे मुड़ गई। एक तरफ हुआ शून्य दूसरी तरफ भर जाता है।

कोई चीज इस संसार से बिलकुल खो नहीं जाती। पार्थिव, अपार्थिव, सत्य या कल्पना जो कुछ भी हो। इसलिए तो यह पृथ्वी इतने विरोधाभाव रहने पर भी इतनी सुन्दर और आनंदमयी है।

मुक्ता को देख कर सम्पूर्णानंद जी चौंक गये। नन्हीं - सी गुड़िया उनके पास खड़ी थी। मुक्ता ने स्नेह से उसे चूम लिया।

सम्पूर्णानंद जी को प्रणाम करने के बाद उसने कहा - "मुझे इस वक्त देख कर आप चौंक गये होंगे। आज मेरा आना नहीं था, इसलिए न?

सम्पूर्णानंद जी का चेहरा खुशी में भर गया। स्निग्ध स्वर में कहा - "मनुष्य के जीवन में कुछ भी असमय नहीं होता। समय पर ही हर शुभ मुहूर्त की संभावनाएँ छिपी रहती हैं। उसे पहचानने और अपना लेने में जीवन की सार्थकता है। यह महंत तुम्हारी प्रतीक्षा में था।"

माया की ओर देख कर सम्पूर्णानंद जी ने कहा - "ये नृत्य प्रवीणा मुक्ता माहारी हैं। तुम इसके पास रह कर नृत्य सीखोगी।"

माया की आँखों में जैसे आषाढ़ के घने मेघ छा गए हैं। उसके मन में गुथे भावों का वेग है। आसन्न वर्षा की सूचना मिल रही है। उसके होंठ चुपचाप थे, परन्तु दृष्टि भावमय बन गयी। सम्पूर्णानंद जी ने माथे पर हाथ फिरा कर कहा - क्या हुआ?

'क्या हुआ? ऐसा क्या है जो आप नहीं जानते और मुझसे पूछ रहे हैं? गंभीरता से दोनों तरफ देख कर कहने लगी - "मैं नाच सीखूँगी, इसका मतलब यह नहीं कि आप को छोड़ कर दूसरों के पास जाकर रहूँ। आपने खुद तय कर दिया? यह आकर क्यों नहीं हमारे पास रहतीं?"

सम्पूर्णानंद जी ने माया को सीने से लगा दिया। कुछ समय आँखें मूंद लीं, गहरी सांस छोड़ी। धीरे - धीरे कहने लगे - "यह संभव नहीं है बेटी। वह तो देवदासी है। जगन्नाथजी की विवाहिता पत्नी। इस मठ में पधारी हैं। यह पुण्य का फल है। तुम्हें ही जाकर उनके पास रहना होगा। उनके नृत्य - संगीत, आचार, व्यवहार और प्रभु की सेवा सब कुछ सीख कर जगन्नाथजी के लायक बनना होगा। तू भी मुक्ता माहार की तरह एक दिन जगन्नाथजी की विवाहिता पत्नी होगी। घुंघरू बांध कर नाचते समय जगन्नाथजी भी प्रसन्न होंगे। जगत का बंधन तुझ से दूर रहेगा। प्रभु की पत्नी बन कर तू जगत की आदरणीय होगी। उस समय यह महंत बाबा न होकर बेटा बन जाएगा। तुझे मां कह कर पुकारेगा।"

सम्पूर्णानंद जी की बातें माया चुपचाप सुनती रही। मन में गुन रही थी। उसका सरल मन समझ नहीं पाता था कि जगन्नाथजी की पत्नी और नृत्य - संगीत प्रवीण बनने के लिए बाबा को त्याग कर दूसरी जगह रहने की आवश्यकता क्या है?

उस दिन शाम की वह बेला उसके सामने बराबर प्रतिबिंबित हो रही है। स्नान मंडप के नीचे देवदासी का वह तन्मय भाव स्मरण कर शरीर रोमांचित हो जाता है। देवदासी बनने से, प्रभु के आनंद के लिए नाच उठेगी। बाबा को छोड़ने से तो जरूर दुःख होगा, मगर क्या किया जाए? माया मन ही मन सोच रही थी।

माया का चेहरा देख कर सचमुच सम्पूर्णानंद जी ने सब कुछ जान लिया। कहने लगे - "कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। तूने आकाश के मेघों पर दृष्टि गड़ा बचपन से खोना ही सीखा है। यह खोना चक्रवृद्धि दर में बढ़ कर तुझे पहुँचा देगा ईश्वर प्राप्ति, विमल आनंद और महाभाव के चरम सुख तक। तब सांसारिक सुख तेरे लिए कितना छोटा हो जाएगा!" गंभीरता छट कर माया के मुख पर हँसी की लहर खिल गई। सम्पूर्णानंद जी को छोड़ कर मुक्ता के पास आकर वह खड़ी हो गई। ताली बजा कर किलकारने लगी - "बाबा का पागलपन देखा! आप और मैं उनके पास हैं, हमसे बातें न कर वे शून्य से बातें कर रहे हैं। बाबा, आप उठिए, देवदासी को खड़ी रख कर मन ही मन बात कर हैं!"

उस समय पश्चिमी आकाश में विदाई पर्व चल रहा था। मुरझाये फूल की पंखुड़ियों में, पक्षियों में और गाय चराने वालों का वंशीवादन विदाई का संगीत लिखता जा रहा है। उस समय मुक्ता विदग्ध सी थी। कितना आमोद, कितनी उष्मा में उसका मन भरा था। अंतरंगता का रंग उसके मन में, शरीर में और आत्मा में निखरता जा रहा है।

माया का मुँह दोनों हाथों में लेकर स्नेह से कहा - "तू जितने दिनों तक इच्छा नहीं करेगी, किसी की शक्ति नहीं तुझे तेरे बाबा से अलग रखे। तू यहाँ रह। यहाँ से ही स्कूल जाएगी!"

और देवदासी नहीं बनूंगी? घुंघरू नहीं बांधूगी, नाचूँगी नहीं? प्रभु श्रीजगन्नाथजी से विवाह नहीं करूँगी? माया के स्वर में आकुल जिज्ञासा थी।

सम्पूर्णानंद जी ने माया को अपनी गोद में लेने के लिए हाथ फैलाया। फिर दोनों हाथों को समेट लिया। उदास स्वर में कहने लगे - "हाँ बेटी, अगर उस ठाकुर की इच्छा होगी तो सब कुछ होगा। उसकी इच्छा न होने पर पत्ता भी नहीं हिलता।"

माया ने कहा - "जैसे भी हो, आपको तो छोड़ कर जाना ही है। मैं यह बात तो भूल ही गयी थी। सीता राम से विवाह कर जनक जी को छोड़ कर गई, सावित्री सत्यवान से विवाह कर पिता अश्वपति को छोड़ कर गई। पार्वती दक्ष राजा को,

शकुंतला कण्व ऋषि को छोड़ कर चली गई थी। मैं जिससे भी विवाह करती, तुम्हारे पास तो न रहती। अब जगन्नाथजी से विवाह करके मंदिर में रहूँगी। क्या मैं झूठ बोल रही हूँ, बाबा?'' 'मुक्ता' को सम्बोधित करते - करते माया रुक गई। मुक्ता माहारी को समझ नहीं पायी कि क्या संबोधन करें? उस सम्पर्क की भाषा ढूंढ रही थी।

माया को गोद में लेकर थोड़ा - सा दुलारा। तेरी जैसी अच्छी लड़की झूठ क्यों बोलेगी? सम्पूर्णानंद जी माया से कहने लगे - ''तू जा! तुलसी मौसी ने गायों को दाना दिया कि नहीं, देख कर आओ।'' 'अच्छा बाबा!' कह कर माया उधर चली गई।

सम्पूर्णानंद जी ने सवाल किया - ''तुम क्या आज ही माया को लेकर जाओगी? आज ही दीक्षा ग्रहण होगी?''

मुक्ता तनिक मुस्कराई। नहीं बाबा! आज दीक्षा ग्रहण कैसे हो सकती है? आज तो प्रभु का नवयौवन दर्शन होगा। कल श्रीगुंडिचा। पहले महाराजा से अनुमति पत्र ले आते तो कल ही उसका काम हो जाता। अब बाहुड़ा तक इंतजार करना होगा। कम से कम यह पंद्रह दिन का समय है। आप किसी दिन भी माया को भेज सकते हैं। खबर देने पर मैं आकर ले जाऊँगी। इन दिनों में आप एक-दूसरे से अलग होकर रहने की मानसिक स्थिति बना लें। अच्छा हुआ कि आप संसारी न बन कर संन्यासी हैं।

गहरी सांस लेते हुए सम्पूर्णानंद जी मुक्ता की ओर देख रहे थे। भीगे स्वर में कहा - ''तुम ठीक कहती हो। अब माया के बिना यह मठ सूना हो जायेगा। कृष्ण के बिना गोपपुर। फिर भी उसे मठ त्यागना पड़ेगा। आज नहीं तो कल।'' सूरज ढल गया था। संध्या आरती का समय हो गया।

महंत से मुक्ता ने विदा ली। जाते वक्त माया को फिर देखने की इच्छा हो रही थी, परंतु वह इच्छा उसने व्यक्त नहीं की। इतनी उत्कंठा और अनुराग लेकर धूल भरी धरा पर मानव स्वप्न रचता है परंतु यदि ये सब अभक्ति में रूपांतरित हो जायें तो मानव के लिए दुख का कारण बन जाते हैं।

घर में घुसते ही दयणा के उत्कंठित प्रश्न ने मुक्ता के सारे शरीर को झिंझोड़ कर रख दिया। रीढ़ में जैसे शीतल बर्फ का स्रोत बह रहा है। दीदी, दत्ता घर में नहीं है! पता नहीं कहाँ चली गई। दयणा का गला भर आया। चारों तरफ ढूंढ लिया है। पता नहीं कहाँ चली गयी!

मुक्ता देर तक खड़ी रही - बिना बोले तो दत्ता कभी नहीं जाती..... मुक्ता

ने मन दृढ़ कर कहा - 'दत्ता नहीं! इतना सुनते ही घबराना शोभा नहीं देता। दत्ता कोई बच्ची नहीं है, जहाँ भी जाएगी, वहाँ से सुरक्षित लौटने की उम्र व बुद्धि है दत्ता में।' दयणा को देख कर मुक्ता ने कहा - "इसमें घबराने की क्या बात है? वह कोई बच्ची नहीं, खुद लौट जाएगी।" दयणा से कहते हुए मानो वह स्वयं को सांत्वना दे रही थी।

दयणा वहाँ से चली गई। उसके बाद मुक्ता खुद दत्ता की कोठरी में गई। कुछ दिनों से वह अनमनी रहती है। इधर कल - कल बहती हुई नदी क्षीण स्रोत बन गई। इसके लिए क्या वह जिम्मेदार नहीं?

देवार्चना, नृत्य - संगीताभ्यास और धर्मग्रंथ अध्ययन के साथ इस नयी दुनिया की जो झलक मिली है, उसमें पता नहीं कब सारा समय चला जाता है। पहले की तरह वह दत्ता के साथ बातचीत नहीं कर पाती। उसके लिए जरा भी समय नहीं दे पाती।

परंतु दत्ता तो अब निरसंग नहीं है। बाल साथी मालव की आँखों में दत्ता के लिए अनुराग और दत्ता की प्रणय विभोर दृष्टि मुक्ता से छुपी नहीं रही। दत्ता का खयाल है कि दीदी कुछ जानती नहीं। पहले मुक्ता ने कुछ पूछा ही नहीं - इसलिए भी दत्ता ने मालव के बारे में कुछ बताया नहीं। मान कर रही है, करने दो, दत्ता का इतनी बड़ी दुनिया में और कौन है मेरे सिवाय! वह गुस्सा हो रही है, होने दो। मुक्ता ही तो उसका सब कुछ है। वही उसकी मां, बहन और सहेली। इसलिए ही तो मालव के साथ उसका विवाह तय कर आई है।

दत्ता घर पर नहीं, मन मुरझा गया। ऐसा क्यों होता है? प्राप्ति के पल क्यों ऐसी शून्यता में भर जाते हैं? जबकि गंवाने की वेदना में डूबते समय सांत्वना का जरा - सा स्पर्श भी नहीं मिल पाता।

मुक्ता ने मन में उठने वाली इधर - उधर की बातों को भुला दिया। कहाँ जा सकती है वह? मालव के पास तो नहीं गई? वहीं से तो वह लौटी है। बीच में थोड़ी देर गोपालदास मठ में गई थी। चुड़ंग साही में ऐसी कोई सहेली भी नहीं, जहाँ इतना समय गुजार सके। मंदिर गई होगी तो खुद ही लौट आयेगी। दत्ता की कोठरी को छान रही थी। चारों तरफ लोक कला प्रदर्शित है। दत्ता ने शिल्प - नैपुण्य प्रकट किया है इसमें।

किवाड़ों पर पूर्ण कुंभ का चित्र (मांडना) खिल रहा है। विभिन्न रंगों में दीवारों

पर सुन्दर चित्र अंकित हैं। राधाकृष्ण की मूर्तियाँ। उधर ताजमहल मुगल स्थापत्य का भ्रम पैदा करता है। पटचित्र पर रामराज्य अभिषेक का दृश्य और यशोदा माता का दधि मथने का दृश्य दिखाई देता है। बीच में जगन्नाथजी विराज रहे हैं। साबूदाने में रंग लगाकर तीनों मूर्तियों को सजाया है। कहाँ से इतनी बातें सीखी हैं - उसे तो पता ही नहीं! काठ की पुतलियों में दत्ता कभी ईश्वर की सत्ता का अनुभव या अन्वेषण या उपलब्धि हासिल नहीं कर पाई, देवता को स्वामी रूप में मान नहीं सकी, इसलिए मुक्ता के मन में कभी - कभार दुःख होता है।

परंतु अब उसे लग रहा है कि देवदासी नृत्य और संगीत से ही ईश्वर को बहला नहीं सकती, सोलह कलाओं में से किसी एक को भी अपना कर देवता की प्रियतमा बन सकती है।

पत्नी और प्रिया सिर्फ अनुभव की व्यक्ति सत्ता नहीं है। पत्नी से प्रिया तक युग - युग से पुरुष की प्रिय बनी है। कृष्ण का प्रेम पाने के लिए राधा तो पत्नी नहीं बनी। मांग में सिंदूर लगाने से पति की दास बन जाती है। परंतु प्रेमी अपनी प्रेमिका के चरणों में स्वयं ही लिखता है – 'देहि पद पल्लव मुदारं', प्रेमिका का दासानुदास बन जाता है इस प्रकार। मानो आज प्रभु देवदत्ता के गहरे प्रेमपाश में बंध गये हैं।

मुक्ता का पत्नित्व म्लान है दत्ता के ज्योतिष्मान - आयुष्मान प्रेम के आगे। सचमुच प्रेम क्या है? वह क्या अपढ़ और अबूझा बहुचर्चित ग्रंथ है? ना, वह हाँ-ना के द्वंद्व में है। उस अव्यक्त चिरंतन पदार्थ के अन्वेषण में बीत जाता है काल। योगी की साधना, तपस्वी की तपस्या भी उस महानुभव की व्याख्या कर नहीं सकते। मानव उतर आया है सत्य से त्रेता या द्वापर की सीढ़ी होते हुए कलि तक। ढूंढ - ढूंढ कर 'प्रेम' की सत्ता को अपनाता है। कभी उसे देह में ढूंढता है तो कभी आत्मा में। कभी प्रकृति की निविड़ माया में प्रेम खोजता है, तो कभी वृक्ष की घनीछाया की शीतलता में। फिर वृक्ष में वनस्पति के आकंठ आत्मसमर्पण को प्रेम का रूप देता है, परंतु अंत तक समझ नहीं पाता। प्रेम की साकार और निराकार सत्ता क्या है? मुक्ता क्यों यह बात सोच रही है?

वह जन्म से मृत्यु तक जगन्नाथजी से बंध चुकी है। अबाधित और शाश्वत प्रेम के पास। हर सांस में ईश्वरीरय सत्ता की उपलब्धि है।

मुक्ता ने स्वयं को सहज बना लिया। कमरे से बाहर निकलते समय एक कागज की ओर ध्यान चला गया। ऊपर उसका नाम लिखा गया है।

मुक्ता ने वह कागज खोला। शब्दों का प्रयोग इतना तीव्र और कठोर हो सकता है! मुक्ता को विश्वास ही न हुआ। पा कर उसे खो देने का दुःख उसे तोड़ डालता है। दत्ता ने लिखा है -

मुक्ता माहारी,

मुझे ढूंढने की कोशिश मत करना। ऐसा जीना शीतल मृत्यु से भी बदतर है। चरम शत्रु अगर विश्वास खो बैठते हैं, उसे पाने की संभावना हो सकती है, परंतु परम प्रिय व्यक्ति एक बार विश्वास टूट जाने से फिर नहीं मिलता।

मेरे लिए तुमने बहुत कुछ किया है, इसलिए मैं चिर कृतज्ञ हूँ। आज देवी के स्थान से मानव के स्थान पर उतर आने का आनंद तुझे मिल सकता होगा, परंतु यही मेरे लिए धोखेबाजी की बात है! तुम ने जो कुछ किया है, यह तुम्हारे लिए स्वाभाविक होगा। नरोत्तम भुईंमल के साथ तुम सुख से रहो। यह मेरी ही गलती थी कि तुम्हें साधारण नारियों से अलग समझ बैठी।

तुम नहीं जानती थी कि मैं मालव से प्रेम करती थी, आज तुम्हारी असलियत देखने के बाद मेरा मन सारी दुनिया के प्रति घृणा, संदेह और अविश्वास में भर गया है। ऐसा पागल मन लिए मैं मालव को पहले की तरह प्रेम नहीं कर सकती। जानती हूँ, वह सम्पूर्णतः निर्दोष है। उसे संदेह या घृणा करना मेरी बेवकूफी है, परंतु अनिश्चित भविष्य की आशंका से मालव को अपनाने की भावना मुझ में शायद नहीं है। तुम्हारे पास रहना भी संभव नहीं।

अपनी बेवकूफी के लिए क्षमा चाहती हूँ। गृह त्यागना भी एक और बेवकूफी है, परंतु यहाँ मैं कुछ दिन की ही अतिथि हूँ। कहाँ जाऊँगी, पता नहीं। तुम्हारी दी हुई साड़ियाँ और गहने लौटा रही हूँ। तुम्हारा दिया हुआ नाम भी।

इति!

राधि

चिट्ठी पढ़ कर मुक्ता पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी रह गयी। उसकी आँखों में आँसू नहीं थे। घना अंधकार था। विचार तेजी से आ - जा रहे थे।

दत्ता के साथ संपर्क लंबे सोलह वर्ष का था। कोई साल - छः महीने का नहीं। उस सम्पर्क को नाम देना भी कठिन है। कभी दत्ता ने अपनों की तरह स्नेह किया

है तो कभी मुक्ता पर स्नेह से शासन किया है। कभी सहेली की तरह प्यार दिया है, परंतु जाते समय वह मुक्ता को अवसाद देकर चली गई! एक बार भी नहीं पूछा कि भला वह कौन है? ममता की डोरी से चेतावनी भी तो दे सकती थी कि ज्यादा मेल - मिलाप ठीक नहीं।

दत्ता ने यह सब क्यों नहीं किया? उसकी उपेक्षा कर क्यों चली गई वह? कहाँ गई होगी? जाने से पहले सोचना चाहिए था कि वह कहाँ जा रही है। कौन है यहाँ उसका अपना, जिसके पास थोड़ी देर के लिए रूक सकती थी?

मुक्ता ने भगवान से प्रार्थना की - 'हे प्रभु जगन्नाथजी, जिसका कोई नहीं है, उसके आप हैं। दत्ता की रक्षा करना। उसकी और कौन रक्षा करेगा? दत्ता मानों उसकी सारी शक्ति ले गई। वह अगर लौट आती तो दोनों हाथ जोड़ कर कहती - 'मुझसे गलती हो गई है, तुम मुझे क्षमा नहीं करोगी?' नहीं, दत्ता अब नहीं लौटेगी। वह दत्ता को खूब पहचानती है। नारी के अहंकार को भी जानती है।

जगन्नाथजी के प्रति मन ही मन नाराज हो रही मुक्ता - तुम क्या नहीं जानते हों, सम्पर्क ही तो दुःख है। तब मेरी जीवन धारा में एक और स्रोत को क्यों मिला दिया? जो अधूरा ही छुटकारे की कोशिश करता है।

मानव की शायद यही नियति है। सारी जिन्दगी के निरर्थक आवेग और निस्वार्थ रूप से प्यार करने की भी यही नियति है।

दत्ता को ढूंढना निरर्थक है। त्याग देने वाली वस्तु को अपनाने जैसी नन्हीं लड़की नहीं दत्ता। सोलह साल के सम्पर्क ने ही मुक्ता को यह बात बताई है।

मुक्ता ने दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना की - 'प्रभु वह जहाँ भी रहे, उसकी रक्षा करना, गलती क्षमा कर देना और दत्ता को शांति से रखना। उसे यह मानसिक आघात सहने की शक्ति देना।'

निर्वाक दयणा उसकी ओर देख रही थी। उसका चेहरा मुरझाये गुलाब की तरह दिखाई दे रहा है।

*   *   *

श्री गुंडिचा!

नाद - ध्वनि में श्रीक्षेत्र गूंज उठता है। पतितों का उद्धार करने के लिए आज बड़दांड पर पतितपावन पधार रहे हैं। पृथ्वी के कोने - कोने से आकर लोग इकट्ठे हो गये हैं। आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और भक्तगण! तालध्वज, नंदीघोष और देवदलन (दर्पदलन) रथ पर श्वेत, श्याम और पीले रंगों में तीनों देवताओं के दर्शन कर सारे पाप धो डालेंगे। यही विश्वास आज लाखों लोगों को अपनी ओर ला रहा है।

सुबह की धूप में गर्मी भर गई है। भेरी, तुरही, टमक, घंट, घंटी और झांझ की ध्वनि में श्रीमंदिर मुखरित है। बाहर लोगों की भीड़ जमा हो रही है, फिर भी श्रीमंदिर का मुख्यद्वार-सिंह द्वार-बंद था। बाहर तीनों रथों की पताका उड़ रही थी। कह रही है तुम्हारे सखा, सहोदर परम आत्मीय देवता प्रभु जगन्नाथ अभी उतर आयेंगे, रत्नसिंहासन त्याग तुम्हारे पास। आम लोगों के बीच। उन्हें सीने से लगा कर धो डालो अपने आँसुओं से पुष्पमाल को, तुलसी को अपने आँसुओं से स्वच्छ कर डालो। वे तुम्हारे हैं। सिर्फ तुम्हारे ही हैं। अपने अंदर देखो, पता चलेगा कि तुम्हारे भीतर ही हैं वे। उनका प्रतिबिंब वहाँ दिखाई देता है। सिर्फ तुम और वे, वे और तुम। सारी पृथ्वी प्रभुमय - भक्तमय बन गयी है। भक्त और भगवान को छोड़ कर यह पृथ्वी एक खोखली वस्तु है। उत्कंठित, प्रतीक्षित और उद्वेलित लोग इंतजार कर रहे हैं। अब सचमुच समय बीत रहा है। यह प्रतीक्षा असह्य है।

उस भीड़ में से एक जटाजूट संन्यासी निकल आया। अपनी झोली एक दूसरे संन्यासी को देकर चला गया, उस भीड़ में खो गया। बड़दांड विभिन्न ध्वनियों से मुखरित है। हे चकाडोला! प्रभु जी! पुकार क्यों नहीं सुनते! साथ - साथ बोल हरि.... हरे कृष्ण - हरे कृष्ण का घोष! ओ दीदी कहाँ चल रही है! मेरा आंचल पकड़ कर चल! इस साल ज्यादा भीड़ है! इधर देखो, नेत्र पवित्र कर लो। यह रहा बड़े ठाकुर जी (बलभद्र) का रथ, तालध्वज! इसमें चौदह पहिये हैं। इसके पास बारह पहिये वाला सुभद्रा जी का रथ देवदलन (दर्पदलन) है। इसी के पास सोलह कला श्रीजगन्नाथजी का नंदीघोष रथ है। ऊपर पताका आलोक्य मोहिनी फहरा रही है। "श्रीजगन्नाथजी जी, बलियार भुज, शंख में रख" कह के कोई पंडा फिर उसी को दोहराता है।

लोगों में से एक ने पूछा - "इतने बड़े - बड़े लोग इस रथ में बिराजेंगे तो रथ को खींचने के लिए कितने लोगों की जरूरत होगी?"

पंडों ने ऊँचे स्वर में कहा - "ये क्यों पूछते हैं जी! उनका मन नहीं होगा तो रथ तनिक हिलेगा भी नहीं। उनकी इच्छा होगी तो छू देने से ही चल पड़ेगा। तेईस हाथ ऊँचे जगन्नाथजी के रथ को खींचने के लिए सोलह सौ लोग, बड़े ठाकुर जी के रथ के लिए चौदह सौ, सुभद्रा के रथ के लिए बाहर सौ लोगों की जरूरत होती है।"

उस समय जब यवन भक्त सालबेग नहीं आया, तो प्रभु तनिक भी नहीं हिले। उनकी लीला का कहना ही क्या!

'अच्छा - अच्छा! यह पंडा तो बात करता है, लोगों से घिस - घिस कर क्यों चहक रहा है? क्या तुम्हें कोई दिखता नहीं?' कहते हुए अपनी बहू को पास बुला लिया। पंडे का बच्चा भला कब छोड़ने वाला है - 'जय श्रीजगन्नाथ, जय श्रीजगन्नाथ।' दोनों हाथ जोड़ कर चलते समय कितनी महिलाओं को छू रहा है! यह तो मंदिर की रोज की बात है। इसमें किसी का सतीत्व नहीं जाता। यह गंवारन औरत अपनी बहू को लेकर आई है रथयात्रा दिखाने के लिए! उसके शरीर को हाथ नहीं लगेगा, तो क्या फूलों की माला मिलेगी?" अश्लील भंगिमा में पंडे ने कहा - "बहू को पेटी में रख कर घर में ही रखती। यहाँ क्यों लायी रथयात्रा दिखाने? पंडों को गाली देने का फल मिलेगा, तुझे कोढ़ होगी! हम सब सत्य युग में 'तपी' थे 'त्रेता' में जपी और द्वापर में गोपी। इस कलियुग में 'पंडे' हो गए। युग - युग से हम प्रभु की सेवा करते आये हैं।"

घंट, घंटी, महुरी, कहाली वाद्यों की ध्वनि से बड़दांड गूंज उठा। जय जगन्नाथजी की ध्वनि चारों तरफ फैल गयी। खुल गया सिंहद्वार और उसके अंदर से बाहर आये - महाबाहु जगन्नाथजी! समूची जनता की आँखें और प्राण केन्द्रीभूत हो गये खुले द्वार की ओर। मानव की धारा आगे - आगे चल रही थी। बाईस पावछ से पंहडि विजे (नीचे) उतर कर आ रहे तीनों ठाकुर, सृष्टि, स्थिति और लय के देवता। दैनिक उपभोग की वस्तुएं ला रहे हैं सेवक। तीनों ठाकुरों के साथ सुदर्शन भी हैं। सचमुच पहाड़ जैसे झुका जा रहा है। सागर जैसे तरंगायित हो रहा है! अपनी बांहों को फैला कर श्रीअंग खोले जैसे नाचते हुए आ रहे हैं जगत के नाथ जगन्नाथ। घंट, ध्वनि और चंवर के आश्रय से उतर रहे हैं तीनों ठाकुर।

लोगों की भीड़ में सुन्दर - सुन्दर दो आँखों ने एक बार नीलबिहारी को देख कर चेहरे को घूंघट में छुपा लिया! उसका तृप्त मुख देखते तो पता चलता कि इसे न कोई दुःख है न मृत्यु का भय। न जीवन की ओर लगाव ही है। हे लीलामय हरि!

तुम्हारा यह विजय वेश देखने के लिए ही मैं श्रीक्षेत्र में रुक गयी थी। अब और नहीं, और नहीं! हुलु ध्वनि, हरिबोल, कहाली की ध्वनि ने घंट की झनकार को भी दबा दिया। राजनौहर की ओर सब की आँखें उठ गई।

*　　*　　*

कुछ समय बाद आगे - आगे सजा हाथी, उसके पीछे गजपति रामचंद्र देव तामजान में झूमते आ रहे हैं! 'छेरा पँहरा के लिए'। उत्कल में मुकुटमणि वीराधिवीरवर गजति महाराज जगत के नाथ जगन्नाथ के प्रथम सेवक हैं। उनकी सेवा सम्पन्न होगी, तक भक्तगण रथ त्रयी को मौसी मां के द्वार तक ले जायेंगे। "हरिबोल, मान उद्धारण, कर हे तारण, शरण मुं तुम पाद तळे...!" (हे भगवान मेरे सम्मान की रक्षा कीजिए, मैं आपकी शरण में हूँ।)

जगन्नाथजी को कहाँ ले जाते हो? हम किसके दर्शन करेंगे? हे कृष्ण, हरे राम, राम राम हरे हरे... । बड़दांड मृदंग, झांज, खंजणी की विविध ध्वनि से गूंज उठता है! छेरा पहंरा शुरू हो गया। गजपति महाराज सोने की झाडू से रथों को बुहार रहे हैं। सुगंधित जल छिड़क रहे हैं। समर्पित नयनों से देख रहे थे चका नयन की ओर। रथों की चार सीढ़ी खुल गयी। अब बड़दांड पर पतितपावन का रथ चलेगा। सारे पाप, ताप और कलुष दलन कर देगा। मुक्ता रोमांचित हो जाती है। ऐसे ठाकुर कहाँ हैं! रत्नसिंहासन, भोग, पांचधूप के समय साठ पौटी भोग का मोह त्याग कर कौन ठाकुर राजपथ पर उतर आते हैं! वेश - वस्त्र अस्त - व्यस्त हो रहे थे। गिरता जा रहा था गंध कुसुम, माला, तुलसी। पतितजनों का उद्धार करने के लिए कितनी पीड़ा सहनी पड़ती है!

'हरिबोल - हरिबोल' ध्वनि से चारों तरफ लहर - सी फैल गयी। बड़े ठाकुर जी का रथ घर्र - घर्र नाद करता चल पड़ा है। जनता के विशाल सागर में कोई पोत है। प्रभु के श्रीमुख से मुक्ता की आँखें हट कर दत्ता को ढूंढने जनसमुद्र की ओर चली गयीं। नहीं, निरर्थक! दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। रथ के रस्से को पकड़ पसर कर प्रणाम किया। छू कर उठते ही सांवले श्रीमुख को देख भाव समुद्र में डुबकी लगाते मुक्ता माहारी मन ही मन दुहरा रही थी - "तेरी आँखें हैं पर आँखें नहीं, कान

और हाथ - पैर सब हैं, परंतु कुछ भी नहीं। अरूप और रूप, गुण और निर्गुण, द्वैत - अद्वैत, अस्ति और नास्ति का अपूर्व मिलन है तू! तेरी माया कोई नहीं जान सकेगा।

अपार महिमा तोहर। देव मानवे अगोचर।

(तेरी महिमा अपार है, देव-मानव उसकी थाह नहीं पा सकते।)

मुक्ता तीनों रथों को प्रणाम करके घर लौट आयी। महेंद्र बेला बीत जायेगी। आज शुभ अवसर पर माया की दीक्षा का आवेदन पत्र राजा के पास भेजना होगा - वह दयणा के पास माया को छोड़ कर आई है।

घर लौटते वक्त गुरुपद दास इंतजार कर रहे हैं। मानव जिस घाव को 'लोकाचार' और 'कर्तव्य' समझ अपने पास छुपाये रखता है, कभी ऐसा समय भी आता है, जब ये सब खोल कर फेंक देता है। बीत रात वह अपने आप से उत्तर मांगता है।

संगीत गुरु गुरुपद दास को देख कर मुक्ता का हृदय दत्ता की स्मृति में सिहर उठा। अगर वे दत्ता के बारे में पूछेंगे तो क्या उत्तर देगी? परंतु वैसी परिस्थिति से जगन्नाथजी ने रक्षा कर दी। गुरुपद दास ने अविलंब कहा - "आवेदन पत्र प्रस्तुत है? अगर है तो दे दीजिए, उसको मैं महाराज को दे दूंगा।" चांदी की पिटारी से पत्र निकाला। विनम्र भाव से कहने लगी - "देव, यह लिखा जायेगा या कुछ और?" गुरुपद दास आवेदन पत्र पढ़ते रहे और उन्हें लग रहा था कागज पर किसी और किशोरी के दो मुक्ता - से उजले नयन युगल! एक बार ऐसा ही दत्ता का आवेदन पत्र ले महाराज के पास गए थे। उस कन्या को प्रभु जगन्नाथजी के सामने माथे पर उत्तरणी बंधाते समय नृत्य के मादल बजेंगे। यह आशा उनमें थी। अंत में यह आवेदन पत्र वापस लेना पड़ा। दत्ता के बहू बनने की आशा और विश्वास छोड़ना पड़ा। एक गहरी शाम शून्य में एकाकार हो गई। सचमुच देवदत्ता आज कहाँ है? मालव की उदास आँखों में आज भी उसकी प्रतिछवि अंकित है। कंधे से मणिया बंध गमछा उतार कर गुरुपद दास ने आँखें पोंछ डाली। पढ़ने लगे -

'प्रभु श्री जगन्नाथजी के चरणों में शरणागत'

- मुक्ता माहारी वीर श्री गजपति महाराज गौड़ेश्वर नवकोटि कर्णाट कलवर्गेश्वर श्री श्री महाराज रामचंद्र देव को सभक्ति प्रणाम करती है।

लिखने का कारण यह है कि आप की अनुमति हो तो मेरी नौ साल की गोद ली हुई कन्या आयुष्मती माया प्रभु जगन्नाथजी की सेवादासी के रूप में इस बाहुड़ा यात्रा के बाद (किसी शुभ दिन में) श्री मंदिर में प्रभु से उत्तरीय ग्रहण करेगी।

आप की सदय स्वीकृति के लिए दासी निवेदन कर रही है।

इति!

निवेदिका

मुक्ता माहारी

चुड़ंग साही, पुरी

आवेदन पत्र पढ़ कर गुरुपद दास ने उसे वापस चांदी की पिटारी में रख दिया। माया कहाँ है? उसे बुलाइए तो एक बार।

माया उस समय तुलसी वन में तितली पकड़ रही थी। उसके लिए जैसे राघव दास का मठ, वैसे ही मुक्ता माहारी का घर है। यही लड़की तो कल सम्पूर्णानंद के सामने शिकायत कर रही थी। नाचना सीखने का मतलब क्या आपको छोड़ना है? आज वह इस तरह तितली की तरह घूमती फिर रही है! यह मानव मन बड़ा विचित्र है। परिवेश के साथ रहने की आदम बन गई है सबकी। नारी जल की तरह विस्तृत होती और सिकुड़ भी जाती है। जिसमें रख लें, उसी का रूप ले लेगी। वरना राघव दास मठ में संन्यासिनी की दीक्षा लेने वाली क्या देवदासी बनने को तैयार हो जाती? मुक्ता बुलाने लगी माया को। माया, इधर आओ तो? मुक्ता का बुलावा सुन कर वह आ गई और गुरुपद दास को देखने लगी। सोचने लगी – "अभी ही बुलाना था क्या? तितलियाँ चली गई तो? माया से और कौन सा काम है आपका?"

नन्हीं गुड़िया सी सुकोमल बालिका को देख कर गुरुपद दास का मन भर गया। यह सुन्दर नन्हीं सी बाला जगन्नाथजी की पत्नी होगी। नर लोक में उसके मुताबिक वर कहाँ है? यह तो उन्हीं की लीला है। उन्हीं की माया है।

मुक्ता ने कहा – "गुरुपद दास को प्रणाम करो, बेटी! जब तुम देवदासी की दीक्षा लोगी, तब ये ही तुम्हारे गुरु बनेंगे। मादल संगत करेंगे।" मंत्रमुग्ध हो माया ने उन्हें प्रणाम किया। ज्यादा रात हो गई थी। घटाटोप बादल छाये हुए थे। साथ में हवा। सम्भवतः आज रात भर बरखा लगी रहेगी। आसमान अभी मेघयुक्त हैं।

झरोखे से देख मुक्ता को लग रहा था कि आज वह मेघयुक्त बादलों की तरह हल्की हो गई है। उसकी देह भी मन के संग कहीं उड़ रही है। उस दूर दिगंत की

ओर उसकी आँखें चली गई। जहाँ धरा - आकाश मिले गये, उस शेषहीन बिंदु पर। महाराज ने स्वीकृति प्रदान की है।

मंदिर संचालन समिति से भी अनुमति मिल गयी। माया के देवदासीत्व ग्रहण करने में कोई बाधा नहीं रही। तीस पार कर चुकी मुक्ता माहारी को लग रहा था कि वह पहले की तरह अब और नाच नहीं सकती। हृदय का सारा आवेग संगीत का रूप लेते समय ठीक शब्द ताल नहीं बज रहे। सब कुछ अधूरा - अधूरा लग रहा था। पच्चीस साल तक वह प्रभु के सामने नृत्य प्रस्तुत करती आई है, फिर भी, उसे लगता है मानो जीवन का श्रेष्ठतम संगीत अभी तक वह गा नहीं सकी। श्रेष्ठतम नृत्य अभी तक प्रस्तुत नहीं कर सकी। अपने अपूर्ण स्वप्न को पूरा करने के लिए उत्तराधिकारी ढूंढ लिया है। माया के माध्यम से वह प्रभु का मनोरंजन करेगी।

शायद बाहर से कोई आवाज आ रही है। मुक्ता सुन रही थी दरवाजे पर खटखट। पलंग पर से उतर का मुक्ता खड़ी हो गई। चांदनी में पलंग पर माया मोगरे के फूल के ढेर - सी उजली दिख रही है। दरवाजा खोल दिया। आगन्तुक अंदर घुस आया और दरवाजा बंद किया। सांकल लगा दी - आगे मुक्ता और पीछे - पीछे आगन्तुक चल रहे थे। दोनों चुपचाप।

अपने प्रकोष्ठ के पास मुक्ता रुक कर माया की तरफ देख रही थी। वह सो रही है। दयणा भी अब तक गहरी नींद सो गई होगी। दबे स्वर में कहा - "चलिये, छत पर चलें। 'आगन्तुक ने पूछा - "पड़ोस में ऊपर कोई सो रहा होगा?"

पलंग की ओर इशारा कर कहा - "माया सो रही है।" मुक्ता ने कहा।

आगन्तुक ने कहा - "यह माया कौन?"

मुक्ता ने कहा - "वह मेरी गोद ली हुई बेटी है।" आगन्तुक चेहरे पर प्रश्न उभर रहे हैं, कहा - "पहले तो कभी नहीं बताया।" बात की गरमी को हल्का बनाने के लिए कहा - आप क्या सुनने की स्थिति में थे, जो पहले कहती? पागलों की तरह इधर - उधर घूमते हो, गांव - गांव! अच्छा आज की कोई खबर? आगन्तुक ने धीमी आवाज में कहा - 'आज की खबर बहुत अच्छी है। हमारे आन्दोलन को खत्म करने के लिए गोरे अफसर आ रहे थे। उनके आने की खबर हम जान चुके थे। चंदनपुर रास्ते में जो पुल है, उसे हमने उड़ा दिया। नदी से नौकाएँ हटा दी थीं। हमारी गोली से दो साहब मारे गये। कुछ लोग घायल हुए हैं। मुझे पुलिस ढूंढ रही है। मेरे नाम दो अभियोग हैं। हत्या और लूट!

आतंकित हो कर मुक्ता चिल्लाई - 'भुईंमल जी!' मुक्ता की आँखें फैल कर स्थिर हो गई। आँसू निकल रहे थे। उसके स्रोत को कौन रोक सकता?

देवता के सामने नाचते और अनुशासित जिन्दगी गुजारते हुए ही उसकी आधी उम्र बीत गई। प्रवाहमान समय के साथ वह अपरिचित नहीं। हमारी सामाजिक और धर्म धारा के कितने टेढ़े - मेढ़े रास्ते हैं। जो सनातन धर्म में शामिल हो गये हैं। इस जाति को मिटा देने के लिए बाहरी दुश्मनों ने कम कोशिश नहीं की!

वह जानती है कि विदेशी शासक खूंखार और हृदयहीन हैं! धर्मभीरु पराधीन भारत की आत्मा को वह पहचानती है। अतीत में वैभव-संपदा में भरपूर होने पर भी विदेशी शक्ति का दासत्व स्वीकार किया है। जगत के नाथ यवनों द्वारा चमड़े की रस्सी से बड़दांड पर घसीटे गए हैं। इसके लिए यहाँ के लोग ही जिम्मेदार हैं। जिस नृंशस जाति ने प्रभु को नहीं छोड़ा, वह भला अब और किसको छोड़ेगी? वे क्रांतिकारी नरोत्तम भुईंमल को कैसे छोड़ेंगे?

मृत्युदंड जरूर मिलेगा! उसकी अंतिम आशा भी छिन गई! अपने दुख को आंचल से रोक रही थी। अविश्वास का वह दृश्य नरोत्तम भुईंमल के सीने में कंपन पैदा कर रहा था। देवदासी मुक्ता के तापसी हृदय में आवेग और आँसू! यह कैसी विडम्बना है। इसकी तुलना नहीं।

देवता के चरणों में न्यौछावर हृदय आज मानव प्रेम में अश्रुपूर्ण है! उस नारी को वे सिर्फ एक देवदासी और संन्यासी मानते रहे। इस समय लग रहा था कि यह भी एक नारी है, उसका कोमल प्रेम और स्नेह पद्म की तरह विकसित होता जा रहा है - दिन - प्रतिपल!

तो इस समय उसका कर्तव्य क्या है? उसके परम सुन्दर मुख को दोनों हथेलियों में भर कर आश्वासन की दृष्टि से छू लें उसके हृदय को। झरते आँसू पोंछ खींच लें अपने प्रशस्त वक्ष की ओर सुरक्षित आश्रय का विश्वास देकर? मुक्ता के मन में अंकुरित प्रीत की पौध को प्रणय जल से सींच कर पल्लवित कर दें?

ना... ना अब यह संभव नहीं। जीवन - मृत्यु की दो नावों में पैर रखे होता है अनिश्चित भविष्य का विप्लवी आदमी! यह आवेग विप्लव के लिए है। प्रेम भी विप्लव के लिए है, विश्वास भी विप्लव है। वहाँ किसी और के लिए स्थान का मतलब विश्वासघात है। उसको अपनाने का मतलब है स्वयं को धोखा देना, यह संभव नहीं। सारे छोटे - मोटे आकर्षणों में बंधना साधारण मानव की स्थिति है। सारे आकर्षणों

से दूर रहने वाला व्यक्ति ही विप्लव को आगे खींच सकता है। किशोरावस्था से उसके लिए वचनबद्ध मुक्ता माहारी में हलचल मच गई है। कुछ समय बाद वह स्थिर बन जायेगा। शांत हो जायेगा। उत्तर का कंकड़ डाल कर फिर उस शांत जल में तरंगें पैदा नहीं करेंगे। विप्लव भी किसी संन्यासी की तरह समय का अधिकार होता है। सामूहिक इच्छा के सामने व्यक्ति की इच्छा - अनिच्छा की बलि चढ़ानी पड़ती है। तख्त पर भुईंमल वैसे ही बैठ रहे। अपने भीतर पैदा होने वाले आवेग को वे रोक रहे थे होंटो को दबा कर।

आधी रात में जब से जगमोहन में देखा, तब से मुक्ता माहारी की ओर आकर्षण का अनुभव कर रहे थे, परंतु इस आकर्षण में कोई आकुलता की गुंजाइश नहीं थी। आज के निर्जन परिवेश में भी न थी। मुक्ता का परिचय एक कलाकार और देवदासी का ही है। अनेक संघर्षों में भी वह सीप में मोती की तरह खिलती है! अंदर चमक भरी है। माहारी जाति की मुक्ति और निर्वाण सिर्फ देवता की पूजा तक सीमित नहीं है, जनता की पराधीनता से मुक्ति के लिए भी माहारी जाति एक क्रांतिकारी मार्ग हो सकती है - यह प्रमाणित कर दिया है। किसान आंदोलन की सफलता के पीछे मुक्ता माहारी का परोक्ष हाथ है। वह शांतकामी तापसी आज क्रांतिकारी बन गई! शांति के लिए क्रांति का प्रयोजन युग - युग में रहा है।

बचपन में सुना था कि पिता एक दिन इस बदनाम गली में भटक गये थे, परंतु आज उसी गलती की एक आलोक रश्मि उनकी क्रांति को राह दिखा रही है। मुक्ता माहारी के साथ इतने लंबे परिचय में आलोक ही दिखाई दे रहा है। यह आलोक एक हृदयवती नारी और एक कलाकार के हृदय का है।

दूर से कोई भी दूसरे के बारे में आसानी से कुछ भी उलटा - सीधा कह सकता है, पर निकट होते ही युगों का भ्रम दूर हो जाता है। अपनी चिंता से मुक्ति पाने के लिए नरोत्तम भुईंमल ने पहले होंठ खोले - "मुक्ता माहारी! माया तुम्हारी गोद ली हुई बच्ची है, इसका मतलब क्या है?"

अपनी दुर्बलता छिपाने का कोई बहाना ढूंढ रही थी। क्या कहे, तय नहीं कर पा रही थी। नरोत्तम भुईंमल के प्रश्न ने रास्ता खोल दिया। चतुराई से आँसू पोंछ लिए उसने। स्वाभाविक हो उत्तर दिया - "आप को बताने का समय ही कब मिला? मेरी गोद ली गई बच्ची है, इसका मतलब है रथयात्रा से लौटने के बाद महाप्रभु मंदिर में स्थापित होंगे, तव वह मेरी उत्तराधिकारी बनेगी और इसे देवदासी का पद मिलेगा।

इसे शिरोपाव पहनाया जायेगा।'' कुछ क्षण के लिए भुईंमल चुप रह गये। कितने अबोध भाव से और आँख मूंद कर जीविका को जीवन मान लिया है मुक्ता ने! सारी पृथ्वी के लोग देवदासी प्रथा के विरुद्ध स्वर उठा रहे है। मुक्ता उस परंपरा को जकड़ कर रखे है! पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है। मुक्ता माहारी सचमुच लौकिक प्रथा के लिए आँखें मूंद उसके पीछे चल रही है!

'इस निष्पाप किशोरी की हालत क्या होगी?' - तीखे स्वर में नरोत्तम भुईंमल ने कहा - ''कुछ भी हो, यह ठीक नहीं है। तुम जानती हो, दाक्षिणात्य से देवदासी प्रथा का आरंभ हुआ था, वही आज उसके विरूद्ध आवाज उठा रहा है। इस प्रथा को पूरी तरह बंद करने के लिए शिक्षित समाज ने ठान ली है। मद्रास विधान सभा में देवदासी प्रथा समाप्त करने के लिए जोरदार बहस हुई है। तुम हो कि एक आगामी वंशधर को इतिहास के अंधेरे में धकेल रही हो! पुराने संकीर्ण नीति - नियमों के कठघरे से बाहर आ जाओ मुक्ता। तब देखना यह पृथ्वी कितनी विशाल, कितनी सुन्दर है। अलौकिक और प्रकाश में झिलमिला रहा है उसका वर्तमान और अनागत भविष्य!'

मुक्ता हँस पड़ी, उसका चेहरा चांदनी रात में एकदम खिल उठा। कहा - ''भुईंमलजी, मैं तो मूर्ख और अज्ञानी नारी हूँ। वो सब मैं नहीं जानती और जानने की कभी कोशिश भी नहीं की, परंतु इतना तो जानती हूँ कि प्रभु जगन्नाथजी, माहारी के पांवों की मधुर निक्वण और माहारी के कंठ की सुललित ध्वनि सुने बिना निद्रा विमोहित नहीं होंगे। शरीर की अंतिम रक्त बिन्दु तक मैं उनकी सेवा करती रहूँगी, करूंगी। मेरे बाद मेरी पालित कन्या उनकी सेवा करेगी। इसके अलावा मैं और कुछ नहीं जानती। मुझे जन्म मिला है उनकी सेवा के लिए। सिर्फ उन्हें ही प्रेम करने के लिए।''

तब तक प्रौढ़ रात की तंद्राछत्र देह में उम्र की क्लांति छा गई थी। पास में आम की घनी डाल से हलद बसंत (एक पीले रंग की चिड़िया) का आवेग भरा स्वर लहरा गया - कें... कें... कें!

प्रत्युत्तर में कोयल बोल उठी। जब चिड़िया पूछती... कैं... कैं... कैं..., कोयल उत्तर देती कूहू... कूहू... कूहू...! सचमुच ऐसा लग रहा था कि दोनों आस - पास में घोंसले बना कर बंधु की तरह बैठी हैं। नींद से जाग चिड़िया पूछती है - ''मैं तो ठीक हूँ, तू?'' वह इस प्रश्न की प्रतीक्षा में बैठी थी। दोनों की भाषा तौल रहे

थे नरोत्तम जी। दोनों पक्षियों के बीच अगर इतनी माया, बंधन और सात्विक बंधुता संभव है, तो फिर मानव के बीच क्यों नहीं होगी? बंधुता के लिए सम्पर्क की आधारभूमि क्यों जरूरी है? नारी - पुरुष की बंधुता सिर्फ जैविक आकर्षण में ही सीमित है? नहीं, इस बात पर वे कभी विश्वास नहीं करते। जो विप्लवी है, उसके लिए सारे देश की जनता बंधु, प्रियतम और प्रियतमा है।

मुक्ता माहारी उनके दल की एक सदस्या है। नीरव विप्लव है। मुक्ता के साथ उनका जो सम्पर्क है, वह भावना और कर्त्तव्य का मिश्रराग है। वह अनुराग या पूर्वराग नहीं है। उसमें हृदय की गहरी श्रद्धा है। मानव के प्रति मानव की यह पवित्र नेह भावना नहीं होती, तो यह पृथ्वी जड़ बन जाती। अपलक नरोत्तम भुईंमल मुक्ता को देख रहे थे। इस नारी ने जीवन भर क्या पाया? जीवन भर की समर्पित सेवा में क्या कुछ खोया और क्या पाया, इसका कोई हिसाब नहीं। उत्तर मांग रहे थे। वह कैफियत खुद को ठग कर किसी मृगतृष्णा के पीछे दौड़ने की है। फिर भी हृदय में ईश्वर अनुराग की शिक्षा मृदु - मधुर भाव से जल रही है, तुलसी बिरवे के नीचे दीप की तरह। उस दीप को जलाये रखने के लिए एक और निष्पाप कन्या को गोद लिया है। उसके बाद वह बनेगी देवदासी, परंतु देवदासी मुक्ता के हृदय की शुभ्रता, पवित्रता और ईश्वर प्रेम की उत्तराधिकारी हो सकेगी वह? समय ही बतायेगा। मुक्ता को भुईंमल जी आज क्यों उदास लग रहे हैं?

आज उनके सामने सम्पर्क की गुत्थी खोल देगी। आज उसने तय कर लिया। कुछ इधर - उधर असंगत बातें उनके मन में आने के पहले सत्य को स्पष्ट कर देना हो।

जरा होंठ खोल विनय स्वर में कहने लगी - "बहुत दिनों से आपको एक बात कहने की सोच रही थी।" हँस कर बात टालने की नरोत्तम भुईंमल कोशिश कर रहे थे। होठों पर उंगली रख कर परिस्थिति के बारे में उन्हें सचेत कर दिया।

नरोत्तम भुईंमल धीरे से कहने लगे - "यही कि लुक - छिप मरण का यह खेल और कितना खेलना है? इस पथ का पथिक बनने में खतरा है। रोज मर कर, रोज पैदा होना पड़ता है। दूसरी राह पर चलो। प्रतिदिन मरने पर ही आदमी पुनर्जन्म पाता है।"

पहले हलके - हलके थाप, बाद में ऊँचे स्वर में खड़बड़ाहट की आवाज आ रही थी। "मुक्ता माहारी दरवाजा खोल!"

मुक्ता के शरीर में सिहरन भर गई। दबे स्वर में कहा - "बाहर पुलिस लगती है। मेरे साथ आइये।" अविलंब मुक्ता ने पूजाघर का दरवाजा खोल दिया। बाहर दरवाजा बंद करते समय प्रभु के पास याचना कर रही थी - "प्रभु आपकी नींद में बाधा हो गई है, क्षमा कीजिए! प्रार्थना की - "हे बलियार भुज! मेरे भाई को शंख में रख कर चक्र की ओट प्रदान कीजिए, हे प्रभु!"

बाहर खटखटाहट बढ़ रही थी।

मुक्ता माहारी ने दरवाजा खोल दिया! अंदर घुस आये, दस - बारह सिपाही। पीछे - पीछे नायक भी।

लाल आँखें दिखा कर एक ने पूछा - "सच बताओ, खूनी को कहाँ छिपा रखा है?"

स्थिर आवाज में मुक्ता ने उत्तर दिया - "खूनी? कौन खूनी? मैं प्रभु जगन्नाथजी की सेवादासी हूँ। मेरे घर विद्वान आदमी ही आते हैं। यहाँ खूनी क्यों आयेंगे?"

ऊँचे स्वर में मोटी मूँछ वाले सिपाही ने कहा - "अगर यहीं से आसामी निकला, तो दोनों को बीच बाजार में हथकड़ी पहना कर घसीटते ले जायेंगे।"

सारे घर की चीजें फैला दी इधर - उधर पुलिस वालों ने। सचमुच नरोत्तम भुईंमल जैसे दीवारों के चित्रों में छिप गये! चित्रपटी में, गहनों की पेटियों में, फूल - फलों की डलिया में छिपे हैं कहाँ पर?

देर रात में कोलाहल सुन कर दयणा वहाँ आकर डर के मारे खड़ी हो गई। मुक्ता ने निद्रित माया को थपकी देकर सुला दिया। वह आराम से सो गई। शोरगुल उसे हिला न सका। सचमुच जैसे किसी किन्नरी के जूड़े से रंजनीगंधा की माला खिसक पड़ी है। साहस दिलाने के लिए पीठ पर हाथ रख दिया। दयणा की आँख में आँख डाल मानों कह रही है - "डरो मत! हाँ, एक खूनी को ढूंढने के लिए मेरे घर में सिपाही घुस आये हैं! जगन्नाथजी का सहारा है!"

तब तक सब छान - बीन हो चुकी थी। रुद्ध पूजाघर को खोलने की बात देखी तो मुक्ता के अंदर कंपन पैदा हो गया। भय, आशंका और सब कुछ गंवा देने की वेदना में मानों अभी आँसू झलक आयेंगे। मन ही मन पुकार रही थी - 'हे भगवान! आप ने तो द्रौपदी की लाज बचाई थी। तुम्हारे सिवा इस विपद से कौन बचायेगा?

साही नायक ने कहा - "जी, यह ठाकुर जी का कक्ष है। वो अभी शयन में होंगे। जागने का समय नहीं हुआ, द्वार मत खोलिए। अवज्ञा में हँस कर किसी ने जंजीर खोल दी, इसलिए कि मीना नायक ने मना किया था।

यह तो मानव की आदिम प्रवृत्ति है। जहाँ निषेध किया जाएगा, वहीं तो उत्कंठा और चेष्टा है। निषिद्ध फल तोड़ने की आकांक्षा!

जंजीर की झनकार से मुक्ता के हृदय में कंपन पैदा हो गयी। उसके चेहरे को कोई देखता तो जान लेता कि अपराधी इसी घर में कहीं छिपा है।

क्षमा मांगने की भंगिमा में सिपाही कह रहा था कि दास हैं, कर्तव्य के गुलाम हैं हम! अपराध माफ कीजिएगा। सबकी आँखें ठाकुरजी की ओर थीं। पूजाघर में चांदनी का आलोक चारों ओर खिल रहा था। चावल का दाना भी दिखाई दे। इतना बड़ा आदमी होता तो क्या दिखाई नहीं देता? गलती हो गई। सिपाहियों का अधिनायक मूंछ वाला सिपाही मुक्ता माहारी की ओर आँखें दिखा कर कहने लगा - "पर सावधान। जिस दिन मिलेगा, तेरे द्वार पर उसका शव रख देंगे। उसे तो फांसी होगी। तुझे भी होगी।"

तूफान की तरह जैसे आये थे, बिजली की तरह वैसे ही चले गए। मुक्ता ने चैन की सांस ली। रात के सूनेपन में कंपन भरते हुए एक ही बात गूंज रही थी -

"हरि मारे तो रक्षा करे कौन,
हरि रक्षा करे तो मारे कौन?"

पुलिस के जाने के बाद दयणा ने भय से दरवाजा बंद कर दिया। मुक्ता माहारी से पूछने लगी - "क्यों दीदी! अकेली नारियों को डराना कोई अच्छी बात है?"

मुक्ता दयणा के आँसू पोंछ कहने लगी - "नहीं दयणा! हम असहाय नहीं हैं! जगन्नाथजी जिनके सहायक हैं, तुच्छ मानव उनका क्या बिगाड़ सकता है? तू जाकर सो। सुबह होने में अभी देर है।"

दयणा अपने को संभाल खड़ी हो गई और फिर पूछा - "तुम? क्या यहाँ जागती रहोगी?" मुक्ता ने कहा - "तू चल, मैं ठाकुर जी के बरामदे में बैठती हूँ। नींद आयेगी तो यही सो जाऊँगी। कल हेरापंचमी उत्सव है। गुण्डिचा गृह जाना होगा, वहाँ सबके साथ सेवा करनी है।" दयणा चली गई। चारों तरफ सतर्क देख कर मुक्ता ठाकुरजी के घर में घुस गई। धीरे से कहने लगी - 'नरोत्तम भुईंमल जी!"

ठाकुरों का तीन फुट ऊँचा तीन थाक में सिंहासन बनाया गया है। ऊपर जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा की मूतियाँ हैं। उसके नीचे शालग्राम, गोपालजी और राधाकृष्ण की मूर्ति स्थापित की गई है। सब के नीचे आरती, कर्पूर, दान दीप, थाली, कटोरी और लोटा, शंख आदि। दोनों दीवारों में लक्ष्मी - नारायण, गणेश, सरस्वती पूजा की चीजें सजी हैं। वहाँ पर शिव - पार्वती और हनुमान जी की तस्वीरें भी रखी हैं। इतना बड़ा आदमी उसमें छिप सकेगा या नहीं, यह सोचने से पहले ही जंजीर लगा दी थी उसने।

स्वयं पर पूरी तरह से आस्था रखने वाले आदमी की भगवान इसी तरह रक्षा करते हैं।

सिंहासन के पीछे से निकल कर कृतज्ञता के साथ नरोत्तम भुईंमल ने कहा - ''मेरी जिस तरह से तुमने रक्षा की, उसे भुलाया नहीं जा सकता। मरने का भय मुझे नहीं, मगर मरने से पहले कई काम हैं, उन्हें निपटाना पड़ेगा।''

मुक्ता ने कुछ लजा कर कहा - ''आप के प्राणों की रक्षा करना तो मेर कर्तव्य और दायित्व है। उसमें उपकार और कृतज्ञता का सवाल ही नहीं।'' कहते न कहते अपने को रोक लिया। बात निकल आयी है उससे अनजाने ही।

मुक्ता के पास आकर नरोत्तम भुईंमल ने मृदु स्वर में कहा - ''तुम्हारे प्रति भी तो मेरा कुछ दायित्व है। मैं सिर्फ तुम्हें विप्लव का साथी नहीं, जीवन साथी बनाने के लिए तैयार हूँ।'' मुक्ता सर्पाहत की तरह दो कदम पीछे हट गयी। कानों पर दोनों हाथ धर कर कहने लगी - ''नहीं, नरोत्तम नहीं! वह असंभव है। तुम मेरे भाई हो। इंद्रजीत भुईंमल की सगी बेटी हूँ मैं...'' इतना कह कर लज्जा, ग्लानि और दुःख में टूट गयी। वह निष्ठुर सत्य तुम्हारे सामने कभी भी न कहने की सोच रही थी, परंतु अपने पिता की संतान के होठों से प्रेम निवेदन सुन कर मुझ से रहा नहीं गया। हम माहारियों का जीवन ऐसा ही है नरोत्तम! पुरुषोत्तम की पत्नी होने पर भी साधारण मानव के सामने हम एक नारी है। जननी या भगिनी कुछ नहीं!''

तब तक नरोत्तम भुईंमल जड़ बन चुके थे। उनको कुछ खोना पड़ा या वे कुछ पा गये! उनका हृदय भर गया। वे कुछ भी सोच न सके। दोनों हाथों से सिर को पकड़े थे। ''हे प्रभु, यह क्या हो गया... ! इससे पहले मौत क्यों नहीं आ गई! मुक्ता की ओर पीठ कर दीवार से सिर पटक कर कह रहे थे - हे प्रभु! तुमने यह क्या किया! यह विचार आने से पहले ही फिरंगियों की गोली से मुझे मौत क्यों नहीं आ गयी!''

नरोत्तम भुईंमल को धीरे से सहला कर मुक्ता ने कहा - "नरोत्तम... ऐसे नहीं कहते। तुम जैसे वीर पुरुषों के लिए यह शोभा नहीं देता। सुबह होने में थोड़ी ही देर बाकी है। तुम्हें दूर जाना है।" स्थिर झील की तरह उन आँखों में बिंबित हो रहा है उनके लिए स्नेह और ममता भरा स्थिर भाव। अंधकार में राह दिखाने के लिए जल रही है कोई आलोक शिखा! उस दृष्टि में छल या प्रतारणा का लेश भी नहीं। स्फटिक - सी स्वच्छ और निर्मल ज्योति।

मुक्ता की बातों की सच्चाई जानने की इच्छा नहीं हुई। इतने दिनों तक क्यों छिपा रखा? इसकी कैफियत या सफाई नहीं मांगी। मुक्ता की आँखों से आँसू पोंछ दिये! पीठ पर संवेदना का स्पर्श दे कर पिछवाड़े से तुरंत निकल गए। उस चाल में पराजित वीर सैनिक का उदास भाव था मिला - जुला। उन्हें देखते - देखते मुक्ता मूर्ति की तरह खड़ी रही।

मानव जीवन में कभी - कभी ऐसा भी विमूढ़ समय आता है। वह झरे पत्ते की तरह स्वयं को अर्पित कर देता है।

तेज हवा में दीप टिमटिमाने लगा। बुझने - बुझने जैसा लगता। फिर से जल उठता, जल रहा है। मुक्ता तूफान में कांपती इस शिखा से अपने जीवन की तुलना कर रही थी।

* * *

नरोत्तम भुईंमल भोर के फीके आलोक में खो गये। कोई खबर नहीं। आज बाहुड़ा दशमी हो गई। तीनों ठाकुर मंदिर को लौट आयेंगे। इसके बाद मुक्ता का सेवा कार्य शुरू होगा।

मगर नरोत्तम भुईंमल गए कहाँ? किससे पूछें? कौन देगा इसका उत्तर? कहीं कुछ खबर तो नहीं हुई? पकड़ा तो नहीं गया? महाराज से यह प्रश्न करें?

महाराज से मंत्री, मंत्री से मात्य - आमात्य होते हुए अगर दरोगा तक यह बात पहुँच जाये तो सारी योजना धरी की धरी रह जायगी। देसी रियासतों में जन आंदोलन जिस तरह से धधक उठा है, देश के राजतंत्र को उसने हिला दिया है! नरोत्तम भुईंमल की प्राण रक्षा करने का दुस्साहस महाराज क्या करेंगे?

नहीं, पतितपावन के ऊपर सब कुछ छोड़ कर चुपचाप रहना बेहतर है।

नरोत्तम की रक्षा के लिए प्रणाम किया, दीप की लौ तेज कर वह पूजाघर से निकल आई।

नींद में भारी आँखें मलते हुए माया आकर खड़ी हुई। अपनी मृणाल भुजा से बरामदे से स्तंभ को उसने पकड़ रखा है। चिबुक उठा कर स्नेह में मुक्ता कहने लगी - "नित्यकर्म खत्म कर लिया बेटी!" आँखें मलते - मलते माया ने उत्तर दिया - "नहीं, अभी नहीं।"

मुक्ता ने कहा - "जाओ बेटी, दयणा बुला रही है।"

भीतर से दयणा बुला रही थी - "माया, इधर आओ! यहाँ दातून के लिए पानी रखा है।"

मुक्ता ने कहा - "जाओ बेटी, दयणा बुला रही है। जल्दी काम खत्म कर लो। ठाकुरजी के दर्शन करने जाना है। उनकी आज बाहुड़ा यात्रा है। फिर ठाकुरजी श्रीमंदिर में बिराजेंगे।"

- "आज मैं देवदासी बन कर ठाकुरजी से विवाह करूँगी!" माया के सरल प्रश्न पर मुक्ता हँस दी। पीठ थपथपा कर कहा - "दो दिन और बीच में हैं। आज बाहुड़ा दशमी है। रथ खींच कर सिंहद्वार तक ले जायेंगे। ठाकुरजी आज सिंहद्वार पर रहेंगे। कल एकादशी है। रथ पर ठाकुरजी सोने के वेष में भक्तों को दर्शन देंगे। परसों मंदिर में पधारने के बाद दीक्षा लेगी।" दयणा नित्यकर्म के लिए माया को ले गई।

बीच में कितने दिन रहे। घर - घर सफेदी हो चुकी है। चित्रकार ने आकर दीवारों पर मंगल चित्र बना दिये हैं। बरामदे में बेदी सजाई है। बाहर चौक में छावनी कर दी गई। दूर के भाई, कुटुम्बियों के घर नाई निमंत्रण देने गया है। दोपहर बाद तो रथ खींचना शुरू हो जाएगा। सारे पुरी निवासी एकत्र हो जायेंगे। बड़दाण्ड या शरधाबाली घर। अभी से लोगों की कतार दूर - दूर तक फैल गई है। घंटे - दो घंटे बाद ये कतार ज्वार बन जाएगी। गुरुजी आने को कह गए थे। उनके हाथों पुरी के कई लोगों के यहाँ निमंत्रण भेजा गया था। चुड़ंग साही तो वह खुद जाकर सात सुहागिनों को न्यौता देकर बुलाएगी। ब्याह जल्दी होगा।

मुक्ता तत्पर हो उठी। बेदी पर छावनी बंध रही है। चारों ओर केले के खंभे लगाये गये हैं। छावनी तले पीपली का चंदोवा बांधने का आदेश दिया है। गुरुपद दास और नाई दोनों आ गए। गुरु को प्रणाम कर मुक्ता ने नम्र स्वर में कहा - "सारे निमंत्रण बंट गये। महाराज के पास से बुलावा आया था, सो गया था। वहीं से लौट

रहा हूँ। माया का दीक्षा निमंत्रण पाकर महाराज खुश हो गये। तुम्हें बधाई देकर कन्या के लिए ये अलंकार भेजे हैं। दीक्षा ग्रहण के समय महाराजा खुद पधारेंगे।" मुक्ता को प्रणाम करके नाई ने वस्त्र अलंकार खोल कर रख दिये।

मुक्ता की आँखें आश्चर्य में रह गई। नवरत्न के हार, हीरे का जड़ाव, अष्ट रत्न खचित बाजू, बटफल, माथामणि, चांदी की माला। बरहमपुरी पाटी की साड़ी और उपरान है। इसके साथ दो सौ रुपये। महाराज ने कहा - "ये सब रानी की तरफ से कन्या के लिए।"

माथे से लगा कर मुक्ता ने ग्रहण किये। पीछे देखा तो मक्खन, दही, सब्जी लेकर तीन ग्वाले खड़े हैं। गुरुपद दास ने कहा - "महाराज ने ये सब भेजे हैं! परसों दो भार दूध लाने के लिए ग्वाले से कह दिया है।"

मुक्ता की आँखों से कृतज्ञता के आँसू बह गये। गजपति महाराज का इस माहारी के प्रति कितना स्नेह, कितनी करुणा है! उनकी दया न होती तो आज माहारियों की यह नृत्यशाला स्थापित हो पाती?"

गले से सोने की माला निकाल कर नाई और भार वाले को देकर विदा किया। गुरुपद दास हँसते हुए कहने लगे - "और मेरी विदाई?"

नित्यकर्म के बाद आंचल से मुँह पोंछती हुई माया को थाम कर कहा - "आप के हाथों में मैं अपनी बेटी को सौंप रही हूँ! उसे नृत्य पट्टीयसी बना कर प्रभु की मनोहारिणी बना दें। यही आप जैसे गुरु की असली विदाई है!"

गुरुपद दास तृप्ति में हँसने लगे - "हमारी - तुम्हारी क्या इच्छा है? सब कुछ उनकी इच्छा से चलता है।"

गुंडिचा घर से बाहुड़ा यात्रा की कलरव ध्वनि सुनाई दे रही थी। गुरुपद दास ने उधर कान लगाये। दोनों हाथ जोड़ कर... माथे पर लगा लिये। कहा - "जा रहा हूँ, अभी रथ खींचना शुरू हो जायेगा। श्रीजगन्नाथजी के रथ दर्शन कर जीवन जन्म - मरण से मुक्ति पाउंगा।"

"रथेतु वामनं दृष्टवा पुनर्जन्म न लभ्यते।"

कौन जानता है, तीनों रथ आज मंदिर के पास पहुँचेंगे या नहीं। उनकी इच्छा! भक्तों को छोड़ कर जाने की सांवरे की क्या इच्छा है? इतने हठीले हैं कि रथ जितना भी खींचो, एक पग भी नहीं चलेगा।

गुरुपद दास के जाने के बाद मुक्ता ने माया का पाट, खण्डुवा और अलंकार सब एक - एक करके पिटारी में सहेज कर रख दिये। आज अगर बड़दाण्ड में रथ नहीं पहुँचा तो यह सब रखने के लिए कल समय नहीं होगा। वहाँ 'मेलसेवा' में फुरसत नहीं होगी। सचमुच बाहुड़ा के दिन ठाकुर श्रीमंदिर द्वार तक नहीं पहुँच पाते। मुक्ता की भक्ति में बंध जाते हैं। इच्छामय रत्नसिंहासन पर पधारने की इच्छा नहीं करते। जानबूझ कर देर कर देते हैं। जगजननी लक्ष्मी का भुवनमोहन रूप भी उन्हें याद नहीं आता। वे तो भक्तों के बीच सब भूल जाते हैं, इसीलिए तो लक्ष्मी रूठ जाती हैं प्रिय जगन्नाथजी पर। वे अकेली श्रीमंदिर में रह जाती हैं। भाई - बहन को लेकर ये यात्रा करेंगे। मां के रूठने का अभिनय देवदासियां करती हैं।

हेरा पंचमी के दिन लक्ष्मी का प्रतिनिधित्व करती ये देवदासी वृंदा गुंडिचा बाड़ी जाकर गुस्सा हो रथ की लकड़ी तोड़ देती हैं। जगन्नाथ को लेने वाले दइता की धोती भी फाड़ डालती हैं। तरह - तरह की बातें सुना कर लौटती हैं।

यह परम्परा युगों से चली आ रही है, परंतु समय का स्रोत जिस तरह से टेढ़ा - मेढ़ा बहने लगा है, कौन जाने क्या होगा। मुक्ता के बाद जो नई पीढ़ी आयेगी, वह भक्ति और परम्परा में पूरी तरह से अपने को न्यौछावर कर सकेगी? मुक्ता माहारी इन्हीं विचारों में खोयी थी। तभी दयणा ने आकर खबर दी कि दीदी, किशोरी मौसी आई है!

मुक्ता ने पिटारी बंद करते हुए कहा - "यहीं बुला ला!" किशोरी माहारी का चेहरा तमतमाया हुआ था। अभी जैसे आँखें भर आयेंगी।

घबरा कर मुक्ता ने पूछा - "मौसी! ऐसी क्यों दिख रही हो?" मुक्ता को थाम कर वह रो पड़ी। उसकी रोने की आवाज से समझ गई कि वृंदा के जरायु से देव शिशु पृथ्वी पर अवतरण को संग्राम कर रहा है!

किशोरी माहारी को सहलाते हुए मुक्ता ने कहा - "तुम चुप रहो मौसी। रोने से समस्या का समाधान नहीं होता। कोई नहीं है, तो तुम्हारे साथ श्रीजगन्नाथजी तो हैं! चलो, तुम्हारे साथ मैं भी चल रही हूँ।"

आँसू पोंछ किशोरी मौसी ने कहा - "बेटी! मैंने सब को बुलाया, मगर किसी ने नहीं सुना। जिसने पाप किया है, वह प्रायश्चित करे। हम क्यों पाप में पड़ें? मैं क्या नहीं जानती ये सारी कितनी सती - सावित्री हैं! बच्चें पैदा नहीं किये तो सावित्री बन गई! यह बात मुक्ता की समझ से बाहर की बात है। सिर्फ वृंदा ही खराब हो गई?

सब कुछ इन आँखों देखा और कानों सुना है। राजा या राजगुरु के आगे मुँह खोला तो मंदिर से हटा दी जायेगी। जमीन तो गई, खेई भी चली जायेगी। सबके सामने आयेंगे सारे सतीत्व तुम्हारे।

किशोरी माहारी का दुःख में मिला आक्रोश या आक्रोश में मिला दुःख निकल रहा है, यह बात मुक्ता की समझ से बाहर है, परंतु वह जानती है कि किशोरी माहारी दुःख से बुर तरह टूट रही है।

राजा - जमींदारों की जमीं चली गई, जमींदारों द्वारा जो जमीन दी गई थी, वह भी चली गई। खेई के रूप में थोड़े से प्रसाद से क्या पेट भरेगा? युद्ध - दुर्भिक्ष - बाढ़ और हैजा से चारों तरफ भक्तों का समागम बंद हो गया था, उस समय किशोरी माहारी भरपूर यौवन में थी। तब गले में मधु और रूप में मधु झराती रात की खुमारी थी। अपनी कन्या वृंदा और स्वयं को बचाये रखने के लिए राजा महाराजा की संगीत सभा में जाती थी।

उस समय पैर फैलाने पर पाताल और हाथ फैला देती तो स्वर्ग दूर न था। फिर भी पांव जमीन पर और हाथ में जगन्नाथ को थामे रहती थी। सामंत राजा और जमींदारों की कामुक निगाहें उन पर पड़ते ही सर्व सतीत्व भाव में बदल जाती थी।

परंतु इस पर ईर्ष्यालुओं ने कई अपवाद और निंदा फैलाई कि यह तो बाईजी की तरह गाना गाती है। कुलटा बन गई! उनकी आँखों में वैष्णव कवि की कविता गूंज उठी। 'मैं कुल से बाहर हो गई'। जल में रह कर जल स्पर्श नहीं करे, इस भाव से कठिन तपस्या के साथ सिर्फ चकाडोला के सामने संगीत और नृत्य पेश करेगी। नव जीवन धारण करने को तैयार होगी।

वृंदा के पतन से उनके तपसिद्ध जीवन को ठेस पहुँची है, परंतु क्या किया जाय? चला गया समय, बहता पानी अंजुरी में समेटा नहीं जा सकता। उसका सामना करना ही पड़ेगा।

किशोरी माहारी को सांत्वना देते हुए मुक्ता ने कहा - "किसने क्या कहा, उसे भूल जाओ मौसी। अभी तुम्हारे सामने सबसे बड़ा सवाल वृंदा और उसकी संतान है।" दोनों हाथ जोड़ कर प्रभु को प्रणाम कर कहा - "प्रभु के बाहुड़ा वेश के दर्शन करने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला। मुझे क्षमा कीजिए... जीती रही तो अगले साल दर्शन करूँगी!"

किशोरी माहारी ने पूछा - "तुम वृंदा से घृणा तो नहीं करती न बेटी?"

मुक्ता की आँखें संवदेना में भर आयी। ममता में अंधी अपूर्व मातृत्व से खिला मन। क्या उत्तर दे! जिसका मन एक अनदेखी वेदना से विदार्ण है।

मुक्ता बोली - "पाप से घृणा करनी चाहिए, पापी से नहीं।"

"करि कराउ थाए सेहि, ता बिनु अन्य गति नाहि।"

'सिर्फ वही सब कराता है, उसके बिना दूजा कोई रास्ता नहीं।'

अगले दिन मुक्ता घर लौट आयी। दिन में भी वह कहीं अकेली नहीं जाती। मगर आज पहले दायी, वहाँ से वैद्यराज और फिर ओझा आदि के पास गई। सिर्फ वृंदा का जीवन बचाना बड़ी बात बन गई।

परंतु सब कुछ बेकार हो गया। किशोर उम्र में प्रसव पीड़ सह न सकी। पुत्र जनम देकर वृंदा के प्राण-पखेरू उड़ गये। चेहरे पर प्रशांति थी। कारण वह समझती थी और उस धारणा को लेकर चली थी कि वह तो श्रीराधा है और श्रीकृष्ण के साथ उसका मिलन हुआ है। उसी महाभाव में महा प्रणय, वर्षा, अंधेरी रात। मानो आज किशोरी माहारी का दुःख धो रही है, प्रकृति!

सारी रात मुक्ता किशोरी माहारी के आँसू पोंछती रही। बच्चें को साफ - पोंछ कर उसे मधु मिला पानी पिला रही थी। वृंदा के मरने से बच्चे का जीना उसे और दुःखी कर रहा था। वहीं बैठी मुक्ता अनुभव कर रही थी कि सम्पर्क का अर्थ ही दुःख है। जब नया सम्पर्क जुड़ जाता है तो एक नया दुःख भी जीवन धागे में गुंथ जाता है। घर पहुँच कर मुक्ता गा रही थी -

"पुनरपि जनमं, पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी, जठरे शयनं।"

यही जीवन की चिर प्रवहमान धारा है। बाहुड़ा एकादशी!

* * *

आकाश बिलकुल साफ है। बड़े देवल से गुण्डिचा तक विस्तृत जन समुद्र। उस के बीच तीनों रथ चल रहे - तालध्वज, दर्पदलन, नन्दिघोष!

हरि बोल ध्वनि, घंटा, घंट, काहाली आदि के साथ 'डाहुक' की अश्लील बोली में रथ आगे चल रहा है। रथ के ऊपर घंट ध्वनि जोर से सुनाई दे रहे हैं। उनके आरोहण - अवरोहण की भंगिमा सब को मोहित कर देती है।

बाहुड़ा यात्रा के समय श्री जगन्नाथजी का रथ कल रुक गया है। भाई - बहन का रथ चलता रहा - कोई परवाह नहीं। जाते समय भक्त ने बुला दिया होगा। बंधु रे, साथी रे, रुक जाओ जरा! भक्तों के बुलावे से जरा रुक गये। सारी रात यहाँ सरधा बालू पर अंतरंग आकाश में गुजार देंगे। भक्तों को विदा में प्रतिश्रुति देंगे -'चलता हूँ। अगले साल, फिर भेंट होगी। यहीं!'

अनगिनत भक्त रथी खींच रहे थे। अचानक उनकी आँखें मंदिर की ओर चली गई। दीवार पर। चाहणी (दर्शनी) मंडप पर सखी, परिचारिका और विष्णु पटरानी लक्ष्मी पधारी हैं! स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि जेठ और ननद के रथ आकर सिंहद्वार पर लग गये हैं! पर जगन्नाथजी को देर क्यों?

झूमते - झूमते प्रभु पधार रहे हैं। रथ रुक गया। नौहर के सामने।

हड़बड़ी में महालक्ष्मी वहीं से थाली लेकर चली आयी। अर्घ्य थाल लेकर दासी परिचारिका आदि चल रही है। उनके साथ मुक्ता, कमला, विमला, हरिप्रिया, कोकिला और लक्ष्मी माहारी आदि। हुलुध्वनि बड़दांड पर गूंज उठती है। होठों से प्रभु के पधारने पर गुमान और प्रेम संगीत। सब सजधज कर आयी हैं, रथ में जगन्नाथजी के दर्शन करने। मानो स्वर्ग से किन्नरियाँ उतर आयी हैं! घंटा - घंट, कीर्तन माहारियों का स्वर निखर रहा है।

यहीं तो गजपति महाराज रामचंद्रदेव पधार रहे हैं। सेवक वेश में विश्वजननी लक्ष्मी की अगवानी करेंगे। विश्वपिता श्री जगन्नाथजी तक स्वागत करने लगे। इसमें 'छेरा पंहरा' (राजा द्वारा रथ पर झाड़ू लगाना) का वेश नहीं, ताम झाम भी नहीं। एक सेवक के वेश में आ रहे हैं। उन्होंने सिर्फ एक पाट पहना है और कंधे पर उत्तरीय से दिख जाता है प्रशस्त वक्ष पर यज्ञोपवीत।

मुक्ता लोगों की भीड़ में किसी आदमी को ढूंढ रही है! कहाँ गये वे? होते तो इस भीड़ में दिखाई देंगे?

महाराज रामचंद्रदेव आ रहे हैं, महालक्ष्मी की शिविका की ओर।

रामचंद्र देव का दीर्घ वर्ण, तनी आँखें, तीखी नाक और घने बाल सब मिल कर नरोत्तम भुईंमल का भ्रम पैदा करते हैं!

महालक्ष्मी की शिविका के पास चँवर लिए देवदासियाँ जगन्नाथ के रथ की परिक्रमा करने लगी। भजन, कीर्तन और 'जय जगन्नाथ' के स्वर्गिक स्वर के बीच

लक्ष्मी नारायण भेंट, चौपदी की ध्वनि मर्त्य लोक में नित्य बैकुंठ का भ्रम पैदा करती हुई।

महाराजा ने महालक्ष्मी की चल प्रतिमा को दोनों हाथ फैला कर रथ की ओर थाम लिया। देवदासियों की शंख और हुलु ध्वनि में बड़दांड भर गया। जगतकर्ता की वंदना कर जगज्जननी लौट गई मंदिर में।

रथ आ कर मंदिर के सामने लग गया, फिर भी लोगों की भीड़ कम नहीं हो रही। आवेग में वे प्रतीक्षा कर रहे हैं - प्रभु कब निद्रा - वेश में दर्शन देंगे!

* * *

सेवा करके लौटते वक्त भी मुक्ता की आँखें कुछ ढूंढ रही थी। भीड़ से वही आदमी निकल आयेगा और कहेगा - 'मैं जीवित हूँ!' हे प्रभु तुम्हारी दासी बन कर जीवन गुजार दिया। आज तक कुछ नहीं मांगा, परंतु आज अपने भाई का जीवन मांग रही हूँ। जहाँ भी रहे, सुखी रहे। नीलचक्र की ओर देख गुनगुनाती रही। पिछली रात मृत्यु के संग भेंट हुई थी। वृंदा की अंतिम शैय्या के पास। तब से अंदर ही अंदर कुछ खोता जा रहा है। दूसरों की मृत्यु से वह रो पड़ता है, स्वजन की मृत्यु का भय रहता है। रात भर मुक्ता सो नहीं पायी। मानसिक अस्थिरता में निद्रा वेश देखने की इच्छा न हुई। मन तो चिंता में भरा था। शून्य पुरुष को देखने के लिए तन, मन, हृदय चेतना सब शून्य बनाना होगा। हृदय को कोरा कागज बना देने से ही प्रभु के प्रेम का संगीत लिख सकते हैं।

कल अपरान्ह में जगन्नाथजी मंदिर में प्रवेश करेंगे और परसों माया का दीक्षा ग्रहण! उसे तो उसके लिए व्यग्र होना चाहिए, परंतु वह तो नरोत्तम भुईंमल की सुरक्षा के लिए बेचैन हो रही है! सिपाहियों द्वारा गोली चलाने की बात हो रही थी। हे बलियार भुज! आप जानें! तुम्हारी धरती का मान रखने के लिए ही तपस्या कर रहे हैं वे! आप उनकी रक्षा कीजिए और पथ दिखाइए।

आज बड़ी एकादशी है! जल भी नहीं लेती। माया जिद्द कर रही थी - "मैं भी एकादशी करूँगी!" समझा - बुझा कर मुक्ता ने उसे खाना खिलाया। दयणा देख कर चली जाती, मगर कुछ बोल नहीं पाती। निद्रा वेष के दर्शन न करना, द्वादशी गुजार देना, यह तो उसके स्वभाव के विरुद्ध है। शायद वृंदा की मृत्यु ने व्यथित किया, परंतु क्या किया जाए! मृत्यु कहाँ नहीं पहुँचती?

यहा कैसा असंभव दृश्य है! सत्य या सपना? मुक्ता की आँखों के सामने सब दिखाई दे रहा। श्वेत - श्याम आरोहण करते हुए दो वीर उसकी ओर आ रहे हैं। मुक्ता को लगा प्रभु की असीम करुणा है। कांची - कावेरी युद्ध के समय दोनों भाइयों ने काले और सफेद घोड़े लेकर माणिक ग्वालिन से दही प्राप्त कर उसका जनम सार्थक बना दिया था। आज उसी वेश में उसके सामने पधारे हैं, चिंता-विकलता मिटाने। पास आयेंगे तो निवेदन करेगी! प्रभु दया करें। रूप प्रकट करें।

दोनों घुड़सवार सचमुच बुला रहे हैं - "मुक्ता माहरी हमें पहचान नहीं रही? प्यास लगी है, पानी दो!"

मुक्ता हँस पड़ी। प्रणाम करते हुए कहा - "तुम जिस रूप में भी आओ, मैं पहचान लूँगी। तुम मेरे भीतर और मैं तुम्हारे भीतर कब से लीन हो चुकी हूँ।" कुएं तक दौड़ कलश में पानी लाकर मुक्ता पानी दे रही थी। परंतु यह क्या है? कुँआ तो सूख रहा है... फिर भी उनकी प्यास नहीं मिटती। वह समूची पसीने में भीग गई, यह क्या हुआ? इन दोनों को जगन्नाथ और बलभद्र मान रही है? वह तो माणिक ग्वालिन की तरह पुण्यवती नहीं। उसकी आँखों में पानी भर आया। तब उसे पता चला कि उनमें से एक नरोत्तम भुईंमल और दूसरा मित्र सोमनाथ पाढ़ी है और एक दिन दोनों आधी रात वहाँ छुपा कर रखी विप्लव - संपदा ले गए थे। प्रभु की कृपा से नरोत्तम जीवित हैं। मुक्ता आनंद विभोर हो गई। ऐसे ही पानी देते - देते अनायास कलशी छूट गयी हाथ से। गिर कर टूट गई!

उस आवाज से मुक्ता चौंक गई। कहाँ घुड़सवार और कहाँ कुँआ? बिस्तर पर पसीने से वह तर हो गई!

द्वादशी चंद्रमा की म्लान रेखा अस्पष्ट है। ऊषा का उजाला चारों ओर आकाश को चंदन चर्चित कर चुका है। बिस्तर पर उठ कर बैठ गई। ऐसा सपना उसने क्यों देखा? मिट्टी का बर्तन टूट जाने पर तो अशुभ होता है! क्या खतरा आ सकता है उन पर? हो सकता है। रात भर वह नहीं सोयी, इसलिए सुबह ऐसा सपना देखा। घुड़सवारों को जगन्नाथ और बलभद्र का रूप कैसे दे दिया? सचमुच भगवान को देखने की लालसा है उसके मन में। फूलों में पराग की तरह छुपी। यह स्वप्न क्या आंशिक रुपांतर है? परंतु नरोत्तम और सोमनाथ ने सपने में पानी क्यों मांगा? सचमुच क्या ये दोनों गोरे अफसरों के भय से भूखे - प्यासे घूम रहे हैं घने जंगल में? मंदिर की ओर से मंगल आरती व शंख ध्वनि सुनाई देने लगती है। कल भक्तों को 'अधरपणा' दिलाने के लिए प्रभु रुक गये मंदिर के बाहर।

आज प्रभु मंदिर के अंदर पधारेंगे। सांसारिक चिंता का अवसर कहाँ?

आँसू पोंछ मुक्ता बोली - "नरोत्तम! जगन्नाथ ही सहाय!"

दयणा से कहने लगी - "माया को जल्दी चंदन - हल्दी लगा कर स्नान करा दो। अक्षत, सुपारी, नारियल, फूल और बेर के पत्ते सब सहेज रखना होगा। मुझे मंदिर और वहीं से राघवदास के मठ से आते - आते देर हो जायेगी। कल सुबह ये सब करने में देर होगी। समझी?"

सोयी हुई माया का कपोल चूमते समय मुक्ता के सामने नाच उठी थी मृत वृंदा! बिचारी पाप और पुण्य की परिभाषा जानने के पहले ही अलौकिक हो गई। जीवन - मरण को पहचानने से पहले ही चल दी।

अब किशोरी मौसी की आशा - भरोसा सब वह छोटा बच्चा है। किशोरी की अवस्था ढल गई है। पता नहीं मृत्यु कब समेट ले अपने आगोश में? तब शिशु का क्या होगा?

चुड़ंग बस्ती में तीन कमरों वाले घर के सिवा कोई संपत्ति नहीं।

बूढ़ी हो जाने के बाद प्रभु की सेवा नहीं कर पाती। घर का खर्च अपनी पारी बेंच चलता है। इस बस्ती की ज्यादातर देवदासियों की हालत यही है। राजानुग्रह, मां की सम्पत्ति और कुछ उपहार। इसलिए मुक्ता का संसार चल रहा है। फिर मुक्ता का हाल भी वैसा ही होगा। मुक्ता खुद को समझाती है, विश्व का सारा सुख जहाँ, वह उन्हीं की आश्रित। वह तो उनके प्रेम की खुद साम्राज्ञी है!

मंदिर तक आने से पहले ही भक्तों की भीड़ हो गई। पण्डा, पढ़िहारी और दयिताओं में ठाकुरजी की पहंडी के लिए व्याकुलता नहीं झलकती। मुक्ता देख रही है कि आज वो मान नहीं। उद्विग्न हो एक दयिता से पूछा - "आज ऐसा क्यों उदास भाव? कोई बात?" दयिता ने कहा - "कल रात में जो 'अधरपणा' भोग हो रहा था। दो हंडी अचानक टूट गई। सिर्फ एक बची! पता नहीं क्या अन्याय हुआ? भगवान का यह कोप हुआ!

मुक्ता चौंक गई। कल रात के स्वप्न के साथ यह कितना मिलता - जुलता है!

तब क्या भाइयों ने अंजली फैलायी थी? मुझसे गलती हो गई? मैंने जाकर क्यों नारियल, छेना, केले, नवात, कपूर, कालीमिर्च आदि से बना पना भोग नहीं दिया? केवल पानी ही दिया! अपनी मूढ़ता को धिक्कारने लगी मुक्त। अचानक उसको अपनी भूल याद आयी थी - वह घर पर अधरपणा देना ही भूल गई थी!

मौन ही प्रभु के पास जाकर मुक्ता ने क्षमा मांगी। तुम तो करुणा सागर, स्थित प्रज्ञ हो। मेरी जैसी एक मामूली नारी के विचलन में तुम हिल गये! हिला दिला। 'अधरपणा' में क्यों ऐसा हुआ? मैं तो मानव हो कर पैदा हुई। माया, मोह, स्नेह, प्यार सब कुछ छोड़ निर्मोही कैसे बन सकती हूँ? सब कुछ जानते हुए भी मेरे लिए इतना कष्ट सहना पड़ा!!

मुक्ता कही रही थी और रो रही थी। उसका शरीर कांपने लगा।

अचानक मुक्ता मूर्च्छित हो गई। सेवा करने वाले भक्त दौड़ आये। मुक्ता को होश में लाया गया, जल के छींटे, पंखा किया। होश आने के बाद उसे पता चला कि रथ के सामने ही वह गिर पड़ी थी। उसके चारों तरफ सेवकों की भीड़ है। महंत सम्पूर्णानंद उसके पास योगासन में बैठे हैं। बंद आँखों से आँसू की धारा निकल आयी।

वह लजा गई। यह क्या हुआ उसे? सबके सामने कितनी लज्जा आयी, प्रभु! खड़ी हो गई। स्निग्ध स्वर में कहा - बाबा! सम्पूर्णानंद ने आँखें खोली। मुक्ता ने प्रणाम किया। "आज तो मैं आपके पास जाने वाली थी। कल राजभोग के समय जरूर मंदिर आयेंगे, भूलेंगे नहीं!"

सम्पूर्णानंद जी ने पूछा - "अब ठीक लग रहा है?"

- "मैं अब ठीक हूँ, आपको कष्ट हुआ। क्षमा चाहती हूँ।"

कुंठित स्वर में कहा - "माया तुम्हारे पास बहुत जरूरी है। फिर भी मन है। पूछ रहा हूँ - माया कैसी है? मेरे बारे में पूछती होगी?"

मुस्कराते हुए मुक्ता के कहा - "आप कल खुद आकर देख लेना! आप ही उससे पूछ लेना! मैं क्या कहूँ? कल उसके दीक्षा उत्सव में जरूर शामिल रहें?"

सम्पूर्णानंद जी कुछ कहने जा रहे थे, मगर चुप रह गए। भीड़ बढ़ती जा रही थी। उस भीड़ में मुक्ता खो गई। थोड़ी देर बाद ठाकुरजी एक - एक पहंडि विजय करते हुए मंदिर में पधारेंगे। रथ देख सम्पूर्णानंद जी सोच रहे थे, धन्य हे महाबाहु! रत्नसिंहासन त्याग कर इस धूल - मिट्टी में भक्तों के बीच आने के लिए रथ यात्रा के दिन इतने उतावले हो जाते हैं! आज भक्तों को छोड़ कर जाने की इच्छा नहीं होती शायद। हे भक्तवत्सल, तू इतने धीरे चलता है एक - एक कर।

पहंडि के समय यह अपूर्व दृश्य! टाहिया हिला - हिला कर, बाहें फैला कर

रसिक शिरोमणि पधार रहे है! नौ दिन हो गए! उन्होंने नीलाद्रिकंदर छोड़ दिया था। लौट कर द्वार पर ठहर गए हैं! प्राण प्रिया लक्ष्मी रूठ कर बैठी होगी। मानभंजन के लिए अलंकार लेकर आये हैं। नारी का मानभंजन और मन बहलाने के लिए मीठी बातें और वस्त्र - अलंकार की पेटी! यही तो युगों से रहा है।

परंतु यह क्या? सिंहद्वार रूद्ध है! भाई - बहन के साथ वे मंदिर के इस पार हैं।

प्रभु के होठों पर मंद मुस्कान है। रथ से उतरते समय देखा है - दासियों व सखियों के बीच मान भरा प्रतीक्षित कमला मुख! बीणानंदी का स्वर भी क्रोध में भरा हुआ है - "दासी, द्वार बंद करो!"

कोमल स्वर में कहने लगे प्रभु - "प्राणप्रिये, सिंहद्वार खोलो! तुम्हारा विरह मैं सह नहीं सकता। क्षमामयी, मेरी कोई गलती हो गई तो क्षमा करो!"

उधर से लक्ष्मी की गुस्से में आवाज सुनाई दी - "छलिये, छः दिन का काम कह कर गए, और बिता दिये नौ दिन! बहिन - भाई को साथ लेकर यात्रा करने गये! जहाँ गये, वहीं जाइये। बड़े देउल में मुझे अकेली छोड़ कर जब से गए, तब से ही मेरा दरवाजा व हृदय द्वार बंद हो चुके हैं!"

इधर जगतकर्ता के मुख से अमृत निकल रहा था और चापलूसी कर रहे थे - 'ठीक है बहिन सुभद्रा को लेकर गया। तुम्हें न ले जाने में गलती हो गई। कारण तुम्हारे जेठ साथ थे। तुम मेरे साथ जाती तो तुम्हें संकोच लगता। साथ रहने पर बड़ों के कारण मेरे साथ प्रेमालाप नहीं कर पातीं। इससे बढ़ कर क्या कष्ट होता हमें? तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम नौ दिन की विरह ज्वाला में तप कर और भी निखर आया है। देर मत करो, द्वार खोलो! तुम्हारा त्रिभुवन मोहिनी रूप देख कर मेरी विरह ज्वाला शांत हो। देखो, तुम्हारे लिऐ अलंकार लाया हूँ! कड़ाभिड़ा झरा, जगतजिणाताड़, सम्बलपुर की बाकड़ेअरिया, गजबंध हार, कटक तारकसी की कर्ण फूल, नूपुर, मर्कत चूड़ी, हीरे की वसणी और बरहमपुरी पाट! ये सब अपनी प्रियतमा को पहना दूंगा - द्वार खोलो!'

जगजननी लक्ष्मी क्या ऐसी - वैसी औरत हैं, जो इन को बातों में भूल जायेंगी? विदूषी कमला ने ठीक पहचाना - पुरुष हृदय का गोपन रहस्य। जब पत्नी के सन्दर्भ में कोई अविचार विश्वासघात की कहानी पति मन पर लिखी होती तो दुर्बलता को छिपाने के लिए 'देहि पद पल्लव मुदारं' की नीति अपना लेते हैं। यह सत्य जानने के

बाद गुस्सा दूना हो गया। ऊँचे स्वर में कहने लगी - ''जाओं, ये खुशामदी बातें गोपुर की ग्वालिनों से कहो। उनमें ज्ञान, बुद्धि, विचार और लोकाचार कुछ नहीं। तुम जैसे नचाओगे, वे नाचेंगी। अंधेरी रात में भी वे पति के पास से उठ कर तुम्हारे साथ नाच सकती हैं। मुझे उन लोगों की तरह न समझ लेना। मैं सागर राजकुमारी हूँ। मेरी वंश मर्यादा, आत्माभिमान और गहराई नापने के लिए तुम जैसे गाय और गोपियों के पीछे फिरने वाले वाचाल और दायित्वहीन में शक्ति कहाँ? वस्त्र - अलंकार का लालच देकर गोपियों को भुलावा देने की तरह मुझे भी भुलाने की सोच रहे हो? लौट जाओ, ग्वालिनों को देना या बहन सुभद्रा ग्वालिन को दो। राजा की बेटी के सामने ये सब तुच्छ हैं!''

अभी तक प्रभु मुस्करा कर चुप थे। लक्ष्मी की भर्त्सना को टालते जा रहे थे। वास्तव में अंतरंग अनुनय - विनय कर रहे थे सिंहद्वार खोलने के लिए, परंतु अब सीमा से बाहर चली गई। उनकी गोपियों को ऐसा लांछन देगी और जगन्नाथ जी चुप रहेंगे? ऐसा स्त्रैण भाव कभी किसी पुरुष के लिए उचित है? वह तो पुरुषोत्तम ठहरे!

चकाडोला की आँखें और विस्तृत हो गई। नासिका से सांस फूल रही थी। क्रोध में कहने लगे - ''लक्ष्मी! तुम जैसी रूप में मतवाली अहंकार नारी गोपियों की भक्ति पहचान नहीं सकी। उनके कौन - से गुण पर तुम तुलनीय हो? ज्ञान, बुद्धि, वंशमर्यादा, लोकाचार सबसे परे निर्गुण निराकार परब्रह्म से प्रेम करना, त्याग की चरम सीमा पार कर जाना तुम जैसी सुख - लोभी नारी के लिए समझना कैसे संभव है? रूपसी राजकन्या हो, इस पर तुम्हें अहंकार है। पिता तो नमक बेचने वाले हैं। मछली का व्यापारी, मछली पकड़ने वालों के साथ गुजार देता है। बेटी भेंगी, चंचल प्रकृति, ईर्ष्या आदि से भरपूर नहीं होगी तो क्या होगी? सगुण - निर्गुण समन्वय में असफल रहती है। अपने गर्व के कारण वह नित्य वृंदावन का दर्शन कभी नहीं कर पायी, मगर वृंदावन तो उनकी लीला भूमि है। तुम जैसी मुखरा - चंचल स्वभाववाली को मैंने ही संभाला, कोई और होता तो त्याग देता कब से।''

बड़े भैया ने देखा कि परिस्थिति बिगड़ती जा रही है। इस 'जगा' को क्या अक्ल है? स्त्री गुस्सा हो तब स्वामी को कोमल, क्षमाशील और उदार हो जाने पर सब ठीक हो जाता है क्योंकि नारी थोड़ी देर ही गुस्सा करती है। ठीक समय पर असली बात भूल जाती है 'अक्लमंद!'

रोषपूर्ण बड़े भैया की आँखें देख श्रीजगन्नाथजी चुप हो गये। बड़प्पन के भाव

से बलराम जी ने कहा - "कान्हा, तुझे लक्ष्मी ने वाचाल और दायित्वहीन कहा, क्या गलत है?" सागर राजकुमारी जगज्जननी लक्ष्मी को ऐसी बात कहने का साहस किया? वह जग का सुख - दुःख जान कर अन्न - वस्त्र प्रदान न करती तो तू आज वृंदावन में वंशी बजाता और इधर पृथ्वी रसातल में डूब जाती। कुछ आगे बढ़ कर सिंहद्वार की तरफ जा बड़े ठाकुर ने कोमल स्वर में कहा - "लक्ष्मी देवी, मेरे छोटे भाई ने अनजाने में जो कुछ कह डाला, उसे क्षमा कर देना। तुम जैसी परम ज्ञानी और विदूषी क्षमा नहीं करेगी तो पृथ्वी से क्षमा शब्द ही उठ जायेगा। मेरा भाई कुछ सोचता - विचारता नहीं, जो मुँह में आये बोल देता है। इसके दिल में कुछ नहीं है। अब दरवाजा खोल दो। हम भीतर जाएँ!"

जेठ की बात सुन कर पद्मालया लजा गई। मान और क्रोध कितना खतरनाक होता है! उनकी उपस्थिति भी भूल गई!

महालक्ष्मी ने दासियों से कहा - "दरवाजा खोल दो। बड़े ठाकुर कब से बाहर खड़े हैं!" द्वार खुल गया। तब तक वर्षा शुरू हो गई। लक्ष्मी ने क्षमा कर दिया, मगर इतनी जल्दी मान जाएगी? कोमल स्वर में लक्ष्मी कहने लगी - "बड़े ठाकुर जी, आप भीतर पधारो, कालिया को बाहर भींगने दो!"

यह भाव क्या अंतर्यामी नहीं जानते? सागर दुलारी को देख कर वे मुस्करा उठे। मुक्ता उस मृदु हास को देख रोमांचित हो गई। अभी तक महालक्ष्मी का वेश बनाये वह कितनी कुछ बातें कहती रही। मुक्ता अपनी स्थिति भूल गई थी। इन वचनिकाओं में वह आत्मविस्मृत हो गई थी। सारा शरीर स्तब्ध हो गया है। मामूली माहारी जैसा खुद को मान ही नहीं रहा। अब सिंहद्वार खुले, वह जड़ ही गई।

सर्वव्यापी सनातन की आँखें ज्वलंत पृथ्वी की तरह लग रही थी। अगणित ग्रह - उपग्रह आदि उसमें से शलाका की तरह निकल रहे हैं। भय से मुक्ता ने आँखें मूंद ली।

ठाकुरजी वहीं थिर हो गये। घण्ट - घण्टा सब कुछ थम गए। चारों ओर कोलाहल फैल गया - "मुक्ता माहारी मूर्च्छित हो गई!" सेवक और देवदासी स्तब्ध रह गए।

लक्ष्मी के घरवालों में किसी के मुख से निकला 'ओह!" कोई कहता यों बार - बार मूर्च्छित क्यों हो जाती हैं? यह सब लोक - दिखावा है!" "जवानी में सौ - सौ खसम, बुढ़ापे में हरिनाम!" तुम्हारी नब्ज हम जानते हैं। आधी रात में नरणगढ़ भुईंमल का आना - जाना क्या जगन्नाथजी नहीं जानते?"

किसी ने कहा - "निंदा - अपवाद तो राजधानी के हृदय का चंदन है। कोई कुछ कहे, राधा की जान कान्हा में। मुक्ता जाने कालिया को। भक्ति - भाव में वह मोहित हो गई है। तीनों ठाकुरों के सामने वैष्णव दल कीर्तन कर रहे थे। दोनों हाथ फैला कर कहने लगे - 'हरे कृष्ण... हरे राम...!' जय राधारानी - राई विनोदिनी. .... महाभाव चकाडोला... हाँ, यहाँ तो महाभाव है। जिस महाभाव में श्री चैतन्यदेव जगन्नाथजी के सामने मोह जाते थे। आज मुक्ता माहारी भी उसकी अधिकारिणी हुई है! कोई वैष्णव भक्ति भाव में विह्वल मूर्च्छित मुक्ता को छूता ही नहीं!"

सिपाही ने कहा - "श्रीमंदिर की माहारियों को पुरुष छूते नहीं!"

हँस कर वैष्णव ने कहा - "वृंदावन में एक ही पुरुष है और सब नारी हैं। इस नित्य वृंदावन में जगन्नाथ पुरुषोत्तम के अलावा हम सब नारी हैं।"

झांझ, ढोलक और ताल में मुक्ता चौंक उठी। वह हड़बड़ा कर उठ बैठी। नौ दिन बाद प्रभु मंदिर में पधारे हैं, पर वह यों निश्चेष्ट पड़ी है!

शरीर में थकावट। शांत शरीर में सजग आत्मा और प्रभु उसी तरह अपराजेय स्थिति की घोषणा कर रहे हैं।

थाली में फूल, अक्षत, बेर के पत्ते लेकर तीनों की वंदना की और दीप से आरती उतारी। माहारियों की हुलुध्वनि ने सारे मंदिर को गुंजा दिया। वैभव के साथ ठाकुरजी रत्नसिंहासन पर पधारे।

* * *

मुक्ता माहारी की गोद की बेटी देवदासी पद ग्रहण करेगी! यह खबर बाणपुर की नर्तकी यमुना बाई तक पहुँच गई। बचपन याद आ गया। पाजेब बांध मदालसा बनने वाली थी। साधना में उसकी कोई गलती न थी। वह छोटी - सी लड़की 'यमुना'। घुंघरु बांध कर उसने भूमि प्रणाम से शुरूआत की थी। सात्विक आहार, वेश और कीर्तन, श्रवण और गान में चला गया था उसका सारा बचपन। उसे देख कर मां की उदास आँखों में आशा उमड़ आयी थी। उनकी बेटी प्रभु की पूजा में रहेगी। नृत्य गुरु कह रहे हैं - "ऐसा अद्‌भुत नृत्य मैंने कहीं नहीं देखा।"

सब कुछ ठीक था। अक्षत लेकर दीक्षा के लिए बाईस पावछ चढ़ते समय उसे लौटना पड़ा। आरोहण से अवरोहण की ओर चली आई! शिखर से वह गर्त तक में उतर गई थी।

मुक्ति मंडप के पंडित ने तीव्र प्रतिवाद किया था। उसकी मां सोना माहारी ने मुक्ति मंडप का आदेश मान लिया था - "यमुना देवदासी के रूप में प्रभु के योग्य नहीं बन सकती!"

आठ साल की बच्ची यमुना कुछ न समझ सकी। वह माँ की आँखों से आँसू पोंछ कहने लगी - "मैं भी बड़ी होकर देवदासी बनूंगी, तू रो नहीं!"

वह क्या समझती थी कि बड़ी हो जाने का दुःख, किशोरी की लांछना और यौवन की यंत्रणा होता है।

बड़ी हो जाने के बाद मां ने सब कुछ बता दिया। वह मां की अपनी बेटी है, गोद की बेटी नहीं है। देवदासियाँ केवल गोद ली गई बेटियों को ही दीक्षा दिला सकता है, क्योंकि वे लोग देवता से विवाह कर आजीवन ब्रह्मचारिणी का जीवन बिता देती हैं। उनमें गर्भ संचार संभव नहीं। अगर हो जाये तो वह पापिन कहलाती हैं। सेवा से वंचित हो जाती है। फिर उनके बेटियाँ देवदासी के योग्य नहीं समझी जाती। इस निष्ठुर नियम ने यमुना के जीवन को बदल दिया। उसकी मां उन्नीस साल से सेवा से वंचित हो गई क्योंकि रणपुर राजा की कामातुर दृष्टि से सोना माहारी बच न सकी। देवता के दर्शन करने के बाद उपहार लेकर आये थे देवपत्नी का दर्शन करने। परिचय बातचीत प्रेम और आकर्षण। फिर दैहिक मिलन हो गया।

उन्नीस साल की सोना माहारी की योग साधना और ईश्वर आराधना कितनी होगी? अंकुश रखने के लिए मां न थी। अच्छा - बुरा, पाप - पुण्य देखने की उसकी उमर न थी। सोना माहारी अपने को भुला बैठी। उसी से मंदिर की सेवा से निकाल दिया गया।

उसके बाद रणपुर की रखैल महल में गोपन रह गयी। वहीं पैदा हुई थी यमुना। यमुना के जन्म बाद वह श्रीक्षेत्र लौट आयी। प्रभु अब और अधिक नहीं। त्याग का सुख मुझे दिया। भोग की ओर मैं स्वयं चली गई थी। हे पतितपावन! मेरी जैसी पतिता का उद्धार कीजिए। अपना नाम सार्थक करें प्रभु! सेवा तो चली गई, मगर नीलचक्र के नीचे जीने - मरने का अधिकार मुझे दीजिए। यही प्रार्थना करके मां जीती रही। यमुना चुपके - चुपके रणपुर में मणिनाग के पुजारी के पास पल रही थी। सोना माहारी उसका सारा खर्च दे रही थी।

सोना माहारी ने चार साल की अपनी बेटी यमुना को जनमानस के सामने पोष्यपुत्री के रूप में ग्रहण करने का अभिनय किया था। उसका एक लक्ष्य और

उद्देश्य था कि 'पोष्यपुत्री' के रूप में परिचित यमुना देवदासीत्व ग्रहण कर पाएगी। इसीलिए उसने उसको नृत्य, संगीत और सात्विक शिक्षा द्वारा लालन - पालन किया था।

उसकी अर्जी को महाराजा ने ग्रहण किया। उसे स्वीकृति देकर मंदिर भेज दिया। तलिच्छु महापात्र, पाटजोषी महापात्र और भितरच्छु महापात्र आदि ने मां के दिये हुए अर्थ स्वीकार करके मंदिर के कोष में जमा कर दिया।

एक अनैतिक कार्य घटित होने जा रहा है। यह देख मुक्ता की बुढ़िया नानी कमला माहारी ने आकर अभियोग किया, क्योंकि जब वह मणिनाग का दर्शन करने रणपुर गयी थी, उस समय उसने सुना था कि मणिनाग के पुजारी के घर में सोना माहारी के पाप का फल बढ़ रहा है। इस बात को उसने इतने दिनों तक छुपा कर रखा था, परंतु जब उसे पता चला कि श्रीजी के मंदिर में एक अनैतिक घटना होने जा रही है, तब उसने उस छुपे हुए सत्य का पर्दाफाश कर दिया। मुक्तिमंडप के पंडितों ने भी सत्यता की खोजबीन कर निष्ठुर निर्णय सुना दिया।

यमुनाबाई के जीवन में बाहर गायनी या भीतर गायनी होने के सौभाग्य के बदले 'राज अंगिला' होने का सुख आया। वह यौवन प्राप्ति के सातवें दिवस में किस तरह बाणपुर राजमहल आयी, किस तरह चौदह वर्षीय यमुना के विकासमुखी कोमल कली के समान तन और मन पचपन साल के बाणपुर के सामन्त राजा मानसिंह की सर्वग्रासी दैहिक क्षुधा के शिकार हुए थे, इन सब कड़वी मधुर अनुभूतियों को यमुना ने स्वेच्छा से भुला दिया। उसके बाद देवदासी का सपना गणिका के रूप में बदल गया। अब वह एक इज्जतदार गणिका है, नगरवधू नहीं। राज सभा में उसका सम्मान राजभोग्या राजनर्तकी के रूप में है। साम्राज्य विजय के कितने चौसर खेल में उसे मोहरा बनना पड़ा है, यह भी वह भूल गई है। आह! उस यन्त्रणादायक खूनी खेल को क्या पूरी तरह से भुलाया जा सकता है?

यमुना एक लम्बी साँस के बाद भीतर उठने वाले तूफान को कम करने की कोशिश कर रही थी। नहीं! बेकार है। वह तूफान सिर्फ यन्त्रणा का नहीं, बदले और प्रतिहिंसा का है। वह उस दिन शांत होगा, जिस दिन माहारी श्रेष्ठा मुक्ता को उस राजरास्ते पर खींच कर ले आयेगी। यही एकमात्र मौका है।

बेवकूफ आदमी ही मौके को हाथ से छोड़ देता है।

यमुना का सुन्दर मुखमंडल प्रतिशोध में विकृत दिखने लगा।

जिसके कारण से वह खुद दीक्षा ग्रहण से बच गयी थी, उसी तरह का कारण दिखा। वह अभियोग पत्र मुक्तिमंडप की पण्डित - सभा के पास भेजेगी। सिर्फ ब्राह्मण, क्षत्रिय, गोपाल घर या उसी तरह जलस्पर्श करने वाली जाति की लड़की ही देवदासी होने के योग्य है। माया के जाति, गोत्र और कुल का कोई परिचय नहीं। महंत सम्पूर्णानंद जी से मुक्ता माया को पोष्यपुत्री के रूप में लायी थी, इसलिए क्या वह देवकन्या हो गयी?

हो सकता है, मठाधीशों के कमजोर क्षणों के पाप का प्रतीक हो। उसकी मां अछूत भी हो सकती है।

यमुना बाई के होटों पर कुटिल मुस्कान खिलने लगी और उसकी बड़ी - बड़ी आँखें प्रतिहिंसा में छोटी - छोटी दिखने लगीं। मुक्ता माहारी की वही बिन जानी पहचानी पालित पुत्री देवदासी होना दूर की बात, राजनर्तकी भी नहीं बन सकती। उसको नगरवधू बनाये बिना यमुना बाई छोड़ेगी नहीं। तीव्र आक्रोश की भावना से यमुना बाई की दोनों नासिका फूलने लगीं।

त्रयोदशी चन्द्रमा की विजयी ज्योत्स्ना द्वारा पश्चिमाकाश में विदा का चुंबन लिखते - लिखते चतुर्दश सूरज की लोहित आभा से पूर्वाकाश रक्तिम हो उठा है। भरतिया पक्षियों का झुंड कलरव करते हुए समन्दर की ओर से मंदिर की तरफ उड़ता आ रहा है। उसी लोहित आकाश में उड़ती हुई सुदर्शन पताका दिखाई दे रही है।

उसी पतितपावन पताका की ओर देख कर प्रणाम कर कोमल कण्ठ से मुक्ता ने पुकारा- "माया! उठ बेटी! आज अपने जीवन की सबसे सुखद नई सुबह का तू स्वागत नहीं करेगी?"

आँख मलते हुए माया ने देखा। सद्यस्नातः मुक्ता माहारी उसके बिस्तर के पास खड़ी है। लगता है, जैसे उषा सुन्दरी मानव रूप में इस धरती पर स्वर्ग से उतरी है।

माया आधी जागृत, आधी स्वप्निल अवस्था में हँस पड़ी और फिर आँखें बन्द कर लीं।

मुक्ता ने फिर पुकारा - "माया! ओ माया! आँखें खोल, यह शुभ प्रभात कितनी सुन्दर साज - सज्जा के साथ तेरे स्वागत के लिए आया है। आज तो तेरी दीक्षा ग्रहण का दिन है।"

माया तुरंत उठ कर बैठ गई। आँख मलते हुए पलंग से नीचे उतर आयी।

मुक्ता ने उसके मस्तक पर चुंबन देते हुए कहा – "भगवान जगन्नाथ तेरी सहायता करें।"

दयणा आकर बोली – "दीदी! तुम जाओ, अपना नित्यकर्म समाप्त करो। मैं माया की जिम्मेदारी लेती हूँ।"

– "जल्दी करना" कह मुक्ता झट पूजाघर में आई।

आज उसका हृदय परम तृप्ति से भर गया है। इसे शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर पा रही। उस वर्णनातीत अनुभूति को वह खुद महसूस तो कर रही है, परंतु किसी को समझा नहीं पाएगी। गिरिधारी के काले मेघ समान भाल पर चंदन सजाते हुए प्रभो जगन्नाथजी की विश्व – विस्मय मूर्ति पर तुलसी का प्रसाद चढ़ाया और शालाग्राम को तुलसी – जल से स्नान करते हुए भक्तिविह्वल कण्ड से मुक्ता गुहार करने लगी – "प्रभो! आज तुम्हारे चरण कमलों में अपनी अबोध बेटी समर्पित कर रही हूँ। उसके सारे दोषों को माफ कर आशीर्वाद दो, प्रभो! वह तुम्हारी सेवा के योग्य बने।"

पूजाघर से निकल का मुक्ता ने देखा कि दयणा ने माया को बहुत सुन्दर वेश में सजा दिया है। देवदासी की सुन्दर वेशभूषा में वास्तव में माया बहुत सुन्दर प्रतीत हो रही है।

माया की पीठ पर नये मेघखण्ड के सदृश बाल बिखरे नहीं हैं और संन्यासिनी की तरह शरीर में वैराग्य की छाया भी नहीं है।

सिर के बाल बंधे हुए हैं। बालों में गाँठ के चारों तरफ बेला और गुलाब की माला है। इन्द्रधनुष के समान दोनों भ्रूलताओं के मध्यभाग में गोरचना, नासाग्र में हरिमंदिर का टीका, आयत आँखों में काजल की रेखा, भाल में चंदन की बिन्दी की सजावट और उसके बीच – बीच में सिन्दूर की बिन्दी ने उसके चपल सुन्दर चेहरे पर एक गांभीर्यपूर्ण भाव भर दिया है।

मांग में अलका मणि, बाल की गाँठ में चउँरीभुण्डि और झराकाठि, नाक में नाट मयूर गुणा और नोलक, कान में घेड़ी, मल्लीकली, चंद्रबाली और पेण्डीफूल, गले में तुलसी माला के नीचे चापसरि, गजबंध हार, हरड़फालिया माला, चंपाकढ़ी और नवरत्न हार, बाहु में ताइत, बाजूबंध, हाथ में पैंचखड़ू, बटफल, गजरा गोटी चूड़ी, बाहीं चूड़ी, हाथ पद्म, अंगुली में अष्टरत्न की अंगूठी, कमर में कमरसूता, गोठ और चन्द्रहार, पैर में बांकी पाहुड़ बेंगपाटिया पायल, घुँघरु और पाँव की पद्म मझली अंगुली

में झुंटिआ और पैर में आलता का आलेख है। काणिआ काछा कर पहनी हुई बासंती रंग की पाटसाड़ी के साथ गाढ़ी हरे रंग की कांचली माया के शुभ्र सुन्दर शरीर को और भी उज्जवल कर रही है।

माया के समूचे शरीर पर मुग्ध दृष्टि फिरा कर उल्लास में उसे गले लगा लिया। उसके मातृत्व की इंद्रधनुष की तरह उठती धारा में ममता और तृप्ति की धारा बह रही थी।

हाथ में अक्षत लेकर वह जब रुनझुन करती हुई बाईस पावछ चढ़ रही थी, चारों ओर देखने वाले थोड़ी देर के लिए थम जाते थे। इतना सुन्दर रूप इस लोक में संभव है? सजी - धजी माया को घेरे माहारियाँ चल रही हैं। प्रभु को फूलों से सजा कर पुष्पपालक बाईस पावछ पर टहल रहे हैं। मुक्ता को देख कर आवाज दी - "पाटजोशी याद कर रहे हैं! ठाकुरजी का राज भोग हो चुका है। तुम्हारी बेटी दीक्षा लेगी।"

मुक्ता ने उत्तर दिया - "हाँ! बेटी को लेकर जा रही हूँ।" तेजी से पावछ पार कर मंदिर में आ गई। पीछे - पीछे माया! मंगल संगीत गाती उनके साथ कुछ सुहागिनें चल रही थीं।

अक्षत अंजरी लेकर माया जय - विजय द्वार पर खड़ी है। उसके शांत - सुन्दर मुख पर चंचलता, चपलता नहीं। कुछ होगा - यही भाव उसकी आँखों से पता लगता है।

घंट - घंटा, काहाली नेत्तांग बाजा आदि बज रहे थे। 'जय जगन्नाथजी' की ध्वनि गूंज रही थी! पाटजोषी महापात्र जगन्नाथजी के श्रीअंग से फूल और चंदन लाकर माया को पहना रहे थे। सीमंत में सिंदूर की रेखा खींच दी और माथे पर प्रभु की ओर से कुंकुम - अक्षत।

हुलुध्वनि में जगमोहन कंपित हो उठा। पाटजोषी महापात्र जय विजय द्वार पर लिख गया अभिलेख ऊँचे स्वर में आवृत्त कर रहे थे।

वीर श्रीगजपति गौड़ेश्वर नवकोटि कर्णाट कलवर्गेश्वर श्री प्रतापरुद्रदेव महाराज चौतु... अब बड़ठाकुर के गीत गोविन्द ठाकुर भोग के समय नृत्य होगा। संध्या सेज पर "बड़सिंगार" पर्यन्त एहि नृत्य होगा। बड़े ठाकुर संप्रदाय।

"गीत गोविन्द छड़ा अन्य सीखबे नाहिं कि अन्य गीत गाइवे नाहिं।"

नवोढ़ा माया के कपोल पर श्रीअंक के लाये चंदन देते पाटजोशी महापात्र ने स्निग्ध स्वर में कहा- 'न... न... न... मां - आज से तुम कायमनोवाक्य में प्रभु जगन्नाथजी की पत्नी हो! देवदासी और मनोहारिणी मदालसा कह लाएगी! इसको निष्ठा के साथ निभाने की प्रभु शक्ति साहस दें।'

मुक्ता ने कहा - ''प्रभु को प्रणाम करो, बेटी! यंत्रचालित उसने हाथ जोड़ प्रणाम किया। परंतु माया परिवेश का गंभीर्य नहीं समझ रही थी। प्रणाम कर आँखों में आँसू भर रही थी। ठाकुरजी की दोनों आँखों पर दृष्टि निबद्ध करते हुए मन ही मन कर रही थी - ''प्रभु मैं आज से तुम्हारी हूँ, मुझे तुमसे कोई अलग नहीं कर सकेगा।''

श्रीजगन्नाथजी के भक्तों की आँखें उस लड़की से ठाकुर की ओर, फिर उस छोटी सेविका के सुन्दर चेहरे की ओर चली जाती। सचमुच इतने युग तक छिप कर गंगा की तरह थी, आज विष्णु के चरणों में उतर कर आयी है। उस शुभ्र सौंदर्य की शीतल धारा ने समग्र भक्ति मानस को भिगो दिया है, पवित्र भाव में।

उस नैसर्गिक स्तब्धता में सम्पूर्णानंद खड़े थे। माया का यह रूप इंद्रियातीत भाव की ओर ले जाता है। भीतर वे निवेदन कर रहे थे - ''प्रभु! माया को तुम अपना लो।'' फिर मन लौट आया। प्रभु से माया की ओर। जगन्नाथजी के लिए अपने को न्यौछावर कर चुकी है। सम्पूर्णानंद माया के साथ निशब्द बातचीत में खो गये। उसमें डूब चुपचाप मानो कह रहे हैं - ''यह प्रीति कठिन है। पैनी धार पर चलना है!''

गरुड़ स्तंभ की ओट में खड़ी भीड़ में दो ह्रदय के बीच क्या चल रहा है! सिर्फ जगन्नाथजी ही जानते होंगे? नारी आँसुओं के बीच टूट जाती है। पुरुष अपने कंधे से उसे लगा कर आश्वासन दे रहे हैं। फिर भी माया की बेढ़ा परिक्रमा खत्म नहीं हुई। पहले वाद्यकारा, उसके पीछे मंगल गीत गाती माहारिया। साथ में अंजली में अक्षत लेकर माया मंदिर की प्रदक्षिणा कर रही थी। माया के पीछे मुक्ता माहारी और दोनों तरफ विमला और लक्ष्मी माहारी चांदी के रुपयों की थाली लेकर चल रही थीं। पंडा, पढ़ियारी और दरिद्रों के हाथ अंजली भर रही थी मुद्रा से। मुख पर शांत भाव खिल उठा था। उसकी आँखों मानो कह रही हो - ''मेरी बेटी को आशीर्वाद दो। विनिमय में यही चाहती हूँ।''

अक्षत अंजली में लेकर नववधू की तरह पदसीमा कर रही है। सब लोग देख रहे थे। सात पावछ पीछे वे पुरुष व नारी अश्रुल नेत्रों से उसे देख रहे थे। ह्रदय अनेक दृश्यों का उत्सव मनाते हुए और दीप्त हो रहा था - माया और ही जगत की बन

गई है। इस तरह के परिवर्तन वाली दृश्य आँखों में संजो रहे थे। भगवान! इतने सुख रहने पर भी मां - बाप के हृदय में अत्यंत जटिल वेदना - दुःख क्यों भर जाते हो? क्यों नहीं अपनी करुणा की एक बूंद उन पर टपका देते?

हृदय में जब दुःख आता है तो उसके स्रोत में सब कहीं खो जाता है। सम्पूर्णानंद उस रुआंसी नारी को समझ रहे थे। इस शुभ दिन माया का रोना ठीक नहीं। हम साधारण मानव के सुख - दुःख में मग्न हो जाते हैं। सांसारिक जाल में मोह ग्रस्त हो जाते हैं। प्रभु जगन्नाथ उसे रास्ता दिखा देंगे मृत्यु से अमृत की ओर। अंधकार से प्रकाश की ओर। जनम से मुक्ति की ओर, मुक्ति से निर्वाण की ओर।

पर मां का अनबूझ हृदय क्या इतने तत्व समझता है? मां ने एक दिन संतान की रक्षा के लिए संन्यासिनी बनाने का संकल्प लिया था। आज वास्तविकता उन्हें घोर दुःख दे रही है। काश, माया लौट चलती पटना! ऐश्वर्यमय जिन्दगी की ओर। अब ऐश्वर्य सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान सब कुछ थोथा लग रहा है।

शंख और हुलुध्वनि में भी माया की बेढ़ा परिक्रमा चलती रही। दो बार जाने के बाद तीसरी प्रदक्षिणा में सब लोग स्तब्ध रह गये। स्वर्ण दंड लिए राजगुरु खड़े हैं! उनके पास पातंजली जी, आचार्य जी और पाटजोषी खड़े हैं। गंभीर स्वर में राजगुरु कर रहे थे - "प्रदक्षिणा बंद करो।" आतंक में मुक्ता ने प्रश्न किया - "क्या हुआ, राजगुरु जी मेरा अपराध क्या है?"

- "तुम बहुत बड़े अपराध में शामिल हो। महाराजा की निषेधाज्ञा देखो। एक अज्ञात कुलशीला कन्या को देवदासी की दीक्षा दे रही हो! महापातक में भागीदार बनी हो।" कांपती हुई मुक्ता ने महाराजा की निषेधाज्ञा पढ़ी। एक अज्ञात कुलशीला अस्पृश्य जाति की कन्या के लिए देवदासी बनना पूरी तरह से अयोग्य और नीति विरूद्ध काम है। इस तरह की गलती मुक्ता माहारी जानबूझ कर करने के कारण राजद्रोही और जगन्नाथजी की द्रोही प्रमाणित है, इसलिए वीर श्री गजपति गौड़ेश्वर नवकोटि कर्णाट कलवर्गेश्वर श्री श्रीमहाराजा रामचंद्र देव ने मुक्ता माहारी को मंदिर की सेवा से वंचित कर दिया। इसके साथ - साथ उनकी पालित बेटी के देवदासी बनने पर भी निषेधाज्ञा जारी की है।

इसको पढ़ते ही मुक्ता का मन भय से, अपराध से और लज्जा - अपमान से जड़ हो गया। किसी माहारी को सेवा से अलग करने का अर्थ मृत्यु दंड से भी कठोर है।

पर यह क्या, मुक्ता की आँखों से आँसू बरसने के बजाय आग उगल रही है। महाराज और राजगुरु की बात मान लेने के बदले प्रतिवाद कर रही थी। उसका यह अनमनीय व्यक्तित्व इसके पहले किसी ने कभी नहीं देखा था।

दृढ़ स्वर में मुक्ता ने प्रतिवाद किया - "राजगुरु और महाराज ने बिना प्रमाण और जांच के यह सजा मुझ पर थोपी है और इसको चुपचाप सहती जाऊँगी? क्या यह संभव है?"

पंडितवृंद आपस में स्तब्ध हो देख रहे थे। आँखों में बातें हो रही थीं कि यह कितनी उद्धत है! राजा की बात में, पंडितों की बातों पर..... यह अक्षमणीय अपराध है।

मुक्ता की आग उगलती आँखों से राजगुरु आँख मिला न सके। दूसरी ओर मुँह फेर कर पूछा - "महाराजा की आज्ञा का अपमान करने का नतीजा क्या होगा, जानती हो?"

मुक्ता धीर बल्कि दृढ़ स्वर में कहने लगी - 'अन्याय का प्रतिरोध करना यदि अपराध है तो फिर महाराजा जो सजा देंगे, मैं उसे मान लूँगी। सत्य का गला घोंटना इतिहास में कलंक रहा है।'

धीरज खोते हुए राजगुरु ने पूछा - "सत्य क्या है? मिथ्या क्या है?"

अविचारित स्वर में मुक्ता ने कहा - "सत्य यही है कि माया जाति - कुलहीन कन्या नहीं है। वह क्षत्रिय संतान है। मैं अपराधी हूँ। यह सरासर झूठ है।"

व्यंग में पातंजली जी ने पूछा - "माया, तब क्या क्षत्रिय वंश के नरोत्तम भुईंमल के औरस से मुक्ता की बेटी है?" दूसरे लोग हँस पड़े विद्रूप स्वर में।

"नहीं - नहीं" चीख कर मुक्ता ने दोनों हाथ कानों पर रख लिए और जड़ बनी खड़ी रही।

परंतु यह कौन? मुक्ता की ओर से दृष्टि हटा कर उन लोगों की दृष्टि उस नारी की ओर चली गई। वह काफी समय से मुक्ति मंडप की ओर ताक रही थी।

अपनी बेटी को जाति - कुलहीन कहते हुए सह गई, परंतु मुक्ता माहारी पर यह आरोप उससे सहा नहीं गया।

वह पंडितों की ओर आगे बढ़ आयी। उसने घोषणा की, "माया हमारी बेटी है। वह अज्ञात कुलशीला नहीं है। हम मयूरभंज के राजवंशी हैं। पिता शत्रुजीत देव

परिछा। मैं उसकी मां लोपामुद्रा देवी हूँ। इसे हम दोनों ने अपनी इच्छा से जगन्नाथजी को समर्पित किया है।"

चौंक कर मुक्ता और अक्षत भरी अंजुली से माया देखने लगी उधर। ज्वलंत आग की तरह दीप्ति! कौन है यह नारी मूर्ति? ऊँचे कपोल, लम्बी नाक और गोरे भद्र व्यक्तित्व वाली यह महिला कौन है?

अक्षत आदि फेंक कर माया दौड़ गई और आगे बढ़ कर उसके गले लग गई - मां - मां... कह कर रो पड़ी। माया को सीने से लगा कर रोती रही। आँखों में आँसू व प्रेम भरपूर उमड़ आया। उसकी मां, यह अनोखा दृश्य देखते ही बनता है। पंडितों के होठों पर से सारे तर्क बुझ चुके थे।

सफाई देने के लिए उनके पास भाषा नहीं थी। उस रोमांचित दृश्य के आगे बाकी सारे दृश्य फीके पड़ रहे थे। धीरे - धीरे सारे पंडित वहाँ से चले गये थे।

मुक्त माहारी का दल और वाद्यकारवृंद जड़ बने रह गए। सम्पूर्णानंद भी पाषाणवत बन गये थे। शत्रुजीत देव परिछा और लोपामुद्रा देवी - माया के मां - बाप को चिट्ठी भेज कर उन्हें भी बुलाया था दीक्षा ग्रहण देखने के लिए। वे सोच रहे थे कि यह दृश्य देख कर पटना लौट जायेंगे। माया को इस बात का पता नहीं चलेगा। इस तरह की परिस्थति होगी और लोपामुद्रा ऐसा करेगी, यह सोचा भी नहीं था। माया से उन्होंने झूठ कहा था कि तुम्हारे मां - बाप नहीं हैं! कौन - सी परिस्थिति में वे ऐसा झूठ बोलने पर मजबूर थे? यह सिर्फ जगन्नाथ ही जानते हैं। माया के सामने वे मिथ्यावादी बन गए! वर्षों की निष्ठा - साधना, तप और धर्म सब कुछ माया के सामने झूठा साबित हो गया। वे उसकी नजरों में मिथ्यावादी हो गए।

सम्पूर्णानंद सोच रहे थे कि सब कुछ त्याग कर माया मां - बाप के साथ वापस चली जायेगी तो?

माया के संसारी बन जाने पर वे ज्यादा खुश होंगे। परंतु उसके सामने वे झूठे बन जायेंगे! सम्पूर्णानंद जैसे स्थितप्रज्ञ के मन में हलचल हो गई थी।

मुक्ता सोच रही थी कि जगन्नाथजी की यह कैसी परीक्षा है? वे क्या चाहते हैं कि माहारी वंश मिट जाए? इसलिए माहारियों को मुसीबतों में डाल कर परीक्षा ले रहे हैं? यदि माया को उसके मां - बाप ले जाना चाहें या नन्ही - सी बच्ची स्वयं जाना चाहे, तो वह उसे रोक नहीं सकती। देवदासी की दीक्षा लेकर अगर कोई संसारी बन

जाए तो जगन्नाथजी के प्रति अवमानना और विश्वासघात होगा। अब तक यह धारणा उसके मन में जमी थी। आज वह पौधा महाद्रुम में बदल गया है। मुक्ता उसकी छाया के नीचे खड़ी होकर माया की बात सोच रही थी। पिता - माता के साथ अगर वह लौट जाए, जगन्नाथद्रोही क्यों होगी? तप, ध्यान, सेवा, पूजा का अर्थ छोटी बच्ची क्या समझे? उसके लिए भगवान ही मां - बाप हैं। उनका पाना ही ईश्वर का आशीर्वाद है। उस प्रेम के लिए ही ईश्वर नीचे उतर आते हैं। माया उस पवित्र प्रेममंदाकिनी में नहाए तो अच्छा। लौट जाने दो उसे माता - पिता के पास। राजगुरु और पंडितों से उसे जो दंड मिला, वह स्वीकार कर लेगी। यहाँ प्रभु उसे जरूर क्षमा करेंगे। मुक्ता ने उसके पास जाकर विदा लेने की भंगिमा में कहा - "माया!"

माया ने गोद से उतर कर मां से कहा - "मां, मेरी अंजुली में अक्षत और सुपारी दीजिए। नीचे गिर गए हैं।" अश्रुपूर्ण मुद्रा में लोपामुद्रा ने अंजुरी भर दी। शत्रुजीत परिछा से माया ने कहा - "पिताजी! मेरी ओढ़नी ठीक से ओढ़ा दीजिए न जरा! मेरे दोनों हाथ भरे हैं।" अपने आँसू दबा कर यंत्रवत शत्रुजीत सिंह ने ओढ़नी ओढ़ा दी और उसके कपोल पर एक चुंबन दे दिया।

माया के बिना पीछे देखे पहले की तरह बेढ़ा परिक्रमा की।

मानो वह भावना में कह रही थी - 'देखा मां! देखो पिताजी! संन्यासी बनाने के लिए मुझे अकेली छोड़ कर चले गये थे न! देखो मैंने अपना चिरंतन आश्रय और रास्ता चुन लिया!'

अवाक् मुक्ता के हृदय की सारी बातें आँसू बन कर झर रही थीं।

महंत सम्पूर्णानंद सोच रहे थे कि त्याग, दृढ़ता और आत्मसंयम के सामने उनके तपस्वी जीवन का अहंकार पराजित हो गया है।

इस पराजय में वे लज्जित नहीं बल्कि गर्व कर रहे हैं। प्रभु की इच्छा - अनिच्छा को माया ने अपना लिया। वरना यह तो इतनी - सी नन्हीं बच्ची क्या संन्यासी का कर्तव्य और उत्तरदायित्व ठीक से निभा करती? असंभव?

सारे असंभव को संभव बना सकते हैं, इसीलिए तो उन्हें जगत का नाथ जगन्नाथ कहा जाता है! विश्व के मूलाधार के रूप में हम पूजा करते हैं उनकी।

सारे लोगों की आँखों के सामने माया बेढ़ा परिक्रमा करके बाईस पावछ की तरफ चली। एक बार भी पीछे मुड़ कर नहीं देखा। जो जैसा समझे, अर्थ निकाले परंतु

लोपामुद्रा समझ रही थी स्वाभिमान के तीव्र प्रवाह के साथ अब माया ने मुँह मोड़ लिया है, उनसे और सांसारिक सुख से।

अव्यक्त पीड़ा हृदय में दबाये वहाँ से लौट गई। ब्राह्मणों की मंत्रध्वनि और माहारियों की हुलुध्वनि में माया घर लौटी। मुक्ता के कहने पर तुलसी चौरे के चारों तरफ परिक्रमा लगाने लगी और अक्षत की अंजली मुक्ता को दे दी। पारंपरिक रूप में सात सुहागिनियों ने सात दीप जलाये और पूर्ण कुंभ सजे चौरा के पास माया की वंदना की। तेलंगी बाजा और ब्राह्मण स्वर पर मंगलार्पण चारों तरफ गूंज उठता था। सबको भरपूर भोजन करा कर मुक्ता खुश थी, फिर भी, माया कुछ नहीं सोच रही थी। मुक्ता सोच रही थी कि भगवान की कृपा न होती, तो इस संकट से उद्धार न मिलता।

लेकिन मन में द्वंद्व है। प्रतिकूल परिस्थिति के बावजूद माया को देवदासी दीक्षा में दीक्षित कर क्या उसने उचित किया? दुर्दिन कट गया। सारा दिन परिश्रम, उद्वेग और उत्कंठा ने मुक्ता को विवश बना दिया था। अतिथियों के जाने के बाद वह गहरी नींद में सो गई।

किसी परिचित संकेत शब्द में मुक्ता की नींद टूटी। आंगन में आकर देखा - सुबह होने में थोड़ा - सा समय बाकी है। फिर भी वह आवाज आ रही है पिछवाड़े से। मुक्ता ने जाकर पिछला दरवाजा खोला। जटाजूट संन्यासी घुस आये आंगन में।

घने सांवले श्मश्रु में भी उन तीखे नाक - नक्श को सहज ही मुक्ता पहचान गयी। किवाड़ बंद कर दबे स्वर में - "तुम क्यों आये नरोत्तम! तुम्हारे सिर पर पाँच हजार रुपये की घोषणा की गई है... तुम्हें क्या यह पता नहीं? सुबह होने के पहले श्रीक्षेत्र छोड़ कर चले जाओ।

बेपरवाह हो हँस कर नरोत्तम ने कहा - "तुमने निमंत्रण किया था अपनी बेटी के विवाह का। मामा नहीं आयेगा तो शादी कैसे होगी? मुझे कोई परवाह नहीं, स्वयं श्री जगन्नाथजी जामाता बन गए हैं। यह बावरी वेश त्याग कर बड़दांड पर घूम - फिर सकता हूँ। जंवाई से कह देना कि जिसने मेरे सिर के लिए पाँच हजार रुपयों के इनाम की घोषणा की है, उसे पकड़ कर सजा दें।" वे मुस्कराते रहे।

नरोत्तम की ये बातें मुक्ता के मन में घबराहट पैदा कर रही थी। मुक्ता ने कहा - "नरोत्तम तुम चले जाओ, सुबह होने वाली है। कोई अगर पहचान ले तो?" उसने

अनुनय की। वैसे ही मुस्का कर नरोत्तम ने कहा - "मुझे बिना खिलाये, यहीं से विदा कर देती हो? तुम्हारी बेटी को जरा देखूंगा नहीं?"

सुबह होती जा रही है। ललाई उभर रही थी। कोई आवाज सुन कर मुक्ता बेचैन हो उठी। घर से लड्डू की थाली नरोत्तम की झोली में लाकर डाल दी और कहने लगी - "जगन्नाथ करे, तुम विपद से मुक्त हो जाओ। उस समय भोज खाना और बेटी को भी देखना, मगर आज चले जाओ। अभी समय प्रतिकूल चल रहा है। उस दिन से मेरे घर पर कड़ी नजर है।" दाहिने कंधे से एक वजनी झोली निकाल कर मुक्ता को दे दिया। तू! इन 'लड्डुओं' को तरीके से रखना। सोमनाथ मौका देख कर, आयेगा, वह ले जायेगा। आज....." कह कर नरोत्तम के मुख से वाक्य अधूरा रह गया। दरवाजे पर जोर - जोर से आवाज हो रही थी। पिछवाड़े जाने से रोका मुक्ता ने। नरोत्तम को दूसरा रास्ता दिखा दिया। तुलसी के बन में घुस जाओ। वहीं से दीवार लांघ कर बड़े वन की ओर चले जाना, सावधान! वहाँ से बांई तरफ जाने से सागर किनारे पहुँच जाओगे।

मुक्ता ने देखा कि बीस - पच्चीस लोग मशाल लिए दरवाजे पर खड़े हैं। दरवाजा खुलते ही सब अंदर घुस आये। तेजी से छान - बीन कर रहे हैं। घर की मालकिन से अनुमति लेने की बात वे भूल चुके हैं।

बात समझने में उसे देर न लगी। विवाह उत्सव की सजावट अभी तक उखड़ी न थी। तुलसी चौरा के पास पूर्णकुंभ के सामने रात भर जलते दीप की अंतिम शिखा थरथरा रही थी।

काफी ढूँढने पर भी कहीं कुछ नहीं मिला। निष्फल आक्रोश में दीप को किसी ने ठोकर मार दी। कलश तोड़ दिया। दीप न था।

मुक्ता सब लोगों की ओर देखने लगी। उन लोगों में से किसी एक को देख कर वह चौंक गई! वह थी यमुना बाई! तभी यमुना बाई जोर से चीख कर कहने लगी - "घर में कोई मिला?"

- बेकार में हमें हैरान किया! अगर स्साला होता तो उसका सिर काट न देते हम।

यमुना बाई ने प्रतिवाद किया - "झूठ नहीं - मैंने अपनी आँखों से देखा। सुबह - सुबह एक आदमी को घुसते। छत से स्पष्ट देखा है!"

किसी ने कहा - "नचनी बाई, मरकनी गाय और बाढ़ से भरी नदी, इनका कोई भरोसा या विश्वास नहीं।" किसी ने कहा - "यमुना बाई को शराब की लत लग गई है।" कुछ लोगों ने व्यंग्य में कहा, कुछ लोग जोर - जोर से हँसने लगे।

यमुना बाई का सुन्दर चेहरा लज्जा में मलिन हो गया। मुक्ता उसी तरह खड़ी थी खंभे के सहारे। अचानक वीर दर्प में चला आया कोई घर में से। कुछ देर पहले नरोत्तम की दी गयी लड्डू की झोली दिखा कर कहा - "देखो - ढोल के भीतर पोल!"

मुक्ता माहारी जगन्नाथ भक्त और राजा की अनुगता! देखो उसके घर से कैसे हथगोले निकले है! जरूर विद्रोहियों से उसका मेल है!

भीड़ से एक बात सुनाई दी - "कैसे?"

मुक्ता जड़ बन गई थी भय से। सुबह हुई। पुरी शहर को समुद्री हवा ने हिला कर जगा दिया है। भीड़ जमा हो गई मुक्ता माहारी के घर से सामने। सब लोग स्तब्ध! यमुना बाई खुश है क्योंकि इतनों दिनों बाद आज उसकी मुराद पूरी हुई है।

"मूलोत्पाटन करने के बाद खत्म... नीति से अगर काम लिया जाये तो मुक्ता मंदिर से निकाल दी जायेगी और माया छटपटा कर उसकी आश्रिता बन जाएगी। तब जा कर प्रतिशोध की आग बुझेगी।" आग में घी डालने की तरह उसने कहा - "विद्रोहियों के साथ इसका सम्पर्क है! उनके कर्णधार नरणगढ़ के भुईंमल के अंग्रेजों के डर से वन में छिपे होने की बात सब जानते हैं, परंतु भुईंमल तो छिपे हैं मुक्ता माहारी के आंचल के नीचे!"

मुक्ता को देख कर उसने एक तीखी मुस्कान फेंकी। मुक्ता को लगा जैसे उसके शरीर में कोई कांटे चुभो रहा है। बात कानों कान सुबह तक सब को पता चल गई कि मुक्ता माहारी के घर में विद्रोहियों का अड्डा है!

सुबह होते ही मुक्ता को घसीट कर ले गये श्रीमंदिर के मंडप के नीचे। बड़दांड की भीड़ सुबह के शांत परिवेश को अशांत कर रही थी।

राज - अपराधी साबित कर मुक्ता को पहले राज प्रसाद की ओर ले गए थे। महाराज रामचंद्र देव ने मुक्ता के इस रूप की कल्पना भी नहीं की थी। सिपाहियों के बीच मुक्ता राजदरबार में खड़ी है।

कुछ देर देखने के बाद महाराज रामचंद्र देव ने पूछा - "बताओ मुक्ता, यह इलजाम क्या सच है?"

महाराज के स्वर में विश्वास भंग की छाया उमड़ उठी थी।

"हुजूर, राजद्रोही सोच कर हम लोग इसे आपके पास लाये थे... आपकी आज्ञा हो तो..... !"

महाराज फिर सवाल दुहराते रहे - "बताओ मुक्ता माहारी, क्या यह इलजाम सच है?"

फिर भी मुक्ता निरुत्तर थी। भीड़ को देख कर कुछ लोग अन्दर घुस आये। उन लोगों में से एक ने कहा - "मौन सम्मति लक्षणं!" ना कह सकती है? रंगे हाथों पकड़ी गई बम की थैली!

"आप की सरलता का लाभ उठा कर अपने घर को विद्रोहियों का अड्डा बना लिया। लोहा कोमल हो तो बिल्ली भी काटने को तैयार रहती है।"

मुक्ता निर्विकार, निर्लिप्त खड़ी। वह आत्म-समर्पण करने को कहती है - "आपकी इच्छा, आप जो दंड देंगे मुझे मंजूर है।"

मुक्ता का यह हाल देख कर महाराज रामचन्द्र देव ने कहा - "उसे ले जाओ। मुक्तिमंडप के पंडित इसका विचार करेंगे।"

रामचंद्र देव चले गये अंतःपुर की ओर।

स्वागत में कहा - 'प्रभु, बार - बार आदमी को अग्नि परीक्षा में डालने में आपको आनंद आता है, बड़प्पन है!

मुक्तिमंडप के नीचे मुक्ता खड़ी थी। पंडित सोच रहे थे कि कल जो नारी सब के मन, बुद्धि और चेतना को चौंका रही थी, आज उसका सौंदर्य दीप बिलकुल म्लान हो गया है! कल फंदे से बच गई, पर आज जाएगी कहाँ? जगन्नाथ जी की आँखें सब कुछ देखती हैं। पाप कभी छिपता नहीं।

श्लेष भरे कठोर स्वर में पतंजली जी ने पूछा - "क्या मुक्ता माहारी, जगन्नाथजी बड़सिंहार के बाद तुम्हारे घर गये थे?"

पंतजलि के तांबई हड़ीके चौकोर चेहरे को विद्रूप, व्यंग्य और उपेक्षा की रेखाएँ और भी वीभत्स बना रही थी। घुटा हुआ मस्तक। पीछे कुछ केशों में गांठ लगी हैं।

बात करते समय उनकी उत्तेजना इसी चोटी के हिलने - डुलने में प्रकट होती है।

आचार्य ने बात को आगे बढ़ाया - "ठाकुर जी अकेले ही नहीं गये होंगे, साथ में तैतीस करोड़ देवी - देवता भी होंगे और वहाँ मुक्ता माहारी के मंडप पर सभा कर रहे होंगे।"

राजगुरु की कठोर ध्वनि में भरा व्यंग्य - विद्रूप सबको म्लान कर रहा था - "बोलो मुक्ता माहारी! जो नरोत्तम भुईंमल षड़यंत्रकारियों का सरदार है - उस पर पाँच हजार का ईनाम घोषित है - वह तुम्हारे घर छुपा था? क्या उसे उपपति के रूप में स्वीकार किया है?"

दोनों कानों पर हाथ रख मुक्ता ने भर्राये स्वर में प्रतिवाद किया - "ना.... ना..... राजगुरु महाराज! कृपा कर ऐसी पाप भरी बातें न कहें। मुझे जो सजा देनी है, दें। स्वीकार है, परंतु भुईंमल के बारे में ऐसी बातें न कहिए।"

- "तो, कहो नरोत्तम भुईंमल से तुम्हारा क्या रिश्ता है?"

मुक्ता मौन थी।

वही प्रश्न दुहराया, "बोलो तुम्हारा क्या रिश्ता है?"

मुक्तिमण्डप मंदिर की राय यही थी कि परपुरुष के साथ मिलने के कारण मुक्ता माहारी को मंदिर की सेवा से निकाल दिया जाय। ठाकुर जी और राजा से उसको जो कुछ भी मिल रहा था, सब से हाथ धोना पड़ रहा है। उसको मिली सारी निष्कर जमीन भी जब्त हो गई आज से।

सिंहद्वार से कोई आवाज सुनायी दे रही थी - एक तीखी आवाज मंदिर की ओर से आ रही है। पंडितों की नजर उस ओर चली गई।

बाइस पावछ तक वह भीड़ आ गई है। यह जान कर सब लोग उस तरफ चले। जनता की भीड़ में मुक्ता भी उड़ते पत्ते की तरह वहीं आ गई।

राजगुरु और पंतजलि को देखते ही भीड़ चारों तरफ बिखर गई। अचानक कोलाहल थम गया। राजगुरुजी ने गंभीर स्वर में सवाल किया - "क्या हुआ?"

राजगुरु के सवाल का जवाब न दे कर लोग तनिक सरक गए। राजगुरु के मुख से सुनाई दिया - "शव! मंदिर के अंदर शव!"

उत्कल भूखंड पर क्या विपत्ति आने वाली है प्रभु! अनागत आशंका में कांपते

हुए मुक्ता देख रही थी। विश्वनाथ के पास जो पावछ है, जहाँ से भीड़ हट गई थी, दृष्टि जाकर वहीं स्थिर रह गयी।

लोग सोच भी नहीं सकते थे कि मुक्ता यह काम करेगी!

मुक्ता पागल की तरह दौड़ कर गई और शव पर गिर पड़ी और जोर - जोर से रोने लगी। तब जनता को समझ में आया कुछ। "नरोत्तम! यह क्या किया नरोत्तम.....!"

मुक्ता की रोने की आवाज ने जैसे जनता के मुख में भाषा भर दी।

"अरे यह माहारी तो मूर्च्छित हो गई!" कोई कह रहा था - मुक्ता माहारी के मुक्तिमण्डप के नीचे होते समय वह दौड़ते हुए आया - जैसे शर छूट आया है। अरुण की तरफ घुस आया। फिर वह लुढ़क गया। सारा 'अपराध' स्पष्ट था। नरोत्तम भुईंमल की रक्षिता होने के नाते मुक्ता माहारी जगन्नाथ की द्रोही है! साथ में राजद्रोही भी हो सकती है। ऐसा अपराध क्षमा नहीं किया जा सकता।

- "देखो, यह आदमी मृत्यु के समय भी जगन्नाथजी का नाम न ले कर 'मुक्ता माहारी' का नाम ले रहा था। क्या कलिकाल हो गया - पाप कितना प्रबल हो गया है! फल क्या हुआ जानते हो - कलकी अवतार लेकर भगवान ने किस तरह दुष्ट संहार किया!" दीप बेचने वाला वह बट महारणा आश्चर्यचकित मधु महारथी को बता रहा था।

मधु महारथी आँखें फाड़ - फाड़ कहने लगा - "हाँ भई! मैं चकित होकर देखने लगा। अरुण स्तंभ से चतुर्द्धामूर्ति होकर प्रभु जगन्नाथजी निकल रहे हैं! साथ में बारह हाथ की तलवार शोभा दे रही है।"

"क्या किया जाए - तुम्हें झूठा लगे, मेरे लिए सच है। एक शक्ति पुलिस वाले के शरीर में घुस गई है। तब से आदमी बारह हाथ ऊँचा बन गया। भुईंमल के शरीर में गोली लग गयी। तब उस पापी को देखिए। मैंने सोचा मंदिर में घुस रहा है पाप की क्षमा मांगने के लिए।" अरे, मरने से पहले माहारी का नाम लिया। पाप नहीं है तो और क्या है? गंगा के किनारे रह कर प्राण जाते वक्त मुक्ति के देवता जगन्नाथजी का नाम न लेकर माहारी का नाम ले रहा है! मैंने सुना है - मरने से पहले "मैं..... मैं..... मुक्ता..... का..... पाप" और कुछ कह न सका।

'और क्या कहता यार!' महारणा ने कह दिया।

उस समय सिंहद्वार पर कोलाहल धीरे - धीरे बढ़ गया। मंदिर की पवित्रता नष्ट हो गई है! ठाकुरजी की नीति का समय चला गया। मुक्ति मण्डप की पंडित सभा सस्वर से चिल्लायी - "सिपाही, यह शव तुरंत उठाने का इंतजाम करो? श्रीजी का महास्नान। जगन्नाथ! जगन्नाथ! पृथ्वी पर कोई खतरा आने वाला है जो श्रीमंदिर में शव गिरा!"

राजकर्मचारी, मंदिर कर्मचारी और मंदिर के सिपाहियों की हिफाजत से सारी जनता मंदिर से निकाल दी गई। ठाकुर जी का महास्नान, देवल के शोध आदि कर्म में पंडे - पढ़ियारी और सेवक सब लग गये।

सिर्फ वेदपाठी ब्राह्मणों की मंत्रध्वनि मंदिर से निकल कर हवा में मिल रही थी। पैर में बेड़ी डाल कर विप्लव पुरुष नरोत्तम भुईंमल का शव बड़दांड पर घसीटा जा रहा था। अंधा भिखारी गा रहा था -

"तेरे बड़दांड की धूलि शरीर में.....
जगन्नाथ - जीवन जाए तेरा नाम गाते - गाते
तेरा श्रीमुख देख कर
कोटि जन्म का कलुष धुल जायेगा।"

*   *   *

अंतिम पर्व

माया ने गहरी सांस ली। नींद में सोये पुरी शहर में रात की उमर बढ़ती जा रही थी। उस रात अनगिनत तारों के साथ अपनी उनींदी आँखों के तारे भी मिला दिये थे। वह अनमनी होती जा रही थी।

उसके दोनों हाथों के बीच बंदी है वह आग्नेय आलेख, इसे इतिहास की कालिख या काल का अजस्र प्रवाह रोक नहीं सकता। समय की राख के नीचे एक चिनगारी युग - युग तक बची रहेगी।

माया हस्तलिपि पर हाथ फिरा कर उसे चूमने लगी और आँसुओं से भींगने से पहले उसे मेज पर एक तरफ रख दिया।

संगीत गुरु गुरुपद दास की महानता का यह एक और प्रमाण है। माहारी जाति के अश्रु और हँसी की कहानी मां ने अपने पहले और आखिरी उपन्यास 'शेषशिखा' में लिखी थी और पाण्डुलिपि गुरुपद दास को दे दी थी। मां ने कहा था कि उसकी मृत्यु के बाद गुरुजी या मालव भैया को दे दें।

यह 'शेषशिखा' है। आज तक निष्ठा के साथ जीवन बिता रही प्रभु श्री जगन्नाथ की अंतिम सेवादासी मुक्ता माहारी, उसकी पालक मां! दस दिन पहले यह अंतिम शिखा बुझ गई। माया के जीवन में दुःख - वेदना और असहायता का अंधकार भर गया। माया के चेहरे का पसीना पोंछ कर शीतल स्पर्श करने वाली कोई नहीं।

माया की इच्छा हो रही थी कि वह 'मां..... मां.....' कह कर जोर - जोर से चिल्लाये। उसकी आवाज से प्रतिध्वनित होती श्री जगन्नाथजी की रत्नवेदी गिर जाती, नीलचक्र से पतितपावन की पताका!

उस दिन जैसे चीख - चीख कर रो रही थी, जिस दिन बाईस पावछ से मां का बेहाल शरीर कुछ लोगों ने घसीट कर यहाँ लाकर फेंक दिया था, इस घर में - किसी फालतू चीज की तरह।

वह युगों की बात है। युग नहीं तो क्या, चौवालीस से चौरासी। चालीस साल में कितने पगचिन्ह समय की गीली मिट्टी पर कितने गहरे हैं, उसके अलावा और कौन जान सकता है?

उस समय माया नौ की नन्हीं - सी गुड़िया थी। आज वह नारी बन गई है। समाज में प्रतिष्ठित एडवोकेट है। उसकी शिक्षा, उम्र और सामाजिक सरोकारों ने उसे

सिखा दिया है कि भावावेग में छाती फट जाये, पर उसे वह व्यक्त नहीं करेगी। लड़खड़ाती माया छत से नीचे उतर कर सोफे पर बैठ गई। सामने की दीवार को देखती रही।

दीवार पर टंगा 'मां' का दो फुट का चित्र। उस पर जो फूल मालाएँ लगी थीं, वे सब मुरझा गई हैं। नीचे पड़े फूल भी मुरझा गये हैं!

शाम को बनाया गया वकुल फूलों का हार मां के चित्र पर चढ़ा कर मुरझाई माला हटा रही थी। उसके साथ - साथ दाता का नाम देख रही थी।

यह चंपा की माला श्रीमंदिर से पाटजोषी ने लाकर मां के चित्रपट पर प्रणाम किया था। उसी पाटजोषी ने, जिसने एक बार मुक्ति मण्डप के नीचे मां के सतीत्व पर आक्षेप किया था।

परिचायिका के हाथों फूलों का गुलदस्ता भेजा है - महाराज दिव्यसिंह देव ने। तरह - तरह के फूलों से बनाई गई माला मुख्यमंत्री और उनके पास वाला पुष्पगुच्छ राज्यपाल जी ने कल आकर दशम संस्कार में शामिल हो ये सब मां के चित्रपट पर अर्पण किये थे।

यह रजनीगंधा की माला जिलाधीश ने आकर अर्पण की थी। यह कमल की माला पुरी शंकराचार्य के मठ से आयी थी, यह पुष्पगुच्छ... और आगे वह न पढ़ सकी। सारे फूलों को इकट्ठा करके बाहर फेंक दिया। क्या फायदा?

दांत भिंचे होठों पर एक ही बात आ रही थी - "हिपोक्रेट्स!"

सचमुच यह समाज हिपोक्रेटों का एक मुक्त रंगमंच बन गया है। उसकी मां ने पचहत्तर वर्ष की त्यागभरी जिन्दगी में क्या पाया? जीवन भर जगन्नाथ जी को अपने स्वामी के रूप में अपनाया। वह हर सांसारिक सुख से दूर रही। पराधीन भारत की यंत्रणा दूर करने के लिए, रामचंद्र के सेतु बांधते समय गिलहरी की तरह नीरव, पीछे रह कर निष्काम भाव से विप्लव में शामिल हुई। दुनिया में ओड़िशी नृत्य को जीवित रखने के लिए उसने अपने जेवर और सम्पत्ति तक बेंच दी। अंतिम समय तक नृत्य केन्द्र की पृष्ठपोषकता, तत्त्वावधारिका और एक अवैतनिक शिक्षक के रूप में काम करती रही। सरकारी अनुदान के लिए बार - बार निवेदन कर विफल रही।

इसके लिए मां का नाम इतिहास में कहीं लिपिबद्ध नहीं होगा। उनके नाम पर कोई कला और संस्कृति का मंडप स्थापित नहीं होगा। मां का अंतिम समय जिस तरह

से दयनीय भाव से गुजरा, उसे याद करते ही माया का खून खौल उठता है। इस सुविधावादी दुनिया पर गुस्सा आता है। इसके साथ - साथ स्रष्टा जो आँखें फाड़ कर सब कुछ देख रहा है, उससे भी फरियाद से मन भर गया है। जिस दिन अपने खून के रिश्ते को मृत्यु ने छीन लिया था, नरोत्तम भुईंमल की मृत्यु हुई, उस दिन वे लंबे हाथ नहीं आये पसर कर आगे!

फिर भी मां को विश्वास था कि उसके स्वामी प्रभु श्री जगन्नाथ हैं। हर पल हृदय में गोपन सत्य, कोमल सत्य, प्रेम और विश्वास का सम्पर्क उद्घटित करते हैं। मां कह रही थी कि सेवकों ने मंदिर से निकाल दिया, मगर श्री जगन्नाथ के लिए तो उसका हृदय मंदिर सदा खुला है।

हर भोग और आरती की बेला उनके साथ बितानी पड़ती। मां की तृप्ति और निश्छल विश्वास देख कर माया चुप रह जाती। मां की बातों में प्रतिवाद करने का साहस खो देती।

विदेही प्रेम की एक मिथ्या सांत्वना। ईश्वर विश्वास है। मानव का ये सब तो जीने का एक सहारा है। यह सहारा किसी भी सांसारिक अबला के लिए सर्वाधिक निरापद है। उस समय माया सोच रही थी कि मां जीती रहे सुख से, शांति से, गहरे आत्मविश्वास से। वह आत्मा में श्रीजगन्नाथ को लिए रहे। आधुनिक समाज उसे मानसिक रोगी ही क्यों न कहे।

परंतु माया का जीवन दर्शन अलग दिशा में मुड़ गया। प्रतिकूल परिवेश उसे सिखा रहा था कि जीने के लिए संघर्ष करना होगा, आत्मनिर्भर होने की जरूरत है। काल्पनिक अवलंबन नहीं। भावुकता भी नहीं चलेगी। यह परिवर्तित आत्मविश्वास उसके मन में भर दिया था संगीत गुरु गुरुपद दास और उनके पुत्र नृत्य विशारद मालव दास ने।

माया के भीतर साहस भर दिया, नया जीवन प्रदान किया। एक ने पिता का वात्सल्य प्रेम और दूसरे ने भाई का स्नेह भर दिया उसमें।

इनसे पिता और भाई दोनों का आश्रय पाकर उसका कैशोर्य और यौवन बीत गया।

मां मुक्ता माहारी का 'भत्ता' छीने जाने के बाद सांत्वना के कई हाथ आगे आये। महंत सम्पूर्णानंद का द्वार उसके लिए खुला था। उसके मन में किसने इतनी

दृढ़ता भर दी? किशोरी प्राणों का मान? या विकसित हो रहा नारीत्व का स्वाभिमान? या जगन्नाथ जी ही ने यह आत्मविश्वास भर दिया, जिनको स्वामी ने रूप में वरण किया था?

सम्पूर्णानंद कह रहे थे - "बेटी, राघवानंद मठ में संन्यासिनी की जिन्दगी बिताना शायद ईश्वर की इच्छा है। नहीं तो तेरी दीक्षा के बाद अगले दिन मुक्ता माहारी मंदिर सेवा से हटा क्यों दी जाती? उनके इस हाल में तू उन पर बोझ बन जाए, यह मैं नहीं चाहता।

परंतु माया ने हँस कर जवाब दिया - "मुक्ता माहारी को निकाल दिया गया, परंतु माया को तो नहीं। जिस जगह को वह त्याग चुकी है, वहीं फिर लौट जाए, क्यों? आपने मुझे शकुंतला - दुष्यन्त की कहानी सुनाई थी। शकुंतला क्या कण्व के आश्रम में लौट गई थी? मेरे स्वामी अगर त्याग भी दें, उनका द्वार बंद हो जाय, तो भी आपके आश्रम में लौट नहीं जाऊँगी।"

इतने साल बाद माया को यह बात याद आ रही है। हंस पड़ी। यह किशोर वय कितनी आवेगमय और सरलता में भर जाती है। वस्त्र और जेवर लेकर यमुना उसे बहलाने आयी थी। माया का कच्चा मन और मुक्ता का परिपक्व अनुभव फुसलाने आयी थी।

मुक्ता ने स्पष्ट रूप से कह दिया था कि श्रीमंदिर अगर उसके लिए मना हो जाए, तो भी वह सिंहद्वार पर निर्माल्य (महाप्रसाद के सूखे चावल) और दीप बेचेगी, परंतु राजनर्तकी बनने के लिए यमुना बाई के कोठे पर नहीं जाएगी।

नृत्य - संगीत और सात्त्विक जिन्दगी की शिक्षा देते - देते मुक्ता ने अपने लांछित जीवन को भुला दिया था। आयु बढ़ते - बढ़ते माया ने सब कुछ समझ लिया। एक असहाय औरत के मन में इतना स्वाभिमान और आत्मविश्वास ठूंस कर कहाँ से भर गया और कैसे सब छिपा गया, ढूंढने पर भी नहीं मिलता माया को। इसका एक ही कारण है कि भगवान के प्रति विश्वासपूर्ण आत्मसमर्पण? प्रेम भक्ति की एकनिष्ठ आराधना?

मां क्या सर्वशक्तिमान की पत्नी मान कर स्वयं को खतरे से मुक्त समझती रही? कौन जाने? माया में ऐसी भावना कभी नहीं आयी।

सिर्फ दीक्षा लेकर कोई संन्यासी या संन्यासिनी बन जाए, यह झूठ है। इसके

लिए अपने को पूर्णरूप से न्यौछावर कर देना होता है। सांसारिक सुख से विमुख रहना उसका पहला सोपान है।

यह भावना उसमें आज तक नहीं आयी। वे ही तो आराध्य देवता हैं, उन्हें छोड़ कर धर्म की परिकल्पना ही नहीं। इसका मतलब यह नहीं कि धर्म के पंडे जो दुहाई देकर कहें, सबको आँख मूंद कर मान ले। कभी नहीं। ऐसी बात उसकी आत्मा कभी स्वीकार नहीं करेगी।

ये बातें कहने पर आदित्य खिल्ली में उड़ा देते - 'समझीं माया, ईश्वर पर विश्वास कमजोर और काहिल लोगों का काम है। अच्छा बहाना है। आत्मविश्वास, कर्म और आत्मसंतोष ही असली ईश्वर है। तुम्हारी मां तो ईश्वरोपासना में जिन्दगी बिता रही थी, आखिर उसके खिलाफ यह कदम क्यों उठाया गया? प्रभु की सेवा से वंचित क्यों हुई? इतना अपमान क्यों सहना पड़ा!'

पति की बातों का उत्तर उसके पास था, परंतु माया उनकी बातों को हँस कर टाल देती। कहती - 'तुम जैसे मोटी बुद्धि वाले लोग ये सूक्ष्म बातें नहीं समझ सकते। मां तो कभी सांसारिक सुख नहीं मांगा करती। जिस आध्यात्मिक ऐश्वर्य के लिए प्रभु की शरणागत हुई, उससे तो वह कभी वंचित नहीं हुई। ईश्वर अनुग्रह की बात तुम जैसे नास्तिक क्या समझें? जगन्नाथ तो करुणा के सागर हैं। मैं स्वामी चाहती थी, इसलिए तो तुम्हें मेरे पास भेज दिया उन्होंने।'

उलट कर आदित्य कहते मजाक में - "कुछ भी कहो, जगन्नाथजी तुम्हारे पहले स्वामी हैं। तुमने क्वांरे मन का प्रेम तो उन्हें ही सौंपा है। मैं तो दूसरा हूँ। पूर्व पति का पक्ष ले उनकी बात नहीं कहोगी तो और किसकी कहोगी?"

माया दब जाने वाली नहीं है। मुग्ध हँसी खिल जाती है। आँखें भर आती हैं। आत्म विस्मृति में डूब जाती हैं। यही आदमी का मन है। पहला प्यार, पहला स्वप्न, पहला रोमांच कभी जीवन में दुहराया नहीं जा सकता। बेचारे! कभी - कभार तुम्हारे लिए मुझे दुःख होता है। जगन्नाथ जैसे प्रेमी से ईर्ष्या करना तो स्वाभाविक है। मगर सोचो जरा, जगन्नाथ इस दुनिया में किसके स्वामी नहीं हैं? वे ही तो एक पुरुष हैं, सारा जीवजगत नारी है। वैसे देखो तो तुम भी उनकी पत्नी हो।

स्वभावतः आदित्य खिलखिला उठते। इतनी बातें अगर हैं, तो में भी कल चूड़ियाँ और साड़ी पहन लूँगा। कई बार उन दोनों में मीठी - मीठी झड़प पैदा हो

जाती, जीवन मधुर हो जाता। ये सब मां के सामने, जब मां से कहती तो खिल उठती थी। उसके भविष्य के बारे में सोचती रहती। सुरक्षा की बातों में डूब कर वह अपना वर्तमान भी भूल जाती। हे प्रभु, मेरी बेटी और जवांई को शंख में रख चक्र से रक्षा करें! आँख मूंद कर गुनगुनाती।

इसी तरह रक्षा करते आये थे। संसार में अब और कौन था माया का भरोसा? मान के कारण पिता - माता से दूर हुई और श्रीजगन्नाथजी की छाया में चली गई। उस दिन की चोट शायद मां सह न सकी। दीक्षा ग्रहण के दृश्य के साथ औरों की तुलना की जाती। इकलौती लाड़ली माया अपने पिता की तरह कानून विशारद बनती, एक अच्छी घरवाली बन जाती। वह चिंता उनके शरीर में व्याधि बन कर भर गयी। मां हृदयरोग से मर गई। इकलौती बेटी का संन्यास और खुद संसार में डूबे रहना, उन्हें दुसह लग रहा था।

निसंगता और पापबोध दोनों ने मिल कर पिता को संसार त्यागी बनने पर मजबूर किया। सब कुछ छोड़ - छाड़ वे संन्यासी बन वृन्दावन चले गये। धन - सम्पत्ति अगर माया नहीं ले, तो निराश्रयों के लिए दान देने की वसीयत वे लिख गए थे। सचमुच माया उसे ग्रहण नहीं कर सकी। वास्तव में उसमें से माया ने कुछ भी नहीं लिया।

इस दुर्घटना की खबर माया को अपने जीवन की दुर्घटना के बहुत दिनों बाद मिली। संन्यासी सम्पूर्णानंद ने ही वह सारी दुखःद कहानी सुनायी थी। उस समय भारतवर्ष से अंग्रेजों का शासन खत्म हो चुका था। नारी मुक्ति और नारी शिक्षा के आंदोलन की मशाल कहीं - कहीं जल रही थी। फिर बुझ जाती थी। तभी सुना कि देवदासी प्रथा खत्म करने के लिए मद्रास हाईकोर्ट में काफी तर्क - वितर्क हुआ है। मंदिरों से देवदासी प्रथा हटाने के लिए वहाँ आंदोलन चला। ओड़िशा चुप था। उस समय मुक्ता माहारी सोच रही थी कि माया को पटना भेज दें। माता - पिता की ममता में वह खिल उठेगी। वह चाहे तो लौटेगी, नहीं तो नहीं। माहारी परंपरा रहे, यह प्रभु की इच्छा नहीं है। तभी यह सब हो रहा है।

मगर प्रारम्भ में ही उपसंहार हो गया। जिस शीतल छाया में माया पलने जा रही थी, वह वृक्ष ही भूलुंठित हो चुका था। खबर आई कि उसकी जन्मदात्री मां का देहान्त हो गया है।

उस दिन माया की आँखों में आँसू नहीं थे। इतने दिन बाद जब वह सोचती है तो आँखों में अनायास आँसू आ जाते हैं।

माया पटना नहीं लौटी। श्रीक्षेत्र ही संग्राम भूमि बन गया उसके लिए, यंत्रणा से पैदा हुआ सृष्टि का आनंद।

आज सारी बातें याद आ रही हैं। विस्मृति से निकल कर चारों ओर मंडरा रही। कौन सामने आये, यही खींचतान लगी है। सबके पीछे जो स्मृति - कंकाल छिपा खड़ा था, माया की आँख से आँख मिलाते ही सामने आ गया।

माया से प्रश्न किया - "मुझे पहचानती हो माया।" माया चौंक गई। उसके सामने मानो भूत खड़ा है। ये भूत नहीं तो और क्या है, विकलांग अतीत देखते ही उसकी आँखें, मन और हृदय के द्वार सब बंद हो जाते हैं। ये सब भूत नहीं तो और क्या है?

मन में उस रात की बातें माया को याद आ रही हैं। वह माहारियों के जीवन में एक पवित्र पर्व कहलाता। उसे 'जगमोहन छाड़' कहते। उस दिन पहले वह जगमोहन जाती, उनकी सेवा में नृत्य प्रस्तुत करती। यह दिन आता है हर देवदासी के जीवन में - प्रथम रजस्वला होने के साथ होता है। रसिक बड़सिंहार वेश के समय मनोहारी मादकता से आहलादित देवदासी की नृत्य सेवा की प्रतीक्षा करते। इस नृत्य में खिल उठेगी मादकता, इसलिए 'बड़सिंहार' का अर्थ कुछ लोग 'बड़ा श्रृंगार' भी कहते हैं।

परंतु तेरह साल की माया 'श्रृंगार' का अर्थ समझ रही थी नृत्य भंगिमा में। प्रेम, पूजा, आराधना, स्वकीया, परकीया, विरह, मिलन, मान, अभिमान सब कुछ नृत्य की एक - एक मुद्रा थी। उसके लिए जीवन का अर्थ ही था सिर्फ नृत्य और नृत्य!

उस दिन मां मुक्ता माहारी ने उसे देवदासी के वेश में सजाया था। दयणा दीदी ने भी तरह - तरह के गहने पहना दिये थे। पैरों में आलता (महावर) लगाया। वह अतुलनीय था। सजी - धजी माया का मन आनंद में भर उठा। शिविका में बैठा कर मां ने आशीष दी। जगन्नाथ तुझे सारे संकट से मुक्त रखें। तेरी देह, मन, चैतन्य और कर्म सब कुछ जगन्नाथ चेतना में भरे हों।

शिविका के पीछे - पीछे कुछ दूर आकर वाहकों से कहा - "देखो भाई, धीरे - धीरे ले जाना, कहीं मेरी छोटी - सी बच्ची डर न जाये।"

परंतु मां क्या जानती कि उसे उससे भी जघन्य भय का शिकार होना पड़ेगा, उसके पैने नख और दांत आगे तैयार हैं! मां वकुल के चबूतरे के पास रुक गई थी। शायद उसके लौटने की राह देख रही होगी।

बड़सिंगार होने वाला था। उत्साह में थिरकते - थिरकते बाईस पावछ पर माया आ रही थी। जय विजय द्वार पर स्वर्ण दंड लिए राजगुरु खड़े थे।

मादली की ताल पर पायल की झंकार में नाचते समय सचमुच वह खो गई है। उसके कोमल मन में अहंकार का नील पाखी फड़फड़ा रहा था। ऊँचे स्वर में कह रहा था - "देखा प्रभु की आँखों में कितना तन्मय और आत्मीय भाव निखर रहा है! श्रीजगन्नाथजी कला को पहचानते हैं!"

माया नाच रही थी ठाकुरजी के शयन तक। वाद्य और पायल धीमे पड़ते गये अथवा उनकी बोझिल क्लांत आँखों को वैसा लगा। राजगुरु ने स्वर्ण दंड नीचे कर ली। मादली का स्वर धीमा पड़ते - पड़ते थम गया। पौढ़ हुई।

भीतरछु महापात्र जय - विजय द्वार बंद करने को उतावले हैं। आत्म - संतोष में दोनों हाथ जोड़ कर माया बता रही थी कि मैं पूरी तरह तुम्हारी हूँ प्रभु आज से। उस समय रात गहरी हो गई थी। कहीं - कहीं दुकानों में आलोक जल रहा। बड़दांड जन शून्य हो गया।

शिविका में माया को बिठा कर मीना नायक ने वाहकों से कहा - "चलो!"

शिविका से उतर कर माया आश्चर्य में देख रही थी, यह क्या? यह तो मुक्ता माहारी का घर नहीं।

माया ने प्रश्न किया - "यह तो हमारा घर नहीं है? मीना नायक बाबा मुझे कहाँ ले आये हैं?"

स्नेह से उन्होंने कहा - "डरो मत बेटी, यह गजपति के महल का सिंहद्वार है। चलो भीतर चलें!"

माया ने कठोर स्वर में कहा - "नहीं, मैं वहाँ क्या जाऊँगी? अपने घर चलो। ऐ कहार भाई! मुझे चुड़ंग साही ले चलो। मेरी मां राह देख रही होगी। मुझे लौटने में देर होती देख घबरा रही होगी।"

माया उसमें बैठने लगी तो मीना नायक ने हाथ पकड़ कोमल स्वर में कहा -

"अच्छा बेटी! घर तो जरूर लौटोगी, परन्तु ठाकुर जी के दर्शन के बाद ठाकुर राजा का भी दर्शन करना पड़ता है।"

"यह बात मां ने नहीं बतायी मुझे! मैं नहीं जाऊँगी। कल मां के साथ आकर उनके दर्शन कर लूँगी।" माया दृढ़ता के साथ बोली।

मीठी बातों और मीठे स्वर से माया बहक गई। मीठे स्वर में मीना नायक ने कहा - "ठाकुर राजा के दर्शन न करने पर पाप होगा। यह परम्परा है।"

काँपते हुए वह राजा रंगमहल में मीना नायक के पीछे खड़ी हो गई।

वहाँ उस समय संगीत की थिरकन धीमी होता जा रही थी। यमुना बाई की ठुमरी सुनाई दे रही थी - रात गई... श्या... आ... म...अं...।

गजपति सोने के बने हाथी दांत और रत्नखचित मंच पर बैठे हैं। उन्हें घेरे कुछ संगी रसिक, जो गजपति के बंधु हैं, मखमली गद्दे पर गाँव - तकियों के सहारे बैठे हैं। सामने यमुना बाई वीणा बजा रही है।

माया और मीना नायक को दरवाजे पर देख कर सम्मान व्यक्त करके चले गये सब लोग। जाते वक्त माया पर नजर डालना नहीं भूले। माया बेचैनी में घुटी जा रही थी।

यमुना बाई की मुस्कान क्रूर लगी। सब चले गये, मगर वह नहीं गई!

मीना नायक ने खुशामदी स्वर में महाराज से कहा - "मणिमा! मुक्ता माहारी की पालिता माया माहारी आपके दर्शन की प्रतीक्षा में है!"

ठाकुर राजा ने द्वार की ओर देखा। अधखिली कोमल कली की तरह अजान आशंका में मुरझा रही है। पृथ्वी की सारी सरलता और अजनबीपन चेहरे पर छाया हुआ है।

महाराज ने देख नजर फिरा ली। वहाँ मानों अधखिली कली आशंका में मुरझा रही है। चेहरे पर निरीहता। उनकी आँखों में कामना नहीं, करुणा का अमृत छलक आया था।

गले से तीन लड़ का मुक्ताहार निकाल कर मीना नायक के हाथ में दे दिया और कहा - "अभी नयी माहारी को उसके घर ले जाओ। यह मेरी तरफ से उसके लिए विदाकी है।"

यमुना बाई पायल की झनझाहट करती वहाँ पर आ गई। नयी माहारी वैसे ही

लौट जायेगी? ठाकुरजी की सेवा के बाद उनकी चल प्रतिमा की सेवा किये बिना? मीना नायक से कहा - "मीना नायक, तुम खड़े क्यों हो? ठाकुर राजा की सेवा के लिए उसे छोड़ दो। बाहर सिंहद्वार पर प्रतीक्षा करो। ठाकुर राजा की सेवा के बाद मैं खुद लेकर तुम्हारे जिम्मे छोड़ आऊँगी!"

गंभीर स्वर में महाराज ने आदेश दिया - "तुम जा सकती हो यमुना बाई! मीना नायक, तुम ठीक से नयी माहारी को मुक्ता माहारी के घर छोड़ आओ। बहुत रात हो गई है।" सम्मान व्यक्त कर यमुना बाई असंतुष्ट-- सी वहाँ से चली गई।

महाराज कक्ष त्याग जाने लगे तो उनकी अमृत आँखें, आयत आँखें, कमनीय अधर, तीखी नाक और भरे कपोल देख कर माया को वह जगन्नाथजी का मानवी रूप जैसे लगे।

भक्ति में भर कर दोनों हाथ जोड़ कर माया ने उन्हें प्रणाम किया।

वंशवद की तरह मीना नायक ने कहा - "चलो बेटी! आज तुझे जल्दी विदकी मिल गई। आज रात बहुत बीत गई, कल राजगुरु की सेवा करनी होगी।"

माया ने आते समय थक कर आँखें मूंद लीं। कहा - "जल्दी - जल्दी चलो बाबा! इतनी देर तक मैं जाग नहीं सकती। मां से कहूँगी - कल अगर नृत्य सेवा के लिए फिर जाना होगा, तो भीतरछु महापात्र और राजगुरु से कह कर जल्दी बड़सिंहार करा दें। मंदिर से सीधे घर जाऊँगी।"

रंगमहल से आते समय राजा का दरबार कक्ष, फिर अतिथिशाला, फिर लंबा बरामदा पार कर बाहर आयी। वहाँ प्रतीक्षाशाला है। लोग दर्शन के लिए प्रतीक्षा करते हैं। इतना पार कर कोई फर्लांग भर चली, तब बाहर का आंगन पड़ा। फिर था द्वारपाल कक्ष और अब पहुँची सिंहद्वार पर।

रंगमहल के बाद राजा का दरबारकक्ष। उसके बाद अतिथिशाला, उसके बाद आम दरबार तक आंगन। फिर द्वारपाल और उसके बाद सिंहद्वार है।

चलते - चलते माया आँखें मल रही थी। कह रही थी मुझे बहुत नींद आ रही है, मेरे हाथ थाम लो। माया का कोमल हाथ पकड़ कहा - "कष्ट भोगे बिना कृष्ण नहीं मिलता बेटी। देवदासी होना आसान बात नहीं।"

अचानक क्या हुआ! आज माया को याद नहीं। अतिथिशाला होकर आते वक्त एक सख्त हाथ उसे अंदर ले गया। उसके बाद द्वार बंद हो गये और एक हाथ ने

इतनी जोर से अक्टोपस की तरह पकड़ा कि शब्द निकलना दूर की बात, सांस लेना भी मुश्किल हो रहा था। भय और यंत्रणा में मूर्छा आने के पहले माया ने देखा कि यमुना बाई उसे पकड़े है। एक सत्तर साल का बूढ़ा आदमी, पके बाल, कमर से उसे ग्रास करने को उतावला है। उसका सारा शरीर जल रहा था। सांप की जीभ की तरह उसकी जीभ लपलपा रही थी। उसे देख माया घृणा में सिकुड़ उठी।

यमुना बाई फुसफुसाहट में कह रही थी - "काका साहेब! बाणपुर दरबार में मैं इसी लड़की की बात कह रही थी। आज मेरे साथ नहीं, इसके साथ रात बितायें! मैं चलती हूँ!"

माया के मुँह से यमुना बाई का कठोर हाथ उठ गया। यमुना बाई का रूप उसे वीभत्स और घिनौना लगा। बाणपुर के सामंत राजा, जो गजपति के काका होंगे, उनका कामातुर चेहरा ब्रह्मराक्षस जैसा लग रहा था।

भय से माया ने आँखें मूंद ली। शायद वह अचेत हो गई।

अगले दिन सुबह आँख खोलते समय माया ने अपने को मुक्ता माहारी की गोद में पाया। उसका शरीर कीट खाये किसी मुरझाये फूल की तरह पड़ा है। मुक्ता माहारी प्रागैतिहासिक काले पत्थर की मूरत की तरह बैठी थी।

माया के आँखें खोलते ही रो पड़ी। सारा शरीर चूम लिया। मां का वह स्नेह उसे सब कुछ भुला रहा था। इसके बाद उसके जीवन स्रोत ने दूसरा मोड़ ले लिया। नन्ही - सी बच्ची अपरिपक्व उमर में नारी बन गई। उसके खून में विद्रोह, विप्लव और अभियोग के शंख बज उठे। वह विप्लव पारंपरिक देवदासी प्रथा के विरूद्ध था। धर्म के नाम पर धर्मध्वजाधारियों के पापाचार के विरूद्ध। नारीत्व की लांछना के विरूद्ध तीव्र होता जा रहा था, उम्र बढ़ने के साथ - साथ।

यह घटना दूसरी देवदासियों के जीवन में कितनी बार हुई होगी? परंतु बदनामी के डर से श्रीजी की सेवा से मुक्त होने के भय से मुँह बंद रखती। धीरे - धीरे ठाकुरजी की सेवा का अर्थ राजा और राजगुरु को बहलाना हो गया। स्वाधीन भारत में यह एक स्वतंत्र पेशा बन गया। देव भोग्या देवदासी गणभोग्या गणिका बन गई। धर्म के नाम पर। चुपचाप, निर्विरोध, अंतःस्रोत गलने लगा।

माया घृणा और आक्रोश में खौल उठती थी। संगीत गुरु गुरुपद दास और उनके पुत्र मालव से कुछ छुपा कर नहीं रखा, पर राजदरबार में अभियोग करने लायक साहस एकत्र नहीं कर पायी। नरोत्तम भुईंमल की मृत्यु के बाद वह मानसिक

संतुलन भी कुछ - कुछ खो बैठी।

सोच कर माया अभी भी आश्चर्य में भर जाती है। विप्लव की आग कहाँ छिपी थी! धर्म चर्चा और संगीत - नृत्य चर्चा में यह कैसे छिप कर रह गई! हजारों साल से नारी शोषण के विरूद्ध चीत्कार थी। नहीं, वह इतिहास को दुहराने नहीं देगी।

मां मुक्ता माहारी पहले भय कर रही थी। उन पापियों को श्रीजगन्नाथजी जी दंड देंगे। कचहरी - मुकदमा कर दंड दिलाने वाले हम कौन होते हैं?

प्रतिवाद में बोली माया - ''इसमें मैं विश्वास नहीं करती मां! जगन्नाथजी के हाथ - पैर इसीलिए नहीं हैं। बड़ी - बड़ी आँखों से सब देख सकते हैं परंतु कुछ नहीं कर सकते। अगर पाप को दंड देने की शक्ति उनमें रहती, तब उस रात क्यों उनके हाथ फैल नहीं गये? पापी के पापाचार से मुझे बचाया क्यों नहीं? पत्नी की रक्षा करने का दायित्व अगर पति का है तो ठाकुर स्वामी मुझे बचा क्यों न सके उस रात? ऐसे ठाकुर को ईश्वर के रूप में मान सकती हूँ, मगर पति के रूप में कभी नहीं!''

माया की आँखों से आँसू नहीं आग निकल रही थी।

उसी समय अदालत में मुकदमा किया था पापा ने। बहुत दिनों तक केस चला। मीना नायक ने रोते - रोते कोर्ट में बयान पेश किया था - ''हजूर, मैं गरीब आदमी हूँ! रूपयों के लालच में मैंने यह काम किया। इसके लिए यमुना बाई और राजगुरु ने मुझे पाँच सौ रुपये दिये थे। बेटी के विवाह के लिए मैंने यह कार्य किया! जगन्नाथजी के मुझे इसका दंड दे दिया। कुछ दिनों पहले ही मैं अपने पाप का फल भोग चुका हूँ।''

विवाह के बाद बेटी विधवा हो गई! मेरे हाथ जल गये। मुझे जो दंड देना दीजिए, मेरे सामने जानबूझ कर महाराजा दिव्यसिंह के काका बाणपुर के बूढ़े राजा ने इस फूल जैसी लड़की की इज्जत लूटी। हुजूर, हमारे महाराजा देवता जैसे हैं! उनका कोई दोष नहीं। उन्हें यह बात मालूम तक नहीं।

निरपेक्ष विचार हुआ। बाणपुर के बूढ़े राजा, यमुना बाई और राजगुरु को सश्रम कारावास मिला। माया की तरफ से केस लड़ रहे थे ब्रह्म आदित्य बोस। कलकत्ते से आकर पुरी में वकालत कर रहे थे।

मुकदमे का सारा खर्च गुरुपद दास और उनके पुत्र मालव दास दे रहे थे।

मालव ने ही माया में यह दृढ़ विश्वास भरा था।

माया का माथा सहला कर मालव ने कहा था - "मैंने अपनी प्रिया को खोया, आज अगर मेरी छोटी बहन भी इस नरक में बह जाएगी, तो मैं किसकी ममता में जीऊँगा!"

बातों ही बातों में मालव भैया ने दत्ता दीदी की बात बतायी। मुक्ता का घर छोड़ वह चली गयी, वह मालव भैया की वाग्दत्ता है! सागर में आत्महत्या करने जा रही थी, उस समय यमुना जैसी राक्षसी के हाथों में फँस गई। उस राक्षसी ने आश्रय देने की आशा दिला कर कलकत्ते के सोनागाछी इलाके में बेच दिया। कलकत्ता में नृत्य - संगीत चर्चा के समय अचानक दत्ता दीदी के साथ उसकी मुलाकात हुई। उससे उसकी करुण कहानी सुनी। दत्ता दीदी अभी भी वेश्या की जिन्दगी बिता रही है। उस समय एक अशिक्षित जवान लड़की के लिए जीने का रास्ता और क्या था? मालव ने दत्ता के सिर पर सांत्वना का हाथ रखा। अपने अंतर के विरूद्ध कई बार काम करना पड़ता है। ऐसे पाप प्रभु क्षमा कर देते हैं। आदमी भी। अतः दत्ता के इस गणिका जीवन के लिए मालव जिम्मेदार नहीं। घृणा भी नहीं। जीवन को सुधारने के लिए समय है।

चारों तरफ बंद हो जाने पर भी कोई द्वार खुल जाता है। वह पाप का हो या पुण्य का। इतने पर भी मालव भैया उसे अपनाना चाहते थे, परंतु दत्ता दीदी ने ना कह दिया। मालव भैया उसकी याद में अकेले रह गए। कला साधना में डूब कर दत्ता की स्मृति भुलाते रहे। दत्ता दीदी और मालव भैया की इस दुखद कहानी ने उसके प्रतिरोध को और भी तेज किया था।

उसके कदम अब भिन्न राह पर थे। उसकी पायल मंदिर की ओर न जाकर शिक्षानिकेतन की ओर चली। देवदासी माया माहारी कानून विशारद माया बोस के रूप में परिवर्तित हो गई। विवाह के बाद आदित्य के गहन प्रेम और निर्भय वचनों ने उसे जगाये रखा। श्रीमती माया बोस आदित्य बोस की धर्मपत्नी हैं। आदित्य के विशाल हृदय में प्रेम का विशाल सागर था। नारी जीवन की सार्थकता है। अतीत की घटना के लिए उसके मन में तनिक पाप बोध नहीं, आदित्य के मन में भी। दोनों सुखी हैं। वह महसूस कर रही थी कि जब तक नारी शिक्षित नहीं होगी, इसी तरह सताई जाती रहेगी, स्वामी द्वारा, समाज द्वारा और समाजपतियों द्वारा। स्वावलंबी न होने तक नारी हरदम पुरुष जाति की कठपुतली बनी रहेगी।

माया के हृदय में यही चिंता थी। देवदासियाँ अगर शिक्षा पा कर कुछ कमा सकती, विवाह कर संसार धर्म पालन करने के साथ - साथ श्रीजी के सामने नृत्य आराधना करती - इसमें गलती न करती, तो माहारी जाति क्या बची नहीं रहती? ऐसे संन्यास से यह संसार और यह वेश्यावृत्ति अच्छे हैं, क्योंकि वेश्या का धर्म परपुरुष का मनोरंजन करना है, परंतु एक पवित्र परंपरा को धर्म की दुहाई देकर अगर कलुषित किया जा रहा है, तो क्या वह धर्म है? उस परंपरा को बचाने और सम्मान देने में क्या तुक है? खास कर इसमें तो खुद को बचा रखना ही मुश्किल हो जाता है।

आदित्य की सहायता से माया अनेक किशोरी देवदासियों को अंधेरे से उजाले की ओर ला तो सकी है। अब उन्हें जीवन का असली सुख सिखाना है। इस कारण कई स्वार्थी लोलुप लोगों की आँख का कांटा भी बनी है। श्री जगन्नाथजी के दर्शनों से वंचित की गई है, फिर भी संकल्प से डिगी नहीं। बाधा जितनी तीव्र होती है, लांघने की शक्ति उतनी ही जन्म लेती है, अंतर में।

मां मनसा वाचा कर्मणा श्रीजगन्नाथजी की सेवादासी थी। उसका परिवेश - इतना दूषित न था। देह की क्षुधा से पाप - पुण्य का विचार ज्यादा न था। प्रश्न था प्रेम का। प्रेम तो आज या कल का नहीं। यह नित्य नूतन है, परंतु उनके लोभों को ठुकरा का मां श्रीजगन्नाथजी के प्रेम में बंध गई। सब तो उसकी तरह इंद्रियविजयी नहीं हैं!!

फिर भी कुछ स्वार्थी लोगों ने नरोत्तम भुईंमल का नाम जोड़ कर उन्हें मंदिर से निकाल दिया था, परंतु अंत में पता चला कि वह दूसरा कोई नहीं, उसका सगा भाई है। नरोत्तम का सम्मान बचाने के लिए मां ने कभी होंठ नहीं खोले। सारा अपमान पी गई।

पर सत्य विजयी हुआ। बाद में मां निर्दोष प्रमाणित हो गई, फिर भी, मुक्ति मण्डप के पंडों ने निषेधाज्ञा नहीं हटाई, 'रूकुणा' रथ कभी नहीं लौटता। पहले की तरह मां पायल की झंकार में बाईस पावछ चढ़ कर जगमोहन की तरह नहीं जा सकी। किसी के कुछ न कहने पर भी मां के मन में वह दुःख रह गया। लोगों की बातों को गलत साबित करने वन - जंगल में फिरने वाला वह विप्लव आ गया था सब के सामने बड़दांड पर। मुक्ति मण्डप के सामने दोनों के पवित्र प्रेम को गर्व सहित स्पष्ट

करने से पहले ही वह पुलिस की गोली से मारा गया था।

कभी - कभी यह दुःख भरी बातें कहते समय मां विलख उठती। नरोत्तम की मृत्यु का कारण खुद को मान लेती। यह बात हमेशा उन्हें कुरेदती रही है। आर्थिक संकट के लिए उन्हें दुःख न था, गरीबी पर दुःख न था। असहायता में राज या राजगुरु किसी के आगे हाथ नहीं फैलाये। मां सारे दुःख सह कर भी जीती रही। एक तरफ पेट और दूसरी तरफ माया की शिक्षा। झूठे रोष में कई बार माया मुक्ता माहारी से कहती - "तुम तो इतने दिनों से 'जगन्नाथ, जगन्नाथ' कर रही हो, क्या वे तुम्हारा दुःख दूर नहीं कर सकते?"

मां के सुन्दर चेहरे पर प्रसन्नता झलक उठती। सहज स्वर में कहती - इतने दिन तक कौन देता रहा, बता? समझी बेटी - वही श्रीजगन्नाथ! पर माया स्वामी - संतान की दुनियाँ को तुच्छ नहीं समझती या परम्परा की दुहाई दे विरोधी नहीं बनी। माहारी जाति का गया गुजरा हाल उसके सामने था। वह सोचती थी कि होनी तो खुद हो जाती है। आज विवाह की इच्छा को मां के आगे कह रही है। मां ने कोई आपत्ति नहीं की। वृद्ध माहारी आगे बढ़ कर मां को उपदेश देने से न चूकती।

- "बेटी का विवाह करा देने से जगन्नाथ से द्रोह करोगी मुक्ता" मुक्ता कहती - "श्रीजगन्नाथजी क्या हमारे साथ लीला करेंगे, काकी?" वे मानव के रूप में आदित्य का रूप ले, जंवाई के रूप में पधारे!" वह निष्काम प्रेमी आज स्मृति बन गई। मां रहित संसार आज सूना - सूना लग रहा है। माया के हृदय में हाहाकार भर गया।

पीछे से कंधे पर ऊष्मा का स्पर्श पाकर मुड़ी। देखा तो वहाँ आदित्य खड़े हैं! उनकी आँखों में स्नेह, प्रेम, करुणा और संवेदना का मिश्रराग भरा है। माया सहज हो गई।

शांत होकर आदित्य ने कहा - "माया, आज दूरदर्शन पर राष्ट्रीय कार्यक्रम में तुम्हारी मां पर विशेष प्रोग्राम होगा। तुम देखोगी नहीं?"

माया पति के साथ ड्रांइगरूम में धीरे - धीरे चली आयी। बेटी निमिषा ने टी०वी० चालू कर दिया। उद्घोषिका कह रही थी - 'ओड़िशी नृत्य की जननी यानी देवदासी, नृत्य-मंदिर में ही पैदा हुई थी! उस कला को जिन लोगों ने बचा कर रखा, उनमें से एक थी मुक्ता माहारी! आइए देखें श्रीमंदिर की उस निष्ठावान देवदासी की अंतिम यात्रा!

समुद्र की लहरों की तरह दृश्यों का परिवर्तन होता जा रहा था। मां के शव

के पास खड़े हैं मुख्यमंत्री। पुरी के गजपति महाराज हैं। पुष्प गुच्छों में वह परम सती साध्वी सुहागिन ढक गई है। श्रीमंदिर से वैष्णवाग्नि लेकर पंडा आये हैं! मां के दीक्षा के समय की ओढ़नी से उन्हें ढक दिया गया था। प्रभु को अर्पित मालाओं से उसका शरीर भरा था। 'जय श्रीजगन्नाथ' और 'मुक्ता माहारी अमर रहे'! 'मुक्ता माहारी अमर रहे' की ध्वनि के साथ शव स्वर्गद्वार की ओर चल पड़ा। आदित्य आगे - आगे चल रहे हैं। लाजा - कौड़ी उछालते चल रहे हैं। उनका चेहरा गंभीर दिख रहा है। उनके पीछे चलने वाली आँखों में आँसू भर नारी वह खुद है।

स्वर्गद्वार में श्मशान का दृश्य! परम्परा को तोड़ कर, ब्राह्मणों का निषेध न मान कर माया मुखाग्नि देने के लिए प्रदक्षिणा कर रही थी। हाथ में है जलता लुआठा। उस महाश्मशान घाट पर समाज के ठेकेदारों ने इसका प्रतिवाद किया था। स्त्रियों का श्मशान में जाना मना है। बेटी होकर मां को आग देना उससे भी अधिक अपराध है, यह कर्तव्य तो पुत्र का है। इसीलिए तो पुत्र - हीन मानव नरक से उद्धार पाने के लिए दत्तक पुत्र बनाता है। दत्तक कन्या नहीं।

रोती हुई माया ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया -"मां ने दत्तक पुत्र नहीं किया, परन्तु दत्तक कन्या की थी। बेटी है इसलिए बेटे का कर्तव्य वह खुद करेगी।" ब्राह्मण से आग का लुआठा उसने खुद ले लिया। जनता स्तब्ध रह गई! मुक्ता माहारी को मुखाग्नि देकर अपना दायित्व निभाया। यह कर्तव्य सिर्फ बेटे तक ही सीमित नहीं है, माया ने दिखा दिया।

हजारों लोगों की ध्वनि सुनाई दे रही थी। सोचा कि जीते - जी मां अगर इतनी सामाजिक स्वीकृति पा लेती तो! आज उनकी मृत्यु ने ही उन्हें महिमामय बना दिया।

माया मन ही मन उनकी एक बात गुनगुनाती रही। "जीअंते न द्यन्ते तुण्डे, मले द्यन्ति वेणामुण्डे।" (जीते जी बूझी न बात, मरने के बाद देवे भात)। जीते जी कुछ नहीं देते! मरने के बाद ब्राह्मण भोज। सच, अजीब प्राणी है मानव! जीते जी जिसे कोई महत्व नहीं देता, मरने पर उसके लिए वह रोता है।

मां का शरीर जल कर राख हो गया। यदि प्रेम, धर्म, ईश्वर, पुण्य आदि शब्दों का कुछ मूल्य है तो माया का विश्वास है - मां को जरूर विष्णुपद प्राप्त होगा। वह जन्म - मृत्यु के चंगुल से मुक्ति पा गई, परंतु उसके पार्थिव शरीर ने कितना कष्ट

न सहा! माया की आँखों में आँसू बह चले।

टेलीविजन का दृश्य धुंधला दिख रहा है। धुंधला दिख रहा है इस संसार का दृश्य। वह अस्पष्ट दृश्य, माया के मन में उज्ज्वल से और उज्ज्वल हो रहा है! समय सारी स्मृतियों को अस्पष्ट करता है, अदृश्य बना देता है। फिर भी अनेक यादें समय के अंधकार से निकल आती हैं और मन में भर जाती है।

मुक्ता माहारी वैसे ही जीवित रहेगी। मंदिर की दीवारों पर, किंवदंतियों के पृष्ठों पर। नर्तकियों की पायलों और घुंघरूओं में। सबसे ज्यादा माया के हृदय में। मातृत्व की लौ बनी सदा जलती रहेगी यह दीप शिखा!

*   *   *

रोषपूर्ण बड़े भैया की आँखें देख श्रीजगन्नाथजी चुप हो गये। बड़प्पन के भाव से बलराम जी ने कहा – "कान्हा, तुझे लक्ष्मी ने वाचाल और दायित्वहीन कहा, क्या गलत है?" सागर राजकुमारी जगज्जननी लक्ष्मी को ऐसी बात कहने का साहस किया?वह जग का सुख – दुःख जान कर अन्न – वस्त्र प्रदान न करती तो तू आज वृंदावन में वंशी बजाता और इधर पृथ्वी रसातल में डूब जाती। कुछ आगे बढ़ कर सिंहद्वार की तरफ जा बड़े ठाकुर ने कोमल स्वर में कहा – "लक्ष्मी देवी, मेरे छोटे भाई ने अनजाने में जो कुछ कह डाला, उसे क्षमा कर देना। तुम जैसी परम ज्ञानी और विदूषी क्षमा नहीं करेगी तो पृथ्वी से क्षमा शब्द ही उठ जायेगा। मेरा भाई कुछ सोचता - विचारता नहीं, जो मुँह में आये बोल देता है। इसके दिल में कुछ नहीं है। अब दरवाजा खोल दो। हम भीतर जाएँ!"

जेठ की बात सुन कर पद्मालया लजा गई। मान और क्रोध कितना खतरनाक होता है! उनकी उपस्थिति भी भूल गई!

– इसी पुस्तक से

ISBN : 978-81-89989-53-8

मूल्य रु0 132=00